तुलसी और उनका काव्य

लेखक
रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली।

मूल्य
सात रुपया

१९५३
संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण

प्रस्तावना

बहुत वर्ष हुए रामचरितमानस के शुद्ध पाठ की खोज करके मैंने उसे टीका सहित अपने हिन्दी-मन्दिर प्रयाग से प्रकाशित कराया था। यह पुस्तक उसका भूमिका भाग है। 'मानस' के प्रेमियों में इसकी बड़ी प्रसिद्धि हुई और महात्मा गांधीजी तक ने इसको पढ़ा और आशीर्वाद दिया। 'मानस' का पहला संस्करण दो ही तीन वर्षों में समाप्त हो गया; पर उसका दूसरा संस्करण न हो सका; क्योंकि सन् १९४१ में मैंने अपना प्रकाशन-कार्य बन्द कर दिया। पर इसकी मांग बराबर बनी रही और गोस्वामी तुलसीदासजी के भक्तगण इसके नये संस्करण के लिए बराबर प्रेरणा पहुँचाते रहे। अन्त में दिल्ली के राजपाल एण्ड सन्ज़ (पुस्तक प्रकाशक) ने इसके प्रकाशन की इच्छा प्रकट की, मैंने उनको इसका कापीराइट दे दिया।

इसबार भूमिका भाग रामचरितमानस से अलग पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है। क्योंकि केवल भूमिका के लिए बहुतों को पूरा रामचरितमानस खरीदना पड़ता, जो उन्हें महँगा हो जाता। आशा है, प्रकाशक के इस सदुद्देश्य से 'मानस' के प्रेमी पाठकगण लाभ उठायेंगे।

वसंत-निवास,
सुलतानपुर
२५. ११ १९५१

—रामनरेश त्रिपाठी

विषय-क्रम

पहला भाग
तुलसी और उनका जीवन
[पृष्ठ १ से पृष्ठ ११८ तक]

दूसरा भाग
तुलसी और उनका काव्य
[पृष्ठ ११९ से पृष्ठ ३५० तक]

पहला भाग

तुलसी और उनका जीवन

१

तुलसी और उनका जीवन

आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले सोरों (ज़िला एटा-उत्तर प्रदेश) के एक मुहल्ले में एक अत्यन्त निर्धन भिक्षुक ब्राह्मण के घर एक बालक पैदा हुआ। उसके जन्म लेते ही उसकी माँ का देहान्त हो गया। फिर थोड़े ही दिनों में उसका पिता भी चल बसा। बालक किसी तरह, पता नहीं दरिद्रता की किन-किन गोदों में पलकर, जीवित बच गया। शरीर में चलने-फिरने की शक्ति आते ही वह पेट का भार उठाये हुए, राम-राम बोलते हुए, पेट की आग को बुझाने के लिए स्वजाति, विजाति और कुजाति सब के घरो में खीस काढ़कर, पेट दिखाकर और बार-बार पैरों पर सिर रखकर टुकड़े माँगता फिरा, और केवल अपने बाहु-बल पर उसने करोड़ों मनुष्यों के कल्याणकारी अपने जीवन को मृत्यु से लगभग नब्बे वर्षों तक बचाये रखा।

बचपन में उसकी गरीबी का यह हाल था कि कहीं किसी के यहाँ विवाह के बाजे की आवाज सुनकर वह दौड़ जाता और बचा-खुचा आहार पाकर निहाल हो जाता था। किसी के यहाँ श्राद्ध का समाचार पाकर वहाँ जा बैठता और एक टुकड़े के लिए घंटों टकटकी लगाये रखता था।

उसके शरीर पर वस्त्र नहीं थे, इधर-उधर से चिथड़े जमा करके, सीकर या गाठें देकर वह तन ढक लेता। रात में कभी सड़क पर, कभी किसी मन्दिर मे और कभी-कभी किसी मसजिद में भी सो रहता। इस प्रकार की न जाने कितनी भीषण वेदनाओं, असह्य यातनाओं के अन्दर से वह अपने शरीर को बचाकर समाज के सामने आया और अपने अमूल्य जीवन को उसने उसी दुःख से दग्ध, ताप से पीड़ित और चिन्ता से व्याकुल समाज को दान कर दिया, जिसने उसकी जीवन-रक्षा में स्वेच्छा से कुछ भी हाथ नहीं बँटाया था।

वह दुःख ही में जन्मा, दुःख ही मे पला और फिर जब तक जिया तब तक दुःख ही को सहोदर की भाँति अपने हृदय से उसने चिपकाये रखा और फिर अपने तपोबल से उसी दुःख को सुख बनाकर संसार को सौंप दिया।

उस चमत्कारी बालक का नाम रामबोला था, जो पीछे गोस्वामी तुलसीदास के नाम से विख्यात हुआ। तुलसीदास जी का जीवन-चरित दुःखों का मर्मबेधी इतिहास है।

उस दीन, हीन, अनाथ मनुष्य ने जागृत अवस्था में एक सुन्दर स्वप्न देखा। उसने उस स्वप्न को आदर्श पुरुष-स्त्री, आदर्श समाज और सुराज के रूप में चित्रित किया। वही चित्र 'रामचरितमानस' है। 'रामचरितमानस' दीनता की एक अमूल्य भेंट है, जो गरीबों की ओर से एक अत्यन्त निर्धन व्यक्ति द्वारा संसार को मिली है। यह 'रामचरितमानस' गृहस्थों का अमूल्य धन है। इसे किसी मूल्य पर, बदले में बड़े-बड़े राज्य लेकर भी, वे देना स्वीकार नहीं करेंगे। यही इस युग में हिन्दुओं का वेद है।

एक गरीब ने जो कर दिखाया, वह राम से नहीं हो सका था। न अब राम है, न सीता, न लक्ष्मण, न विभीषण और न हनुमान; पर तुलसीदास अब भी है। 'रामचरितमानस' उनका प्रत्यक्ष रूप है, जो अमर है, अजर है, अमिट है, और अचल है। तुलसीदास न होते, तो शायद उनके राम भी न होते और तब हम भी न होते। परिवर्तनशील काल हमें खा चुका होता। यद्यपि यह भी राम ही की महिमा है।

माघ नाम के एक दानी कवि ने वदान्यता के असह्य भार को न सहन करके स्वयं पराजित होकर, आत्मघात कर लिया था। कहा जाता है कि वह निर्धनता से प्रताड़ित होकर एक बार धन के लिए धारा-नरेश की राजधानी में पहुँचा। उसने अपनी स्त्री के हाथ राजा के पास यह श्लोक लिखकर भेजा :

कुमुदवनमपश्री श्रीमदम्भोजखण्ड
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्त
हतविधिलसिताना हा विचित्रो विपाकः॥

'कुमुद-वन की शोभा जाती रही, कमल शोभायमान हो गए, उलूक हर्ष को त्याग कर रहा है, चक्रवाक प्रसन्न हो रहा है, सूर्य इधर उदय हो रहा है, चन्द्र अस्त हो रहा है। हा! विधाता के कार्यों का परिणाम विचित्र है।'

इस पद्य के भाव पर मुग्ध होकर धारा-नरेश ने कवि-पत्नी को प्रचुर धन-राशि देकर विदा किया। कवि-पत्नी धन लेकर पति के पास चली। रास्ते में याचकों के मुख से अपने पति की कीर्ति सुनकर उसने सब धन उन्हें दे डाला और वह खाली हाथ पति के पास पहुँची।

माघ ने सब वृत्तान्त सुनकर कहा—तुमने बहुत अच्छा किया। पर तुम्हारे

दान का समाचार पाकर जो याचकों की भीड़ आ रही है, उसे अब क्या दिया जायगा ? दान-शक्ति की क्षीणता से विकल होकर माघ ने यह कहकर आत्म-हत्या कर ली :

अर्था न सन्ति न च मुंचति मां दुराशा,
त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे।
याञ्चा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं प्रविलम्बितेन ॥

'धन पास नहीं, आशा छोड़ती नहीं, मूढ़ मन दान देने से हिचकता नहीं, माँगने से लघुता प्राप्त होती है, आत्म-हत्या में पाप है, अरे प्राणो, क्यों देरी करते हो ? स्वयं क्यों नहीं निकल जाते ?'

दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः सन्तोषवारिणा।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति ॥

'दरिद्रतारूपी अग्नि का सन्ताप तो सन्तोषरूपी जल से शान्त हो गया, पर याचकों की आशा के विघात से हृदय में जो जलन हो रही है, वह कैसे शान्त हो ?'

व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थता गते।
पश्चादपि हि गन्तव्यं क्व सार्थः पुनरीदृशः ?

'प्राणो ! याचक निराश होकर चले गए, अब तुम भी चल दो। पीछे भी तो जाना ही होगा, पर ऐसा साथ कहाँ मिलेगा ?'

जिस दरिद्रता से पराजित होकर माघ ने शरीर-त्याग किया, उसी दरिद्रता पर विजयी होकर तुलसीदास ने वह अक्षय-भांडार दान किया है, जिससे कोई याचक कभी निराश होकर नहीं लौटेगा। दरिद्रता पर तुलसीदास की यह विजय साधारण विजय नहीं है।

मनुष्यों का कल्याण करने के लिए तुलसीदास ने धन की लालसा ही नहीं छोड़ी, उन्होंने स्त्री का भी त्याग किया, जिसके सम्बन्ध में नीलपट्ट कवि कहता है—

स्त्री-बल से गर्वित कामदेव रति का हाथ अपने हाथ में लेकर अट्टहास करके कहता है :

अयं स भुवनत्रय प्रथित संयमी शंकरो
विभर्ति वपुषाधुना विरहकातरः कामिनीम्।
अनेन किल निर्जिता वयमिति प्रियायाः करं
करेण परिलालयंजयति जातहासः स्मरः ॥

'देखो, यह शंकर है, जो तीनों भुवनों मे जितेन्द्रिय प्रसिद्ध है। ये क्षण-भर भी अपनी प्रिया का वियोग नहीं सह सकते। उसे अपने अर्द्धाङ्ग में धारण किये हुए है। इन्हींने, अरे इन्होंने ही, हमे जीता है!'

पर कामदेव तुलसीदास पर अट्टहास न कर सका। वे दुखियों की सेवा में निमग्न थे; इससे कामदेव के लिए उन्होंने अपने अन्तर्जगत् का द्वार ही नहीं खुलने दिया।

जिस स्त्री-बल की अजेयता का गान भर्तृमेण्ठ करते है:

जनमजितमपीच्छता विजेतु निशितदशार्धशरं धनुर्विमुच्य।
अतिरभसतयोद्यता स्मरेण ध्रुवमसियष्टिरिहांगनाभिधाना॥

'मनुष्य पर विजय पाने के लिए कामदेव ने अपने पाँचों तेज़ बाण छोड़े, पर मनुष्य जीता नहीं गया। तब उसने झटपट नारी-रूपी तलवार उठा ली।'

उस स्त्री-बल को कामदेव की उस तलवार को, तुलसीदास ने निष्फल कर दिया।

अश्वघोष ने सच ही कहा है:

तथा हि वीरा· पुरुषा न ते मता जयन्ति ये साश्वरथद्विपान् नरान्।
यथा मता वीरतरा मनीषिणो जयन्ति लोलानि षडिन्द्रियाणि ये॥

'जो घोड़े, हाथी और रथ से युक्त मनुष्यों को जीतते है, वे सच्चे वीर नहीं है। सच्चे वीर तो वे विद्वान् है, जो छहों चंचल इन्द्रियों को जीतते है।'

तुलसीदास को हम ऐसे ही वीरों में अग्रगण्य पाते है। बाह्य जगत् मे राम रावण पर विजय प्राप्त करते है तो तुलसीदास अपने अंतर्जगत् के शत्रुओं—मोह, मद, मत्सर आदि से जीवन-भर युद्ध करते रहकर कीर्ति पाते है।

तुलसीदास ने मानव-समाज के समस्त मानसिक और प्राकृतिक व्यापारों का अनुभव किया था। उनके मुख से एक विशाल जन-समुदाय की सरस्वती बोली थी। वे एक कवि थे, भक्ति उनका गौण विषय था। वे कवि होकर ही समाज मे आये और अन्त समय तक कवि ही रहे भी। यों तो कवि की प्रतिभा बहुमुखी होती है और वह प्रत्येक विषय की मर्मज्ञता प्रकट भी करता है; पर उसकी एक खास प्रकृति अलग होती है, जिसमें वह विशेष रुचि रखता है। कोई शृङ्गार-रस का रसिक होता है, तो कोई करुण का; कोई हास्य-रस का प्रेमी होता है तो कोई वीर का। जिसकी रुचि जिस रस में अधिक होती है, वह उस पर अधिक अनुराग रखता है। तुलसीदास की रुचि भक्ति की ओर अधिक थी, और उन्होंने अध्ययन और अनुभव से भी उसमें अन्तरंगता बढ़ा ली थी; उनका लक्ष्य भी यही था कि भक्ति को जीवन का केन्द्र बनाकर उसकी

और लोगों को आकर्षित करे, जिससे उनके मन की कर्कशता और उनके जीवन का कल्मष दूर हो और वे सुखी बनें। इससे उन्होंने भक्ति पर अधिक तन्मयता दिखलाई। पर भक्ति का विवेचन उन्होंने कवि ही की हैसियत से किया है।

तुलसीदास एक राम के उपासक थे। उनके राम कौन थे ? 'मैं सेवक, सचराचर रूप-रासि भगवन्त' कहने वाले राम। अर्थात् यह सचराचर जगत् ही उनका राम था। उसी के लिए उन्होंने तपस्या की थी। उनकी तपस्या का एक प्रत्यक्ष फल 'रामचरितमानस' है।

संसार की भयानक विपत्तियाँ सहकर कवि तुलसीदास ने हमें अमूल्य पदार्थ 'रामचरितमानस' के रूप में दान दिया है, उसकी तुलना संसार के किसी दान से नहीं हो सकती। 'रामचरितमानस' एक कल्याणकारी ग्रन्थ है। वह एक साँचा है, जिसमें जीवन को ढालकर उससे एक सुन्दर स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है।

इस ग्रन्थ-रत्न का आदर गरीब की झोंपड़ी से लेकर राजमहल तक है। अच्छे-अच्छे विद्वान् भी इसका आनन्द लेते हैं और अपढ़ और अशिक्षित भी इसे बड़े चाव से गाते और सुनते हैं।

ज्ञान-प्राप्ति के लिए मनुष्य ने वर्णमाला का निर्माण किया पर जो उसे नहीं जानते, वे ज्ञान से भी वंचित रह जाते हैं। ज्ञान और मनुष्य के बीच मे वह एक दीवार है, जिसे लाँघे बिना न कोई वाल्मीकि, व्यास को जान सकता है, न कालिदास को और न शेखसादी या शेक्सपियर को। पर तुलसीदास ने अक्षरों की उस दीवार को तोड़ दिया है। अक्षर-ज्ञान से रहित अहीर, धोबी, चमार, नाई, कहार आदि जातियों के लोग 'मानस' की चौपाइयाँ अपने जातीय गीतों में मिलाकर गाते और नाचते है। अक्षरों पर इस तरह की विजय संसार में शायद ही किसी कवि को प्राप्त हुई हो।

ऐसे ग्रन्थ-रत्न की चर्चा के पहले उसके कर्ता कवि का जीवन-चरित जानने की लालसा उसके प्रेमी पाठकों में स्वभावतः उत्पन्न होती है। पर खेद है, कवि मे अपने गौरव का गर्व था ही नहीं, इससे उसने अपने बारे में हमे कुछ नहीं बताया। अपने राम से विनय-प्रदर्शन करने में प्रसंगवश उसके मुख से जो कुछ निकला है, उसीसे हम उसके जीवन-चरित का कुछ अनुमान कर सकते है। उसके सम्बन्ध की कुछ दन्त-कथाएँ भी मुख से मुख में चली आ रही है, उनमें भी सचाई का बहुत-कुछ अंश है। हमने उन सबको, जो उपलब्ध हो सकीं, एकत्र कर दिया है।

२

स्वकथित जीवनी

तुलसीदास को इस लोक से गये तीन सौ वर्षों से अधिक हो गए, पर अभी तक निश्चित रूप से यह निर्णय नहीं हो सका कि वे कौन थे ? कहाँ के थे ? कब उन्होंने जन्म लिया ? कब वे परलोकवासी हुए ? और उन्होंने कब और कितने ग्रन्थ रचे ?

वे एक विद्वान् थे, महाकवि थे, सम्मानित थे, पर उनमें अभिमान नहीं था, कीर्ति की लोलुपता नहीं थी; इससे उन्होंने अपने विषय मे बहुत ही थोड़ा कहा है और वह भी उनके सांसारिक दु.खों की स्मृति-मात्र है।

उनकी लोकमान्यता की तो एक भी बात हमे उनकी लेखनी से नहीं मिलती। जहाँ कहीं उन्होंने अपने सांसारिक सुख का कुछ स्मरण किया है, वहाँ हम उन्हें नम्रता और अपने आराध्य देव के प्रति कृतज्ञता से दबा हुआ ही पाते हैं। इससे उनके कष्टों को हम जितना जान सके हैं, उतना उनके सुखों को नहीं।

तुलसीदास के रचे हुए कुछ ग्रन्थों मे हमे उनके जीवन की एक अस्पष्ट आभा देखने को मिलती है, उसके आधार पर उनकी जीवनी का एक धुँधला-सा चित्र तैयार हो सकता है।

उनके ग्रन्थों से उनका जीवन-वृत्त निकालने के पहले हम उनके नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम दे देना आवश्यक समझते हैं।

उनके नाम से जितने ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं, उनके नाम ये हैं—

१—रामचरितमानस
२—कवितावली रामायण
३—गीतावली रामायण
४—रामलला नहछू
५—वैराग्य-संदीपनी
६—बरवै रामायण
७—पार्वती-मङ्गल
८—जानकी-मङ्गल
९—रामाज्ञा-प्रश्न
१०—दोहावली रामायण
११ श्रीकृष्ण-गीतावली
१२—विनय-पत्रिका

१३—छन्दावली रामायण	२३—राम-शलाका
१४—पदावली रामायण	२४—राम-सतसई
१५—कुण्डलिया रामायण	२५—कलिधर्माधर्म-निरूपण
१६—छप्पै रामायण	२६—बारहमासी
१७—कड़खा रामायण	२७—मंगल रामायण
१८—रोला रामायण	२८—सूर्य पुराण
१९—झूलना रामायण	२९—राम मुक्तावली
२०—हनुमान-बाहुक	३०—गीता भाषा
२१—संकट-मोचन	३१—ज्ञान-परिकरण
२२—हनुमान-चालीसा	

इनमें कितने ग्रन्थ वास्तव मे तुलसीदास के रचे हुए हैं, इस विषय पर हम स्वतन्त्र रूप से आगे विचार करेंगे।

इनमें चार-पाँच ही ग्रन्थ ऐसे है, जिनमे उन्होंने कहीं-कहीं प्रसङ्गवश अपने जीवन की कुछ झलक डाल दी है। वे ग्रन्थ ये है—रामचरितमानस, कवितावली, विनय-पत्रिका, दोहावली और बरवै रामायण।

इन ग्रन्थो से उनके जीवन की जो बातें मालूम हो सकी है, उनके आधार पर उनकी स्वकथित जीवनी यहाँ दी जाती है—

समय

तुलसीदास के जन्म-काल का यद्यपि ठीक-ठीक पता नहीं चलता, पर वे किस समय में विद्यमान थे, यह अज्ञात नही है। 'रामचरितमानस' में उन्होंने उसकी रचना का यह समय दिया है:

संवत् सोलह सै इकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥

× × × ×

नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

तुलसीदास के दोहों का एक संग्रह 'तुलसी-सतसई' नाम से प्रसिद्ध है। उसमें उसका रचना-काल सं० १६४२ दिया हुआ है:

अहि रसना (२) थन धेनु (४) रस (६), गनपति द्विज (१) गुरुवार।
माधव सित सिय जनम तिथि, सतसैया अवतार॥

'पार्वती-मंगल' में संवत् का नाम 'जय' दिया हुआ है:

जय संवत् फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल— ॥

'कवितावली' में यद्यपि कोई समय स्पष्ट नहीं दिया हुआ है, पर उसमे

रुद्रबीसी और मीन की सनीचरी का जिक्र आता है .

बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बडो बारानसी
बूझिये न ऐसी गति संकर सहार की।

× × × ×

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामे
कोढ मे की खाजु-सी सनीचरी है मीन की।

गणना से रुद्रबीसी का समय सं० १६६५ से १६८५ तक और मीन के शनैश्चर का योग सं० १६६९ से १६७१ के मध्य तक पड़ता है। 'कवितावली' का अन्तिम अंश इन्हीं दिनों में लिखा गया होगा।

'विनय-पत्रिका' में कोई सन्-संवत् नहीं दिया हुआ है। पर 'विनय पत्रिका' तब लिखी गई थी, जब तुलसीदास स्थायी रूप से काशी मे रहने लगे थे।

ऊपर के प्रमाणों से इतना तो निश्चित ही है कि तुलसीदास सं० १६३१ और सं० १६८५ के बीच में विद्यमान थे। अब आगे यह तो अनुमान ही करना पड़ेगा कि 'रामचरितमानस' लिखने के समय तक वे कम-से-कम कितने वर्ष के हो चुके होंगे।

वंश

तुलसीदास ब्राह्मण-वंश के थे। 'विनय-पत्रिका' में वे लिखते हैं :

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को।।

इसमे आये हुए 'सुकुल' शब्द से मै यह अर्थ लेता हूँ कि वे शुक्ल ब्राह्मण थे। पर यह अर्थ न भी लिया जाय, तो 'सुकुल' शब्द का 'उत्तम कुल' अर्थ करने से भी ब्राह्मण-वंश ही समझा जायगा। तुलसीदास ब्राह्मणों के बड़े ही प्रशंसक थे भी। और दूसरे चरण में आया हुआ 'पंडित' शब्द तो और भी इस बात को पुष्ट करता है कि वे ब्राह्मण-वंश के थे। 'कवितावली' में उन्होंने अपने को 'जायो कुल मंगन' (मंगन-कुल में उत्पन्न हुआ) लिखा है। ब्राह्मणों के सिवा मंगन और कौन होगा ?

जन्म और बालपन

तुलसीदास के जन्म लेते ही उनकी माता का देहान्त हो गया था। 'विनय-पत्रिका' में वे लिखते है :

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यो तज्यो मातु पिताहू।

'कुटिल कीट' का अर्थ 'विनय-पत्रिका' के टीकाकारों ने सर्पिणी आदि किया है, पर सोरों और उसके आस-पास 'कुटीला' नाम का एक कीड़ा होता

है, जो केकड़े की जाति का है और उसकी यह विशेषता कही जाती है कि वह अपनी माता का पेट फाड़कर बाहर निकलता है। तुलसीदास के उत्पन्न होते ही उनकी माता का देहान्त हो गया था; इसीसे उन्होंने अपनी तुलना 'कुटिल कीट' (कुटीला) से की है।

माता की मृत्यु के बाद ही, सम्भवतः थोड़े ही दिनों में, उनके पिता का भी देहान्त हो गया होगा। 'पिता' के साथ लगा हुआ 'हू' शब्द इसी अर्थ का द्योतक है।

'विनय-पत्रिका' में उन्होंने एक स्थान पर ऐसा ही संकेत और भी किया है :

स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक औचट उलटि न हेरो।

सोरों और उसके आस-पास तिजरा बच्चों की पसली चलने की बीमारी को कहते है। उसके लिए यह टोटका किया जाता है कि आटे का एक पुतला बनाकर लोग चौराहे पर छोड़ आते है और फिर उलटकर उसकी ओर देखते नहीं। देखने से रोग के फिर वापस आने का भय रहता है। इससे भी पता चलता है कि तुलसीदास के माता-पिता उन्हें बचपन ही में छोड़कर मर गए थे।

'कवितावली' में एक स्थान पर वे और भी कहते है कि माता-पिता ने जन्म देकर छोड़ दिया :

मातु-पिता जग जाय तज्यो।

माता-पिता-विहीन, अनाथ तुलसीदास घर-घर घूमते और टुकड़े माँगकर खाते थे। बचपन के इस कष्ट को वे जीवन की अन्तिम घड़ियों तक भी न भूल सके। वृद्धावस्था में जब वे केवल मरने ही के लिए काशी में जा बैठे थे, तब भी वे अपने बाल्य-काल के कष्टों का चित्र देखते ही रहते थे।

बचपन में कथरी ओढ़े हुए, हाथ मे मिट्टी का लोटा लिय हुए वे घर-घर टुकड़े माँगते फिरते थे। उन्होंने सब जातियों के टुकड़े खाये थे। उन दिनों चार चने को वे चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के समान समझते थे। द्वार-द्वार घूमकर, दाँत निकालकर, पेट खलाकर, पैरों पड़कर वे गृहस्थों को अपनी गरीबी बताया करते थे। पेट ने उन्हें कौन सा नाच नहीं नचाया ? दुष्टों तक के आगे उन्होंने अपना पेट खोलकर दिखलाया, पर किसी ने उस अनाथ को अपनाया नहीं, किसी ने उनसे बात भी नहीं की। स्वार्थ के साथी उनके माता-पिता तो तिजरा के टोटके की तरह उन्हें छोड़कर पहले ही चले गए। उन्होंने पलटकर देखा ही नही .

घर-घर माँगे टूक— (दोहावली)

पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है।
लोक कहै, बिधिहू न लिख्यो सपनेहू नही अपने बर बाहै ॥
राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिन बानर के चरवाहै ॥
(कवितावली)

मातु-पिता जग जाय तज्यो बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई।।
(कवितावली)

जायो कुल मगन बधावनो बजायो,
सुनि भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौ चारि फल चारि ही चनक को ॥
(कवितावली)

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस,
खाये टूक सबके विदित बात दुनी सो।
(कवितावली)

छाछी को ललात—
(कवितावली)

हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदौ कनै।
(गीतावली)

चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यो कबहुँ न पेट भरो।
(विनय-पत्रिका)

जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहुँ सृज्यो अवडेरे,
फिरेउ ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे।
(विनय-पत्रिका)

बाल दसाहूँ न खेल्यो खेलत सुदाउँ मैं।
(विनय-पत्रिका)

स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक औचट उलटि न हेरो।
(विनय-पत्रिका)

द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनि दस दिसा दुख दोष दलन छम, कियो न संभाषन काहूँ।

काहे को रोष दोष काहि धौं मेरे ही अभाग मोसो सकुचत छुइ सब छाहूँ ।।
(विनय-पत्रिका)

हाहा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार परी न छार मुँह बायो ।
असन बसन बिन बावरो जहँ-तहँ उठि धायो ।।
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु-खिनु पेट खलायो ।
साँच कहौ नाच कौन सो जो न मोहि लोभ लघु निलज नचायो ।।
(विनय-पत्रिका)

ये हैं तुलसीदास के हृदयोद्गार, जो उनकी वृद्धावस्था में उनके मुख से निकले थे। अपनी दरिद्रता का ऐसा सजीव वर्णन शायद ही किसी कवि ने किया हो। एक-एक शब्द से करुणा टपक रही है।

ईश्वर की विचित्र लीला है कि उसने ऐसे एक परम दरिद्र के हाथों हमें 'रामचरितमानस'-जैसा विभव बाँटा।

तुलसीदास के शब्दों में उनके बालपन की हमें इतनी ही झलक मिलती है। कब तक उनकी यह दशा रही, यह ज्ञात नहीं है। पर वे उन्हीं दिनों कभी संतों के हाथों में पड़ गए थे :

दुखित देखि सन्तन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ ।
(विनय-पत्रिका)

संतों के अनुरोध से या स्वजाति का अनाथ बालक जानकर नरसिंहजी नाम के एक सन्त ने तुलसीदास को अपने पास रख लिया। उन्होंने तुलसी की पीठ पर हाथ फेरा और बाँह पकड़कर अपना लिया :

मीजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि--
(विनय-पत्रिका)

गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो ।
(विनय पत्रिका)

इसके बाद उनका विद्यार्थी-जीवन प्रारम्भ होता है।

तुलसीदास का पहला नाम

तुलसीदास का पहला नाम रामबोला था। सम्भव है, राम-राम बोलकर वे भीख माँगा करते थे, इससे लोगों ने उनका नाम 'रामबोला' या 'रामबोलवा' रख लिया होगा। माता-पिता तो मर ही चुके थे, नाम कौन रखता? तुलसीदास को किसी व्यक्ति-विशेष का नाम नहीं मालूम था कि किसने उनका नाम रामबोला रखा था, इसीसे वे कहते हैं कि राम ने नाम रख दिया था :

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम ।
(विनय-पत्रिका)

रामबोला नाम हौ गुलाम राम साहि को।
(कवितावली)

यह भी पता नहीं चलता कि किसने और कब रामबोला का नाम तुलसीदास रख दिया।

गुरु और विद्या

तुलसीदास के विद्या-गुरु का नाम नरसिंह था। 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में गुरु की वंदना करते हुए तुलसीदास ने अपने गुरु का नामोल्लेख आदर के साथ किया भी है :

बन्दौ गुरु-पद-कंज, कृपा-सिधु नर रूप हरि।
महा मोह तम-पुञ्ज, जासु बचन रबि-कर निकर॥

'हरि' शब्द 'सिंह' और 'नारायण' दोनों का पर्यायवाची है। कुछ लोग 'हरि' पाठ शुद्ध नहीं मानते। उनका कथन है कि 'नर रूप हर' पाठ शुद्ध है। इसमें वे दो दलीले देते है। पहली यह कि तुलसीदास शिव को गुरु मानते थे। बालकांड के तीसरे श्लोक में उन्होंने 'गुरुं शंकररूपिणम्' लिखा भी है। इसलिए शिव का पर्यायवाची 'हर' शब्द ही उन्होंने लिखा होगा। मुन्शी सुखदेवलाल ने स्वसम्पादित 'रामचरितमानस' में 'हर' ही पाठ रखा है। काशी के प्रसिद्ध रामायणी पंडित विजयानन्द त्रिपाठी ने भी 'हर' ही पाठ रखा है।

दूसरी दलील यह है कि तुलसीदास ने उक्त सोरठे के ऊपर के चारों सोरठों में उनके दूसरे और चौथे चरणों के तुक भी मिलाकर लिखे है। जैसे, वदन-सदन, गहन-दहन, नयन-सयन और अयन-मयन। इसी क्रम से पाँचवें सोरठे का भी तुक हर और निकर मिलना चाहिए। हरि होने से अनुप्रास ठीक नहीं मिलता।

अब हम दोनों दलीलों पर विचार करते है। अभी तक मेरे देखने में 'मानस' की एक भी हस्तलिखित प्रति ऐसी नहीं मिली, जिसमें 'हर' पाठ हो। अयोध्या की प्रति सं० १६६१ की है। उसमें भी 'हरि' ही पाठ है। मलीहाबाद की प्रति तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाती है, यद्यपि उसमें कहीं संवत् का उल्लेख नहीं है। उसमें भी 'हरि' पाठ है।

मलीहाबाद में दूसरी प्रति सं० १७७६ की है, उसमें भी 'हरि' पाठ हैं। अतएव 'हरि' पाठ को हम आधुनिक कैसे माने? अब रही यह बात कि तुलसीदास ने सोरठे के पहले 'गुरुं शकररूपिणम्' लिखकर गुरु को शिव का रूप दिया है। यही भाव सोरठे मे भी होना चाहिए। पर तुलसीदास के लिए कहीं यह बन्धन तो था नहीं कि वे नर में नारायण को अभिव्यक्त न

करें। रुद्र की अपेक्षा हरि में तो अधिक कृपा का भाव माना जाता है और उन्होंने अपने गुरु नरसिंह के 'सिंह' को 'हरि' नाम से व्यक्त किया है, तब तो 'हर' पाठ हो ही नहीं सकता।

दूसरी दलील तुक मिलने की बहुत जोरदार नहीं है। तुलसीदास ने अच्छे-से-अच्छे तुक मिलाये है, पर लापरवाहियाँ भी कम नहीं की है। उसी सोरठे में उन्होंने 'कंज' का तुक 'पुञ्ज' मिलाया है। जब वे तुक के मामले मे इतने स्वतन्त्र थे, तब 'निकर' के लिए वे विवश माने जायँ, यह युक्ति-संगत नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि शुद्ध पाठ 'हरि' ही है और वह नरसिंह के सिंह के लिए भी व्यवहृत हुआ है।

राम नाम का उच्चारण करते हुए, घर-घर रोटी के टुकड़े माँगते हुए बालक रामबोला को गुरु ने बुलाकर पूछा—क्या चाहते हो ?

रामबोला ने कहा :

बूझ्यो ज्यों ही कह्यो 'मै हूँ चेरो ह्वैहौं रावरोजू
मेरो कोऊ कहूँ नाहि, चरन गहत हौ।'
(विनय-पत्रिका)

इस पर कृपासिंधु गुरु ने रामबोला की पीठ पर हाथ फेरा और उसकी बाँह पकड़कर उसे अपना लिया :

मीजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि
(विनय-पत्रिका)

इस प्रकार रामबोला, जो राम-राम बोलते हुए भीख माँगता फिरता था, दरिद्रता के समुद्र मे डूबता-उतराता एक किनारे लगा। उसकी दशा पर तरस खाकर गुरु नरसिंह ने उसे, सम्भव है स्वजाति का बालक समझकर, अपने निकट शरण दे दी। इस घटना के बाद ही रामबोला का नाम तुलसीदास हुआ होगा।

तुलसीदास ने वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य, नाटक आदि संस्कृत-साहित्य के प्रायः सभी विषयों के प्रसिद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उन्होंने 'रामचरित-मानस' के प्रारम्भ में :

नानापुराणनिगमागमसम्मत यद्रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि

की प्रतिज्ञा एक अधिकारी ही की हैसियत से की थी।

गुरु के पास वे युवावस्था तक रहे। अनेक शास्त्रों के अध्ययन के लिए काफी समय आवश्यक भी है। उनके गुरु रामोपासक थे। वे प्रायः राम की कथा कहा करते थे। तुलसीदास ने बचपन में पहले-पहल गुरु-

मुख से राम-कथा सुनी थी; पर उस समय वे बिलकुल बच्चे थे, इससे वे उसे ठीक-ठीक समझ नहीं सके :

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत ।
समुझि नही तसि बालपनु, तब अति रहेउँ अचेत ।।
(रामचरितमानस)

गुरु राम की कथा कहते ही रहते थे । तुलसीदास की आयु और अध्ययन के साथ उनकी बुद्धि का विकास भी होता रहा । गुरु के समीप रहकर कई बार राम-कथा सुनने से उन्हें कुछ-कुछ समझ पड़ने लगा । कम-से-कम उतना तो उन्होंने समझ ही लिया था जितना 'रामचरितमानस' में उन्होंने व्यक्त किया है । फिर भी उसे वे 'कुछ' ही कहते हैं :

तदपि कही गुरु बारहिं बारा । समुझि परी कछु मति अनुसारा ।।

'रामचरितमानस' लिख सकने की योग्यता प्राप्त कर लेने पर वे प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं गुरु से सुनी हुई राम-कथा को साधारण बोल-चाल की भाषा में लिखूँगा :

भाषाबद्ध करबि मैं सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ।

'मोरे मन प्रबोध जेहि होई' लिखकर उन्होंने यह प्रकट किया है कि उन्होंने अपनी परीक्षा ली है कि देखूँ तो मैंने राम-कथा ठीक-ठीक समझी है या नहीं । यह बात उन्होंने 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में भी कही है कि मैंने राम-कथा अपने सन्तोष के लिए लिखी है :

स्वान्तः सुखाय तुलसीरघुनाथगाथा,
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति ।

यह नहीं कहा जा सकता कि कितने वर्षों तक वे गुरु के पास अध्ययन करते रहे, पर 'रामचरितमानस' लिख सकने भर की शिक्षा के लिए दस-पन्द्रह वर्षों का लगातार परिश्रम तो चाहिए ही ।

विवाह

तुलसीदास का विवाह हुआ था । 'विनय-पत्रिका' में उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है :

लरिकाई बीती अचेत चित चचलता चौगुनो चाय ।
जोबन जर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरे मदन बाय ।

गृहस्थ-जीवन

विद्याध्ययन के पश्चात् तुलसीदास ने विवाह किया था । विवाह के उप-

रान्त वे गृहस्थी चलाने के लिए उद्योग-धन्धे में लगे। 'कवितावली' मे वे कहते हैं :

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
राम नाम लेत माँगि खात टूकटाक हौ।
परचो लोक-रीति मे पुनीत प्रीति रामराय,
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौ॥

लोक-रीति में पड़ने और मोहवश रामराय की पुनीत प्रीति को तोड़ बैठने को विवाह के सिवा और क्या कहा जा सकता है ?

धन के लिए तुलसीदास ने खेती की, व्यापार किया और अनेकों उपाय रचे :

मध्य बयस धन हेतु गँवाई कृषी वनिज नाना उपाय।
(विनय-पत्रिका)

तुलसीदास की कविता में उनके खेतिहर और व्यापारी होने की खासी झलक मिलती है। वे ऐसे-ऐसे शब्दों का प्रयोग करते है जो किसानों और व्यापारियों के ठेठ बोल-चाल के है। जैसे :

जानि पुरजन त्रसे, धीर दै लखन हँसे,
बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं।
× × ×
कुँवर चढाई भौहे, अब को बिलोकै सौहे,
जहँ-तहँ ये अचेत खेत के से धोखे है
देखे नर-नारि कहे साग खाइ जाये माइ
बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे है॥
(गीतावली)

नापे-जोखे का प्रयोग बिलकुल किसानों का है। खेता का धोखा तो खास उनका ही शब्द है। खेत को रात में जानवरों से बचाने के लिए किसान उसमें एक डंडा गाड़कर उसके सिरे पर काली हाँडी रख देते है और डंडे पर कपड़ा लटका देते हैं। जानवर उसे आदमी समझकर खेत में नहीं आते। उसी को खेत का धोखा कहते हैं। पीना भी किसानों की चीज है। पीना कहते है तिल की खली को। देहात में किसान लोग तिल का तेल निकलवाकर उसकी खली मे गुड़ मिलाकर खाते है। पीना यद्यपि पुष्टिकारक आहार है, पर समझा जाता है निकृष्ट श्रेणी का। इसी से वह ताने के लिए उपयोग में आता है। 'साग खाइ जाये माइ' अर्थात् तुझे माँ ने साग खाकर जन्म दिया है, यह भी

किसानों की बोल-चाल का वाक्य है।

'विनय-पत्रिका' में वे एक स्थान पर ऐसी बात कहते है, जो किसान ही के अनुभव की है :

करम बचन हिये कहौ न कपट किये,
ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की।

सन की गाँठ पानी पड़ने से और भी कस उठती है और फिर सहज में नहीं छूटती। किसान इसे रोज भोगता है।

ऐसे और बहुत से प्रमाण है, जिनसे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि तुलसीदास ने खेतिहर का जीवन बिताया था।

उन्होंने व्यापार भी किया था। व्यापारी-समाज में प्रचलित बहुत से प्रयोग उनकी कविता में मिलते है :

स्वारथ के साथी मेरे हाथ सो न लेवा देई।

(विनय-पत्रिका)

'लेवा-देई' ठेठ व्यापारी प्रयोग है।

एक और प्रयोग देखिये :

और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसम के खसम तुही पै दशरत्थ के।

(कवितावली)

इसमे 'सुलाखि' और 'लसम' ये दो शब्द चाँदी के व्यापारियों के है। सुलाखना कहते है छेनी से काटकर यह देखने को कि वह चाँदी है या नही। और लसम कहते है सूबड़ या खोटी चाँदी को। इस प्रकार के और भी प्रमाण है जो तुलसीदास के व्यापारी जीवन की कुछ साक्षी रखते है।

वैराग्य

गृहस्थ-जीवन में वे कब तक रहे ? यह उनके ग्रन्थों से प्रकट नहीं होता। पर सं० १६३१ ('रामचरित मानस' के रचना-काल) के बहुत पहले वे विरक्त हो चुके थे। विरक्त होने का भी कोई मूल कारण उनके ग्रन्थों में नहीं है। घर छोड़ने के बाद वे कहाँ-कहाँ घूमते-फिरते और सत्संग करते रहे, इसका भी पता नहीं चलता; पर प्रयाग, चित्रकूट और काशी की यात्रा करके वे अयोध्या में जा बैठे थे, जहाँ उन्होंने 'रामचरित मानस' का प्रारम्भ किया था।

गोसाईं की उपाधि

तुलसीदास जन्म से गोसाईं नहीं थे। यह एक उपाधि थी, जो उन्हें किसी समय किसी से मिली थी :

तुलसी गोसाईं भयो, भोंडे दिन भूलि गयो,
ताको फल पावत निदान परिपाक हौ ।
(हनुमान-बाहुक)

भ्रमण

तुलसीदास बीच-बीच में भ्रमण भी करते रहते थे । 'रामचरित मानस' को उन्होंने अयोध्या मे प्रारम्भ किया था, पर बाल-काण्ड, अयोध्या-काण्ड और अरण्य-काण्ड लिखने के पश्चात् वे काशी चले गए और वहीं उन्होंने किष्किन्धा-काण्ड प्रारम्भ किया :

मुक्तिजन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघहानिकर ।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न ।।
(किष्किन्धा-काण्ड)

तीर्थराज प्रयाग के प्रति उनमें बड़ी श्रद्धा थी । वे प्रयाग भी आते-जाते रहते थे :

देव कहै अपनी अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे ।
देखि मिटै अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे ।।
सोहै सितासित को मिलिबो तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे ।
मानो हरे तृण चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ।।
(कवितावली)

चित्रकूट भी उनके प्रिय स्थानों मे था । वहाँ भी वे बार-बार जाते रहते थे । चित्रकूट-सम्बन्धी छन्द चित्रकूट ही में रचे गए होंगे :

अब चित चेति चित्रकूटहिं चलु ।
(विनय-पत्रिका)

तुलसी जो रामपद चहिय प्रेम ।
सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ।।
(विनय-पत्रिका)

सब दिन चित्रकूट नीको लागत ।
वर्षा ऋतु प्रवेस विसेष गिरि देखन मन अनुरागत ।।
चहुँदिसि बन सम्पन्न बिहँग मृग बोलत सोभा पावत ।
जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ।।
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमँगे सृङ्गनि ।
मनहुँ आदि अभोज बिराजत सेवित सुर मुनि भृङ्गनि ।।
सिखर परस घन घटहिं मिलति बग-पाँति सो छबि कबि बरनी ।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ।।

जल जुत बिमल सिलनि झलकत नभ बन प्रतिबिम्ब तरङ्ग ।
मानहुँ जग रचना बिचित्र बिलसति विराट अँग अङ्ग ।।
मन्दाकिनिहिं मिलत झरना झरि-झरि भरि-भरि जल आछें ।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम भगति के पाछे ।।

(विनय-पत्रिका)

किसी समय तुलसीदास बारिपुर और दिगपुर भी गये थे। यह वह स्थान है, जहाँ वाल्मीकि मुनि का आश्रम था और जहाँ सीता का निर्वासन और लव-कुश का जन्म हुआ था :

जहाँ बालमीकि भये ब्याध तें मुनीन्द्र साधु,
मरा मरा जपे सुनि सिख ऋषि सात की ।
सीय को निवास लवकुस को जनम थल,
तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की ।।
विटप महीप सुरसरित समीप सोहै,
सीतावट पेखत पुनीत होत पातकी ।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी चरन जलजात की ।।

(कवितावली)

वाल्मीकि-आश्रम के निवासियों की बोल-चाल और व्यवहार का भी उल्लेख तुलसीदास ने किया है :

देवधुनि पास मुनिवास श्रीनिवास जहाँ,
प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि है ।
जोग जप जाग को विराग को पुनीत पीठ,
रागिन पै सीठि दीठि बाहरी निहारि है ।।
'आयसु', 'आदेश', 'बाबा', 'भलो भलो', 'भावसिद्ध',
तुलसी विचारि जोगी कहत पुकारि है ।
राम भगतन को तौ कामतरु तें अधिक,
सियबट सेये करतल फल चारि हैं ।।

(कवितावली)

सम्मान

'रामचरितमानस'-जैसे चमत्कारपूर्ण काव्य के रचयिता का सम्मानित होना स्वाभाविक ही है। तुलसीदास ने अपने सम्मान का अनुभव बार-बार किया है :

केहि गिनती महँ गिनती, जस बन घास । राम जपत भये तुलसी, तुलसीदास ।।

(बरवै रामायण)

× × ×

घर घर माँगे टूक पुनि, भूपन पूजे पाय ।
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब रामसहाय ।।

(दोहावली)

× × ×

हौं तो सदा खर को असवार तिहारोई नाम गयद चढायो ।

(कवितावली)

× × ×

नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवास ।
जो सुमिरत भये भाग ते, तुलसी तुलसीदास ।।

(रामचरितमानस)

× × ×

बचन बिकार करतबउ खुवार मन बिगत बिचार कलिमल कौ निधानु है ।

× × ×

तेऊ तुलसी को लोग भलो भलो कहै—

(कवितावली)

रामनाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप,
तुलसी से जग मनियत महामुनी सो ।

(कवितावली)

× × ×

तुलसी सो साहिब समथ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को ।
नाम राम ! रावरो सयानो किधौ बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन ते तनक को ।।

(कवितावली)

× × ×

छाछी को ललात जे ते राम नाम के प्रसाद,
खात खुनसात सोधे दूध की मलाई है ।

(कवितावली)

× × ×

साधु जानै महा साधु ।

× × ×

कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है ।

(कवितावली)

× × ×

जागे भोगी भोग ही, बियोगी रोगी रोग बस,
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के ।

(कवितावली)

× × ×

पतित पावन राम नाम सो न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥

(विनय-पत्रिका)

× × ×

लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै, केहि काज ।
सो तुलसी मँहगो कियो, राम गरीब नेवाज ॥

(दोहावली)

राम नाम के प्रभाव से तुलसीदास का प्रताप इतना बढ़ा कि राजा भी उनके पैर पूजने लगे थे ।

प्रतिष्ठा अधिक बढ़ जाने पर उनके भजन में बाधा पड़ने लगी थी । संभव हैं, मिलने-जुलने वालों के लिए उन्हें अधिक समय देना पड़ता रहा हो । संयोग से उन्हीं दिनों उनके शरीर में फोड़े निकल आए । तब उनको अपनी सम्मान-लोलुपता पर बड़ी ग्लानि हुई थी :

तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो,
दियो फल सीलसिन्धु अपने सुभाय को ।
नीच यही बीच पति पाइ भरुआइगो,
बिहाय प्रभु भजन बचन मन काय को ।
ताते तनु पेखियत घोर बरतोर मिस,
फूटि-फूटि निकसत लोन रामराय को ॥

(कवितावली)

काशी-वास

तुलसीदास के जीवन के अन्तिम कई वर्ष लगातार काशी में बीते और अन्त में उनका स्वर्गवास भी वहीं हुआ । राम के भक्त होकर वे राम की

राजधानी छोड़कर काशी क्यों आये, इसका उत्तर ग्रन्थों से नहीं मिल सकता। 'दोहावली' के कुछ दोहों मे तीर्थ-स्थानों की तत्कालीन दशा का जो चित्र खींचा है, उससे इतना अनुमान किया जा सकता है, कि उन दिनों अयोध्या में काशी की अपेक्षा अशान्ति अधिक थी और इसी से वे अयोध्या छोड़कर काशी चले गए :

सुर सदननि तीरथ पुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मदहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज॥
गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥
फोरहिं सिल लोढ़ा सदन, लागे अढ़ुक पहार।
कायर कूर कुपूत कलि, घर घर सहस डहार॥

वे काशी कब गये ? इसका कोई ठीक समय नहीं बताया जा सकता। पर यह निश्चित है कि वृद्धावस्था मे अन्तिम बार काशी जाकर वे फिर कहीं नहीं गये और वहीं से परम धाम को पधार गए। काशी में शरीर छोड़ने ही की लालसा से वे गये भी थे :

जीव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ तुलसी तिहुँ दाह दहो है।
दोष न काहू कियो अपनो सपनेहु नही सुख लेस लहो है॥
राम के नाम ते होउ सो होउ न सोउ हिये रसना ही कहो है।
कियो न कछू करिबो न कछू कहिबो न कछू मरिबोई रहो है।

(कवितावली)

× × ×

जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहि
मालुम है तोहि मरिबोई को रहतु है।

(कवितावली)

तुलसीदास रुद्रबीसी के समय में काशी मे थे, जो सं० १६६५ से १६८५ तक थी :

अपनी बीसो आपुही, पुरिहि लगाये हाथ।

(दोहावली)

× × ×

बीसी बिस्वनाथ की विषाद बड़ो बारानसी।

(कवितावली)

उस समय शनैश्चर भी मीन राशि पर था :

कोढ में की खाजु-सी सनीचरी है मीन की।

(कवितावली)

मीन राशि पर शनैश्चर की स्थिति का योग सं० १६६६ के प्रारम्भ से १६७१ के मध्य तक पड़ा था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि तुलसीदास सं० १६६६ से सं० १६७१ के बीच किसी समय काशी में जरूर थे।

काशी में तुलसीदास का निवास-स्थान

काशी में तुलसीदास गंगा-तट पर रहते थे। प्रत्येक दिन गंगा-स्नान और गंगा-जल-पान करते थे :

भागीरथी जल-पान करौ अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौ।

(कवितावली)

× × ×

चेरौ राम राय को सुजस सुनि तेरो हर !

पाइँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौ ॥

(कवितावली)

काशी में तुलसीदास ने सुख नहीं पाया

जीवन के अन्तिम भाग में तुलसीदास स्थायी रूप से काशी मे जाकर रहने लगे थे। पर काशी में उन्हें सुख नहीं मिला। पहले उन्हें मानसिक कष्ट और फिर शारीरिक कष्ट भोगने पड़े। काशी के शैवों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। सम्भवतः राम-भक्त तुलसीदास का बढ़ा हुआ और बढ़ता हुआ सम्मान ही उनके दुःख का मूल कारण था।

राजा राम के दास होकर भी वे शिवजी का सुयश सुनकर काशी चले गए थे। पर शिव के भक्तों ने उनको इतना कष्ट दिया कि नम्रता और क्षमा की मूर्ति तुलसीदास की मनोव्यथा असह्य हो उठी और उन्होंने इसकी शिकायत शिवजी से की :

देवसरि सेवौ वामदेव गाँव रावरेही

नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौ।

दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक

लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं ॥

एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै

ताको जोर देवे दीन द्वारे गुदरत हौं।

पाइकै उराहनो उराहनो म दीजै मोहि

काल कला काशीनाथ कहे निबरत हौ ॥

(कवितावली)

अगले कवित्त में वे शिव-सेवकों के विविध रूपों का वर्णन करके अपने

को उनके मुकाबले में बिलकुल असमर्थ बताते और पार्वती से प्रार्थना करते हैं कि किसी तरह उनका पिण्ड छुड़ाइये :

भूत भव भवत पिसाच भूत प्रेत प्रिय
आपनो समाज सिब आपु नीके जानिये।
नाना बेष बाहन बिभूषन बसन बास
खान-पान बलि-पूजा-विधि को बखानिये॥
राम के गुलामनि की रीति-प्रीति सूधी सब
सबसों सनेह सब ही को सनमानिये।
तुलसी की सुधरै सुधारें भूतनाथ ही के
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिये॥
(कवितावली)

उनका आदर-सत्कार देखकर आस-पास के शिव-सेवक उनसे ईर्ष्या करते और उन्हें कष्ट भी पहुँचाते रहे होंगे। तुलसीदास भी तत्कालीन साधुओं गोसाइयों और नाथों की कड़ी आलोचना करने में पीछे नहीं थे :

कीबे कहा, पढिबे को कहा, फल बूझि न बेद को भेद बिचारै।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद राम को नाम बिसारै।
बाद-बिबाद बिषाद बढाइ कै छाती पराई और आपनी जारै।
चारिहु को छहु को नव को दस आठ को[1] पाठ कुकाठ ज्यों फारै॥

× × ×

काशी मे बैठकर तुलसीदास ने भी उन लोगों को, जो राम के भक्त नहीं थे, बुरा-भला कहने में किफायत नहीं की थी। उनको उन्होंने शठ, गँवार, गधे सुअर और कुत्ते से भी गया बीता, बिना सींग-पूँछ का पशु कहा है। 'झूठ है, झूठो है, झूठो सदा जग सन्त कहत जे अन्त लहा है' इस प्रकार संसार को झूठा कहने वाले सन्तों को 'जे अन्त लहा है' कहकर उन्होंने ताना भी मारा है और 'काढत दन्त करत हहा है' कहकर उनकी खिल्ली भी उड़ाई है :

झूठो है झूठो है झूठो सदा जग सत कहंत जे अन्त लहा है।
ताको सहै सठ सकट कोटिक काढ़त दत करंत हहा है॥
जानपनी को गुमान बड़ो तुलसी के बिचार गँवार महा है।
जानकी जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥

किसी व्यक्ति को 'झूठो है' तीन बार कहकर तुलसीदास ने यह प्रकट

---

१. चार वेद, छ. दर्शन, नौ व्याकरण, अठारह पुराण।

किया है कि वे कितने झुंझलाये हुए थे और अन्त मे उसे गँवार कहकर सन्तोष-लाभ किया था। 'काढत दत करंत हहा है' किसी खास व्यक्ति के लिए ही लिखा गया है। हम देखते है कि काशी मे उनका यह दैनिक संघर्ष था, जो उन्हें सुख से भजन नहीं करने देता था :

तिन्ह ते खर सूकर स्वान भले जडता बस ते न कहै कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नही सो सही पसु पूँछ बिखान न द्वै ॥
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै।
जरि जाइ सो जीवन जानकीनाथ जियै जग मो तुम्हरो बिन ह्वै ॥

यह छन्द तो खूब खिसियाकर ही लिखा गया है। 'भई किन बाँझ गई किन च्वै' का 'च्वै' तो अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है और उसने कवि को साधारण कोटि के लोगों में लाकर खड़ा कर दिया है। इससे कवि की तत्कालीन विक्षुब्ध मनोदशा का अनुमान सहज में किया जा सकता है।

इसमें तो शक नहीं, तुलसीदास ने काशी में राम के विरोधियों से काफी मोरचा लिया। इसका परिणाम जो होना चाहिए था, वही हुआ भी। लोग उनके पीछे पड़ गए। तब बहुत दुखी होकर उन्होंने 'विनय-पत्रिका' लिखनी शुरू की। उसमें गणेश की स्तुति के बाद ही शिव की स्तुति है और आठवें ही पद तक पहुँचते-पहुँचते तुलसीदास ने अपनी तत्कालीन शिकायत शिवजी के समक्ष पेश कर ही दी थी :

गाँव बसत बामदेव मै कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे।
बेगि बोलि बलि बरजिये करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूँध्यो चहै सठसाखि सिहोरे ॥

इससे प्रकट होता है कि शिव के किंकरों ने तुलसीदास को कोई शारीरिक कष्ट पहुँचाया था। सम्भवतः उन्हें मारा-पीटा हो। वे शिवजी से प्रार्थना करते थे कि कृपया अपने सेवकों को रोकिये कि वे अपना कठोर कर्म बन्द करें। पर घिघियाते हुए भी वे शिव के किंकरों को 'शठ' कहते ही जाते थे। पता नहीं, शिवजी ने इसे कितना पसन्द किया होगा। ऐसे देवता-पुरुष का जीवन उस समय कैसे संकट में था, इसे तो आज भी स्मरण करके हृदय भर आता है।

तत्कालीन मुनियों की भी तुलसीदास ने अच्छी खबर ली है :

आगम बेद पुरान बखानत मारग कोटिन्ह जाहि न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको ईस कहावत सिद्ध सयाने ॥

धर्म सबै कलिकाल ग्रसे जप जोग, बिराग लै जीव पराने ।
को करि सोच मरै तुलसी हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने ।।

तुलसीदास की बढ़ती हुई कीर्ति विरोधियों को और भी उत्तेजित करती थी और वे उनकी जाति-पाँति के सम्बन्ध मे भी उनसे पूछ-ताछ करते और मनचाहा उत्तर न पाकर उनके विषय में अनेक अपमानजनक बातें फैलाते थे। उन्हें सुन-सुनकर परम विरक्त और केवल मरने ही के लिए काशी में आये हुए तुलसीदास भी विक्षुब्ध हो उठते होंगे, इसमें सन्देह ही क्या है ? उन्होंने प्रतिद्वन्द्वियों को जो उत्तर दिया है, उससे उनकी झुँझलाहट पर काफी प्रकाश पड़ता है :

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगारि न सोऊ ।।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ ।
माँगि कै खैबो मसीत में सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ ।।

'क्या मुझे किसी की बेटी से अपना बेटा ब्याहना है ?' यह बात पूर्ण आवेश ही में कही जाती है। मालूम नहीं, लोग उनकी जाति-पाँति के पीछे क्यों इतने पड़े थे; और तुलसीदास भी उसे छिपाते क्यों थे ?

मेरे जाति पाँति न चहौ काहू की जाति-पाँति,
मेरे कोऊ काम को न मैं काहू के काम को ।
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को ।।

× × ×

अतिही अयाने उपखानो नहि बूझै लोग
साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को ।
साधु कै असाधु कै भलो कै पोच सोच कहा
का काहू के द्वार परौ जो हौ सो हों राम को ।।

'साह ही के गोत गोत होत है गुलाम को', **इसका अभिप्राय यही जान पड़ता है कि वे किसी को अपनी जाति-पाँति नहीं बताते थे। स्मार्त वैष्णव होने के कारण सब प्रकार के साधुओं से वे भेद-भाव कम रखते थे, इसीसे काशी के शैवों मे वे आदर नहीं पाते थे :**

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज़ बड़ो
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है ।
साधु जानै महा साधु खल जानै महा खल
बानी झूँठी-साँची कोटि उठत हबूब है ।।

चहत न काहू सो न कहत काहू की कछु
सबकी सहत उर अन्तर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है ।।

इसमें शक नहीं, वे सबकी सहते थे, और न सहते तो करते भी क्या? पर उनके मन में ऊब नहीं थी, यह कहाँ तक सच है? जब कि वे डण्डे का जवाब लाठी से दिये जाते थे कि 'खल जानै महा खल' अर्थात् जो उनको खल जानता था, वह पहले ही से महा खल था। या यदि वह तुलसीदास को 'महा-खल' जानता था, तो स्वयं तो खल था ही।

उन दिनों काशी में राज-प्रबन्ध बहुत शिथिल हो रहा था दिन में डाके पड़ते थे और रात को चोर लगते थे। सम्भवतः तुलसीदास पर यह विपत्ति पड़ चुकी थी, क्योंकि वे शिव से प्रार्थना करते है कि कृपा करके मुझे अपने पुर में रहने दीजिये:

बासरि ढासनि के ढका, रजनी चहुँदिसि चोर।
संकर निजपुर राखिये, चितै सुलोचन कोर ।।

काशी में गोरख-पंथियों का प्राबल्य उन दिनों बहुत था। वे धर्म-क्षेत्र में अपना अधिकार जमाये हुए थे। सन्त मत वालों का उदय-काल था। उनसे भी तुलसीदास का संघर्ष चलता था:

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग
निगम नियोग तेसो केलिही छरो सो हैं।
(कवितावली)

साखी सबदी दोहरा, कहि किहिनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहि बेद पुरान ।।

× × ×

स्रुति समत हरिभक्ति पथ, सजुत बिरति बिबेक।
तेहि परिहरहि बिमोहबस, कल्पहि पंथ अनेक ।।

× × ×

सुर सदननि तीरथ पुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज ।।
(दोहावली)

मन्दिरों और तीर्थों की दशा तब भी वैसी थी, जैसी आज है। गोंड राजा थे। यवन सम्राट् थे। यवन लोग मूर्तियों के धोखे सिल और लोढ़े तक को

फोड़ डालते थे। केवल दंड ही न्याय का स्वरूप रह गया था :

गौंड गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल॥

× × ×

फोरहिं सिल लोढा सदन, लागे अढुक पहार।
कायर कूर कपूत कलि, घर घर सहस डहार[1]॥

काशी की तत्कालीन दशा

काशी में वर्णाश्रम-धर्म का आदर नहीं रह गया था। अधर्म के भय से उनमें भगदड़-सी मच गई थी; बुरी वासनाओं ने कर्म और उपासना को नष्ट कर दिया था; ज्ञान की बातों और वैरागियों जैसे वेश ने जगत् का विवेक हर लिया था; गोरखनाथ ने जोग क्या जगाया, लोगों के हृदय से भक्ति ही भगा दी थी; वेदों और पुराणों के मार्ग को छोड़कर लोग करोड़ों कुमार्गों पर चल रहे थे; राज-दरबार बड़ा छली हो गया था। न चारों वर्णों का भेद रह गया था, न आश्रम-धर्म ही शेष था; और संसार को दुःख, दोष और दरिद्रता ने दबा लिया था :

बरन धरम गयो आस्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुबासना बिनास्यो ज्ञान
बचन बिराग बेस जगत् हरो सो है॥
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग
निगम नियोग ते सो कलिही छरो सो है।
काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि,
रामनाम को भरोसो ताहि को भरोसो है॥

× × ×

वेद पुरान बिहाइ सुपथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल नृपाल कृपालन राज-समाज बडोई छली है॥
बर्न बिभाग न आस्रम धर्म दुनी दुख दोष दरिद्र दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम प्रताप बली है॥

धर्म की तो यह दशा थी, धन की दशा इससे भी भयानक थी। पेट की ज्वाला में मजूर, किसान, व्यवसायी और भिखमंगे सभी जल रहे थे :

---

१. डहार (डहर)=रास्ता, पन्थ।

किसबी किसान कुल बनिक भिखारी भाट,
चाकर चपल नर चोर चार चेटकी।
पेट को पढत गुन गढत चढत गिरि,
अटत गहन बन अहन अखेट की।।
ऊँच नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बडवागि तें बडी है आगि पेट की।।

× × ×

समय ऐसा बुरा आ गया था कि न तो किसान को खेती का काम मिलता था, न भिक्षुक को भीख मिलती थी। न व्यापारी के लिए व्यापार था, न नौकर के लिए नौकरी। जीविका-हीन होकर लोग चिन्ता-ग्रस्त थे और एक-दूसरे से पूछ रहे थे कि कहाँ जायँ और क्या करें :

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहै एक एकन सों कहाँ जाई, का करी।।

दुष्ट स्वभाव के लोग पूरे स्वच्छन्द हो रहे थे। वे नीचों का आदर करते और सत्पुरुषों को कष्ट पहुँचाते थे। वे स्वयं ऐसे दरिद्र थे कि चने चबाकर हाथ चाटते थे, पर हरिश्चन्द्र और दधीचि को गाली देते थे। स्वयं तो वे महा-पापी होते थे, पर विष्णु और शिव का भी मजाक उड़ाते थे। स्वयं भाग्यहीन होते हुए भी भाग्यवानों को फटकारते थे :

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत
रूँधिबे को सोई सुरतरु काटियतु है।
गारी देत नीच हरिचन्द हू दधीचि हूँ को
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है।
आप महापातकी हँसत हरिहरहू को
आपु है अभागी भूरि भागी डाटियतु है।।

काशी में कलियुग की विकरालता देखकर तुलसीदास बहुत व्यथित हुए। उन्होंने शिव से जोरदार शब्दों मे प्रार्थना की :

गौरीनाथ भोलानाथ भवर्त[1] भवानीनाथ
विश्वनाथपुर फिरी आन कलिकाल की।

संकर से नर गिरिजा सी नारी कासी बासी
बेद कही सही ससिसेखर कृपाल की ॥
छमुख गनेश तें महेस के पियारे लोग
बिकल बिलोकियत नगरी बिहाल की।
पुरी सुरबेलि केलि काटत किरात कलि
निठुर निहारिये उधारि डीठि भाल की ॥

× × ×

ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ
लोक बेदहू बिदित महिमा ठहर की।
भट रुद्रगन भूतगन पति सेनापति
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी ॥
बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बडो बारानसी
बूझिये न ऐसी गति सकर सहर की।
कैसे कहै तुलसी बृषासुर के वरदानि
बानि जानि सुधा तजि पियति जहर की ॥

काशी में महामारी

उन्हीं दिनों काशी में महामारी का भी प्रकोप हुआ था। यद्यपि उसका कोई ठीक सन्-संवत् नहीं मिलता, पर तुलसीदास के वर्णनों मे महामारी के प्रकोप की पूरी चर्चा है। यह महामारी जहाँगीर के राजत्व-काल (सं० १६७३ से १६८१) में प्रकट हुई थी। हिन्दुस्तान का कोई भी हिस्सा इस बीमारी से नहीं बचा था। 'वाक़यात जहाँगीरी' और 'इक़बालनामा जहाँगीरी' में इसका विस्तृत वर्णन है।

आगरा में यह बीमारी सं० १६७३ में प्रकट हुई और शीघ्र ही आसपास के गाँवों और जिलों में फैल गई। तुलसीदास लिखते है कि जब मीन राशि पर शनैश्चर था, उस समय काशी में महामारी का प्रकोप जोरों पर था। अतएव अब तो यही माना पड़ेगा कि यह रोग आगरा से पहले काशी मे प्रकट हुआ था।

आगरा की महामारी का वर्णन सुप्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास ने अपने 'अर्द्धकथानक' में इस प्रकार किया है :

इस ही समै ईति बिस्तरी। परी आगरे पहिली मरी ॥
जहाँ तहाँ सब भागे लोग। परगट भया गाँठ का रोग ॥
निकसै गाँठि मरै छिन माहि। काहू की बसाय कछु नाहि ॥

चूहे मरे वैद्य मरि जाहि। भय सो लोग अन्न नहि खाहिं॥

बनारसीदास जौनपुर के निवासी थे। उनका जन्म सं० १६४३ में हुआ था। आगरा की महामारी 'अर्द्ध कथानक' के अनुसार सं० १६७३ में पड़ी थी। जहाँगीर के इतिहास-लेखक भी यही समय मानते हैं।

तुलसीदास ने 'कवितावली' में बड़े ही मार्मिक शब्दों में काशी की महामारी का वर्णन किया है और उसे हटाने के लिए देवताओं की स्तुति भी की है। उन्होंने पार्वती से प्रार्थना की :

रचत बिरञ्चि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग अग जग पालिके।
तोहि में बिकास बिस्व, तोहि में बिलास सब,
तोहि में समात मातु भूमिधर बालिके॥
दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,
करुना तरङ्गिनी कृपातरङ्ग मालिके।
रोष महामारी परितोष, महतारी! दुनी,
देखिये दुखारी मुनि मानस-मरालिके॥

(कवितावली)

× × ×

निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर
नारिऊ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं।
दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु,
लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं॥
लोकरीति राखी, राम साखी, बामदेव जान
जन की बिनति मानि मातु कही 'मेरे' है।
महामारी महेशानि महिमा की खानि मोद,
मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे है॥

(कवितावली)

फिर उन्होंने रामचन्द्र से विनती की और हनुमानजी को भी प्रोत्साहित किया :

संकर सहर सर नरनारि बारिचर
विकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात
भभरि भगत जल थल मीचुमई है॥

देवन दयालु महिपाल न कृपाल चित
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत
रामहू की बिगरी तुही सुधारि लई है।।

× × ×

देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे
भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान बीर बलवान
जस रासि जहाँ तहाँ तैंही लूटि लई है।।

(कवितावली)

जब कि देवता ने उनकी न सुनी, तब अन्त में तुलसीदास ने अपने राम की शरण ली :

बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो
प्रानहूँ ते प्यारी पुरी केशव कृपाल की।
ज्योतिरूप लिंगमई अगनित लिगमई
मोक्ष बितरनि बिदरनि जग जाल की।।

× × ×

हाहा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की।।

स्तुति-प्रार्थनाओं का कुछ भी वांछित परिणाम न पाकर तुलसीदास ने फिर भी प्रार्थना नहीं छोड़ी। उन्होंने कहा—चारों आश्रम और वर्ण कलियुग के वश में होकर विकल हो रहे हैं। शिवजी क्रुद्ध हैं, यह महामारी ही से जाना जाता है। मालिक नाराज़ हो, तो दुनिया तो दिन-दिन दरिद्र ही होती जायगी। स्त्री-पुरुष आर्त्त होकर पुकार रहे हैं, कोई सुनता ही नहीं। जान पड़ता है, कुछ देवताओं ने मिलकर जादू कर दिया है :

आश्रम बरन कलि बिबस बिकल भय
निज निज मरजाद मोटरी-सी डार दी।
सकर सरोस महामारि ही ते जानियत
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारिदी।।
नारि नर आरत पुकारत सुनै न कोऊ
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।

अन्त में रामचन्द्र ने प्रार्थना पर कान देकर अपनी करुणा को संकेत कर

दिया और महामारी चली गई :

तुलसी सभीत पाल सुमरे कृपालु राम
समय सुकरुना सराहि सनकार दी ।
(कवितावली)

पर यह बीमारी काशी में कितने समय तक रही, इसका उल्लेख उनके किसी छन्द में नहीं मिलता ।

तुलसीदास की पहली बीमारी

महामारी के दिनों में तुलसीदास भी बीमार हुए थे । उन्होंने वामदेव से अपने शरीर को नीरोग करने के लिए प्रार्थना की थी :

चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर
पाइँ तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं ।
बामदेव राम को सुभाव सील जानि जिय
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौ ।।
अबिभूत बदन बिषय होत भूतनाथ
तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौ ।
मारिये तो अनायास कासीबास खास फल
ज्याइये तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं ।।
(कवितावली)

पर कष्ट अधिक बढ़ता ही गया । तब अधिक व्यथित होकर उन्होंने फिर शिव की प्रार्थना की :

जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहिं
मालूम है तोहि मरिबेई को रहतु हौ ।
× × ×
रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को
भूतनाथ पाहि पदपकज गहतु हौ ।
ज्याइये तौ जानकीरमन जन जानि जिय
मारियै तो माँगी मीचु सूधियै कहतु हौ ।।
(कवितावली)

जिस समय यह पीड़ा हुई थी, वह वर्षा-काल था । घटा घिरी थी, पानी बरस रहा था :

घेरि लियो रोगनि कुलोगनि कुजोगनि ज्यो
बासर जलद घनघटा धुकि धाई है ।
(कवितावली)

जिस समय यह छन्द लिख रहे थे, उस समय पानी बरस रहा था।

बरसत बारि पीर जारियै जवासे जस
रोष बिन दोष धूममूल मलिनाई है।
(कवितावली)

यह बीमारी उन्हें कब तक रही, इसका पता नहीं चलता, पर इस बीमारी से तुलसीदास मरते-मरते बचे, रोगों ने उन्हें खा ही डाला होता, यदि हनुमान जी ने जबरदस्ती उन्हें बचा न लिया होता :

खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि
केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है।

दूसरी बार की बीमारी

पहली बार की बीमारी में तुलसीदास को कई रोगों ने घेर लिया था और उनके विश्वास के अनुसार हनुमानजी की कृपा से वे उनसे बच गए थे। पर दूसरी बार की बीमारी पहले-पहल बाहु-मूल मे प्रकट हुई। उन्होंने रामचन्द्रजी से प्रार्थना की कि मेरी बाँह की पीडा दूर कीजिये, मै आर्त्त होकर पुकार रहा हूँ; किसी तरह बचा लीजिये, मैं लूला ही होकर दरबार में पड़ा रहूँगा :

बाँह की बेदन बाँहपगार पुकारत आरत आनँद भूलो।
श्रीरघुबीर निवारिये पीर रहौ दरबार परो लटि लूलो ॥

पर वे समझ न सके कि उनकी पीड़ा का मूल कारण क्या था :

काल की करालता करम कठिनाई की धौ
पाप के प्रभाव की सुभाय बाय बावरे।

उनकी उसी बाँह मे रात-दिन असह्य पीड़ा रहती थी, जिसे कभी हनुमान-ने पकड़ा थी :

बेदन कुभाँति सो सही न जाति रातिदिन
सोई बाँह गही जो गही समीर डावरे ॥

बाँह की पीड़ा बढ़ते-बढ़ते सारे शरीर में व्याप्त हो गई :

पाँय पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुँह पीर
जरजर सकल सरीर पीरमई है।
देवभूत पितर करम खल काल ग्रह
मोहिं पर दवरि दमानक सी दई है ॥

तुलसीदास ने सब देवताओं से प्रार्थनाएँ कीं, पर जब किसी ने उनकी न सुनी, तब उन्होंने अपनी ही भर्त्सना की :

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो
राम नाम लेत माँगि खात टूक-टाक हौ ।
परयो लोकरीति में पुनीत प्रीति राम राय
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं ।।
खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो
अंजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हौ ।
तुलसी गुसाईं भयो भोंड़े दिन भूलि गयो
ताको फल पावत निदान परिपाक हौ ।।

पहले वे भोजन-वस्त्र-विहीन और दुःख-सागर में निमग्न रहते थे। उनकी दुर्बलता और दीनता देखकर लोग हाय-हाय करते थे। रामचन्द्र ने उन्हें सनाथ किया; पर जब सम्मान बढ़ा, तब तुलसीदास को घमंड हो आया। वे समझते थे कि उसी घमंड का यह फल था, जो सारे शरीर में फोड़े के रूप में निकल आया था :

असन बसन हीन, बिषम बिषाद लीन
देखि दीन दूबरो करै न हाय-हाय को ?
तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो
दियो फल सील सिंधु आपने सुभाय को ।।
नीच यहि बीच पति पाइ भरुआइगो
बिहाय प्रभु भजन बचन मन काय को ।
तातें तनु पेखियत घोर बरतोर मिस
फूटि-फूटि निकसत लोन राम राय को ।।

सारे शरीर में पीड़ा हो जाने के बाद सारे शरीर में फोड़े भी निकल आए। उनकी वेदना से व्यथित होकर उन्होंने सब देवताओं की फिर स्तुतियाँ कीं; पर किसी ने उनकी न सुनी :

जीवौ जग जानकी जीवन को कहाय जन
मरिबे को बारानसी बारि सुरसरि को ।
तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक है ऐसे ठाउँ
जाके जिये मुये सोच करिहैं न लरिको ।।
मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत सब
मेरे मन मान है न हर को न हरि को ।
भारी पीर दुसह सँरीर तें बिहाल होत
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि करि को ।।

पीड़ा बढ़ती ही गई और अन्त में वे फिर सीतापति, भोलानाथ और कपिनाथ की प्रार्थना में निमग्न हुए :

सीतापति साहेब सहाय हनुमान नित
हित उपदेश को महेस मानो गुर कै।
× × ×
ब्याधि भूति जनित उपाधि काहू खल की
समाधि कीजै तुलसी को जानि जन फुर कै।
कपिनाथ रघुनाथ भोलानाथ भूतनाथ
रोगसिंधु क्यों न डारियत गाय खुर कै॥

जान पड़ता है, तुलसीदास को इस बात का शक था कि उनकी पीड़ा किसी खल द्वारा की हुई उपाधि से सम्बन्ध रखती है।

तभी तो वे जानना चाहते थे कि उनकी वह व्याधि भूत-जनित थी, या किसी खल की उपाधि-जनित ? अब क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि उन्हें किसी ने विष दिया हो ?

ये हनुमान, राम और शंकर पर अन्त तक विश्वास रखे रहे; पर उनमें किसी ने उनकी प्रार्थना का कोई उत्तर नहीं दिया। पीड़ा की वृद्धि के साथ देवताओं पर से उनका विश्वास उठने-सा भी लगा था। हनुमानजी से उन्होंने कहा :

आपने ही पाप ते त्रिताप ते कि साप ते,
बढी है बाहुबेदन कही न सहि जाति है।
औषधि अनेक जन्त्र-मन्त्र टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है।
चेरो तेरो तुलसी 'तू मेरो' कह्यो रामदूत,
ढील तेरी बीर मोहि पीर ते पिराति है।
(कवितावली)

अन्तिम चरण में तुलसीदास ने कैसी व्याकुलता व्यक्त की है! पर हनुमानजी ने फिर भी कान नहीं दिया। एक लम्बी आयु व्यतीत कर लेने पर तब तुलसीदास को देवताओं की शक्ति का पता चला कि 'बादि भये देवता मनाये अधिकाति है।'

अन्त में उन्होंने यह लिखकर कि 'जैसा बोया था, वैसा काटेंगे' क़लम रख दी :

कहो हनुमान सो सुजान रामराय सो,
कृपानिधान सकर सों सावधान सुनिये ।
हरष विषाद राग रोष गुन दोषमई,
बिरची बिरचि सब देखियतु दुनिये ।।
माया जीव काल के करम के सुभाय के,
करैया राम बेद कहै साँची मन गुनिये ।
तुमते कहा न होय, हाहा सो बुझैये मोहि,
हौंहूँ रहौ मौनही, बयो सो जनि लुनिये ।।
(कवितावली)

यही लिखकर वे मौन हो गए । पता नहीं, इसी रोग से उनका देहावसान हुआ, या अन्य किसी कारण से । पर चमत्कारों की चर्चा में मूड़ मारने वाले लोगों को यहाँ तो इस बात पर विचार कर लेना चाहिए कि जो तुलसीदास मुर्दे को ज़िन्दा कर सकते थे, वे अपने निजी रोग के निवारण में कितने असमर्थ थे ।

भुज-मूल की व्यथा की चर्चा उन्होंने दोहों मे भी की थी । ऐसे तीन दोहे दोहावली मे संगृहीत है :

तुलसी तनु सर सुख सजल , भुज रुज गज बरजोर ।
दलत दयानिधि देखिये , कपि केसरी किसोर ।।
भुज तरु कोटर रोग अहि , बरबस कियो प्रबेस ।
बिहँगराज बाहन तुरत , काढिय मिटइ कलेस ।।
बाहु बिटप सुख बिहँग थलु , लगी कुपीर कुआगि ।
राम कृपा जल सीचिये , बेगि दीन हित लागि ।।

तुलसीदास का शरीर-सम्बल

तुलसीदास का शरीर सुन्दर था । इसे वे कई स्थानों पर स्वीकार करते है :

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर
(विनय-पत्रिका)

भलि भारत भूमि भले कुल जन्म
समाज सरीर भलो लहि कै ।
(कवितावली)

वृद्धावस्था मे तुलसीदास के सिर पर बाल नहीं रह गए थे :

ऊँचो मन ऊँची रुचि भाग नीचो निपट ही
लोक रीति लायक न लंगर लबारु है।
स्वारथ अगम परमारथ की कहा चली
पेट की कठिन जग जीव को जवारु है।।
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख
जानत न कूर कछु किसब कबारु है।
तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम नतु
भेंट पितरन को न मूड़हू मे बारु है।
(कवितावली)

३

जन-श्रुति-सञ्चित और कल्पना-प्रसूत जीवनी

पहले तुलसीदास के ग्रन्थों से उनकी जो कुछ जीवनी निकल सकी है उसे तो हमने निकाल लिया है, पर उतने से तो उनकी जीवनी बिलकुल अधूरी रह जाती है। अतएव विवश होकर हमे जनश्रुति और कल्पना का सहारा लेना ही पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा आधार हमे तुलसीदास के समकालीन और बाद के कवियों और लेखकों के उन ग्रन्थों से प्राप्त होता है, जिनमे तुलसीदास की चर्चा की गई है। उनमें जो ग्रन्थ इस समय उपलब्ध है, वे ये है—

१—भक्तमाल (नाभादासजी)
२—दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता (गोकुलनाथजी)
३—भक्तरस-बोधिनी—भक्तमाल की टीका (प्रियादासजी)
४—भक्त-कल्पद्रुम (राजा प्रतापसिंह)
५—भक्तमाल (महाराजा विश्वनाथसिंह)
६—राम-रसिकावली (महाराजा रघुराजसिंह)
७—शिवसिंह-सरोज (शिवसिंह सेगर)
८—गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित (रानी कमलकुँवरिजी)
९—नोट्स ऑन तुलसीदास (सर जार्ज ग्रियर्सन)
१०—गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित (बैजनाथदास)
११—तुलसी-चरित (रघुबरदास)
१२—मूल गोसाईं-चरित (वेणीमाधवदास)

भक्तमाल

भक्तमाल की रचना सं० १६४२ के बाद नाभादासजी ने की थी। इसमे १६५ छप्पय, आदि, मध्य और अन्त के मिलाकर कुल १७ दोहे और १ कुण्डलिया है। नाभादासजी तुलसीदास के समकालीन थे। उन्होंने तुलसीदास के लिए वर्तमान काल की क्रिया का प्रयोग किया है। पर उनका वर्णन इतना

संक्षिप्त है कि उससे हम केवल इतनी ही जानकारी प्राप्त कर सकते है कि तुलसीदास उनके समय मे विद्यमान थे। तुलसीदास के सम्बन्ध मे 'भक्तमाल' मे केवल ये ही पंक्तियाँ मिलती है :

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।
त्रेता काव्य निबध करी सतकोटि रमायन।
इक अक्षर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन।
अब भक्तन सुखदेन बहुरि बपु धरि (लीला) बिस्तारी।
रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि व्रतधारी।
ससार अपार के पार के पार को सुगम रुप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो॥

दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता

यह पुस्तक गोस्वामी गोकुलनाथजी की लिखी हुई है, जो श्री वल्लभाचार्यजी के पौत्र थे। श्री वल्लभाचार्यजी, प्रियादास के कथनानुसार, सं० १५७७ में हुए थे। गोकुलनाथजी का जन्म १६०८ से हुआ था। वे १६९८ तक जीवित रहे अतएव वे तुलसीदास के समकालीन थे। अपनी वार्ता मे नन्ददास का वर्णन करते हुए उन्होंने तुलसीदास की भी चर्चा की है। हम उसे यहाँ ज्यों-की-त्यों उद्धृत करते हैं

"सो वे नन्ददास पूर्व रहते, सो वे दोय भाई हते। सो बड़े भाई तुलसीदास हते और छोटे भाई नन्ददास हते, सो वे नन्ददास पढ़े बहुत हते।

नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई हते। सो विनकूँ नाच तमासा देखबे को तथा गान सुनबे का शौक बहुत हतो। सो वा देश मे सूँ एक संग द्वारका जात हतो। जब विनने तुलसीदास सूँ पूछी, तब तुलसीदासजी श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्त हते। जासूँ विनने द्वारका जायबे की नाहीं कही। सो मथुरा सूधे गए। मथुरा में वा संग कूँ बहुत दिन लगे सो नन्ददास संग कूँ छोड़कर चल दीने।

× × ×

सो तब कितनेक दिन मे वह संग काशी मे आन पहुँच्यो, तब नन्ददास के बड़े भाई तुलसीदास हते, सो तिनने सुनी, जो यह संग श्री मथुराजी को आयो है। तब तुलसीदास ने वा संग मे आय के पूछ्यो। जो वहाँ श्री मथुराजी श्रीगोकुल मे नन्ददास करि के एक ब्राह्मण यहाँ सो गयो है, सो पहले वहाँ सुन्यो हतो, सो काहू ने देख्यो होय, तो कैहौ। तब एक वैष्णव ने तुलसीदास सों

कही, जो एक सनौड़िया ब्राह्मण है, सो ताको नाम नन्ददास है, सो वह पढ़्यो बहुत है, सो वद नन्ददास तो श्रीगुसाईजी को सेवक भयौ है।

सो नन्ददासजी के बड़े भाई तुलसीदासजी काशी में रहते हुते। सो विनने सुन्यो नन्ददासजी श्री गुसाईजी के सेवक भये हे। जब तुलसीदासजी के मन मे ये आई के नन्ददासजी ने पतिव्रता धर्म छोड़ दियो है आपने तो श्री रामचन्द्रजी पती हुते। सो तुलसीदासजी ने ये बिचार के नन्ददासजी कुँ पत्र लिख्यो। जो तुम पतिव्रता धर्म छोड़ के क्यों तुमने कृष्ण-उपासना करी। ये पत्र जब नन्ददासजी ने बाँच के ये उत्तर लिख्यो। जो श्री रामचन्द्रजी तो एक पत्नीव्रत में हे सो दूसरी पत्नी कुँ कैसे सँभार सकेगे। एक पत्नी हुँ बरोबर सँभार न सके। सो रावण हर ले गयो और श्रीकृष्ण तो अनन्त अबलान के स्वामी हे और जिनकी पत्नी भये पीछे कोई प्रकार को भय रहे नहीं है।

ये पत्र जब नन्ददासजी को लिख्यो तब तुलसीदास कुँ मिल्यो। तब तुलसीदास ने बाँच के बिचार कियो के नन्ददास जी को मन वहाँ लग गयो हे। सो वे अब आवेंगे नहीं। सो उनकी टेक हमसों अधिकी हे। हम तो अयुध्या छोड़ के काशी में रहे हे। और नन्ददासजी तो ब्रज छोड़ के कहीं जाय नहीं हे। उनकी टेक हमारी टेक सूँ बड़ी हे।

सो एक दिन नन्ददासजी के मन में आई, जो जैसे तुलसीदासजी ने रामायण भाषा करी है, सो हमहूँ श्रीमद्भागवत भाषा करे। ये बात ब्राह्मण लोगन ने सुनी तब सब ब्राह्मण मिलके श्री गुसाईजी के पास गये। सो ब्राह्मणों ने बिनती करी। जो श्रीमद्भागवत भाषा होयगी तो हमारी आजीविका जाती रहेगी। तब श्री गुसाईजी ने नन्ददासजी सुँ आग्या करी। जो तुम श्रीमद्-भागवत भाषा मत करो और ब्राह्मणन के क्लेश में मत परो। ब्रह्म-क्लेश आछो नहीं है और कीर्तन करकें ब्रज लीला गाओ।

सो नन्ददासजी के बड़े भाई तुलसीदास हते। सो काशीजी से नन्ददासजी कूँ मिलबे के लिए ब्रज मे आये। सो मथुरा मे आयके श्री जमुनाजी के दर्शन करे। पीछे नन्ददासजी की खबर काढ़ कें श्री गिरिराजजी गये उहाँ तुलसीदासजी नन्ददासजी कुँ कही के तुम हमारे संग चलो, गाम रुचे तो अयोध्या में रहो, पुरी रुचे तो काशी मे रहो, पर्वत रुचे तो चित्रकूट मे रहो, बन रुचे तो दण्डकाराय में रहो। ऐसे बड़े-बड़े धाम श्रीरामचन्द्रजी ने पवित्र करे है। तब नन्ददासजी ने उत्तर देवे कुँ ये पद गायौ :

> जो गिरि रुचे तो बसो गोबर्धन गाम रुचे तो बसो नंदगाम ।
> नगर रुचे तो बसो श्री मधुपुरी सोभासागर अति अभिराम ॥

सरिता रुचे तो बसो श्री जमुना-तट सकल मनोरथ पूरण काम।
नंददास कानन रुचे तो बसो भूमि बृन्दाबन धाम ।।

ये पद सुनके तुलसीदास चुप रहे। जब नन्ददासजी श्रीनाथजी के दर्शन करिबे कूँ गये तब तुलसीदास हूँ उनके पीछे-पीछे गये। जब श्री गोबर्धननाथ जी के दर्शन करे तब तुललीदासजी ने माथो नमायो नहीं। तब नन्ददासजी जान गये जो ये श्रीरामचन्द्रजी बिना और दूसरे कूँ नहीं नमे है। जब श्री नन्ददासजी ने मन में विचार कीनों यहाँ और गोकुल मे इनकूँ श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कराऊँ तब ये श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानेगे। जब नन्ददासजी ने श्रीगोवर्धननाथजी सों विनती करी सो दोहा :

आज की सोभा कहा कहुँ, भले बिराजो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नमे, धनुष बाण लेओ हाथ ।।

जब श्री गोवर्धननाथजी ने श्रीरामचन्द्रजी को रूप धरके तुलसीदासजी कुँ दर्शन दिये। तब तुलसीदासजी ने श्री गोवर्धननाथजी कुँ साष्टांग दंडवत करी।"

नन्ददासजी के सम्बन्ध मे 'भक्तमाल' में नाभादासजी यह छप्पय लिखते है :

लीला पद रसरीति ग्रन्थ रचना मे नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रसगान उजागर ।।
प्रचुर पयध लौ सुजस रामपुर ग्राम-निवासी।
सकल सुकुल सबलित भक्ति पद रेनु उपासी ।।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पै मै पगे।
श्री नददास आनदनिधि रसिक सुप्रभु हित रँग मगे ।।

यदि तुलसीदास नन्ददास के बड़े भाई मान लिये जायँ, जैसा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' मे लिखा है, तो उपरोक्त छप्पय के अनुसार वे भी रामपुर गाँव के निवासी और शुक्ल ब्राह्मण ठहरते है और उनके एक तीसरे भाई चन्द्रहास भी कम महत्त्व के नहीं ठहरते, क्योंकि नाभाजी ने नन्ददासजी की एक विशेषता यह भी बताई है कि वे चन्द्रहास के बड़े भाई थे।

भक्तिरस बोधिनी

('भक्तमाल' की टीका)

प्रियादास ने अपने गुरु के आदेशानुसार सं० १७६९ में भक्त-माल की टीका लिखी, उसमें सब मिलाकर ६३४ कवित्त है। टीका और मूल

दोनों मिलाकर उसमे ३७४६ पंक्तियाँ हैं। यद्यपि प्रियादास उसे टीका कहते हैं, पर वास्तव में वह टीका नहीं, मूल का स्वेच्छापूर्वक विस्तार है। प्रियादास अपनी उस टीका के विषय में लिखते हैं :

सवत् प्रसिद्ध दस सात सत उनहत्तर
फालगुन मास बदी सप्तमी बिताइ कै।
नारायनदास सुखरासि भक्तमाल लैके
प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइ कै॥
× × ×
नाभाजू को अभिलाष पूरन लै कियो मै तो
× × ×
ताही समय नाभाजू ने आज्ञा दई लई धारि
टीका बिस्तारि भक्तमाल की सुनाइए।

इस 'टीका' मे प्रियादास ने तुलसीदास के सम्बन्ध की सुनी-सुनाई बातें पद्यबद्ध कर दी है। उससे केवल इतना ही जाना जा सकता है कि १७६९ में तुलसीदास के विषय मे कितनी और कैसी किम्वदन्तियाँ जनता में फैली हुई थीं। यद्यपि आज की अपेक्षा सवा दो सौ वर्ष पहले की बातें अधिक मूल्य अवश्य रखती हैं, पर फिर भी इतिहास की कसौटी पर हमें उनका मूल्य आँकना ही पड़ेगा।

प्रियादास के कवित्त, जो तुलसीदास के सम्बन्ध के है, यहाँ दिये जाते हैं:

"निसा सो सनेह बिन पूछे पिता गेह गई
भूलि सुधि देह भजे वाही ठौर आए है।
बधू अति लाज भई, रिस सों निकस गई—
'प्रीति राम नई तन हाड चाम छाए है'॥
सुनी जग बात मानो ह्वै गयो प्रभात वह
पाछे पछिताय तजि काशीपुर धाए है।
कियो तहाँ बास प्रभु सेवा लै प्रकास कीनौ
लीनो दृढ़ भाव नेम रूप के तिसाए है॥५००॥
शौच जल शेष पाइ भूत हू विशेष कोऊ
बोल्यो सुख मानि हनुमानजू बताए है।
रामायन कथा सो रसायन है कानन को
आवत प्रथम, पाछे जात, घृणा छाए है॥'

जाइ पहिचानि संग चले उर आनि आए
बन मध्य जानि धाइ पाइ लपटाए है।
करें सीतकार, कही 'सकोगे न टारि मै तो
जाने रस सार' रूप धरचो जैसे गाए है ॥५०१॥
'माँगि लीजे बर' कही—'दीजै राम भूप रूप
अतिही अनूप नित नैन अभिलाखिये ।'
कियो लै संकेत वाहि दिन ही सो लाग्यौ हेत,
आई सोई समै चित चेत कबि चाखिये ॥
आये रघुनाथ साथ लछुमन चढे घोड़े
पर रग बोरे हरे कैसे मन राखिये।
पाछे हनुमान आये बोले 'देखे प्रान प्यारे' ?
'नेकु न निहारे मै तो' 'भले फेरि' भाखिए ॥५०२॥
हत्या करि बिप्र एक तीरथ करन आयो
कहै मुख 'राम' हत्या टारिये हत्यारे को।
सुनि अभिराम नाम धाम मै बुलाइ लियो,
दियो लै प्रसाद कियो सुद्ध गायो प्यारे को ॥
भई द्विज सभा, कहि बोलिकै पठायो आप
'कैसे गयो पाप ? संग लै कै जैए न्यारे को !'
'पोथी तुम बाँचो हिए भाव नही साँचो अजू,
ताते मति काँची दूर ना करै अँध्यारे को' ॥५०३॥
देखी पोथी बाँच नाम महिमा हू कही साँच
ए पै हत्या करै कैसे तरै कहि दीजिये।
आवै जो प्रतीति कही 'याकै हाथ जेवै जब
शिव जू के बैल तब पंगति मै लीजिये' ॥
थार मे प्रसाद दियो चले जहाँ पान कियो
बोले आप नाम के प्रसाद मति भीजिये।
जैसी तुम जानी तैसी कैसे कै बखानो अहो
सुनि कै प्रसन्न पायो जै-जै धुनि रीझिए ॥५०४॥
आए निसि चोर चोरी करन हरन धन
देखें स्यामघन हाथ चाप सर लिये है।
जब जब आवै बान साधि डरपावै ए तो
अति मँडरावै ए पै बलि दूरि किये है ॥

भोर आय पूछे 'अजू साँवरो किसोर कौन'
सुनि कर मौन रहे आँसू डारि दिये है।
दई सब लुटाइ जानि चौकी राम राइ दई
लई उन्ह शिक्षा सुद्ध भए हिए हैं ॥५०५॥
कियो तनु बिप्र त्याग लागी चली संग तिया
दूर ही तें देखि कियो चरन प्रनाम है।
बोले यों 'सुहागवती' 'मरचो पति होहुँ सति'
'अब तो निकसि गई जाहु सेवो राम है' ॥
बोलि कै कुटंब कही 'जो पै भक्ति करो सही'
गही तब बात जीव दियो अभिराम है।
भए सब साध व्याधि मेटी लै बिमुख ताकी
जाकी बास रहे तौन सूझै श्याम ग्राम है ॥५०६॥
दिल्लीपति बादशाह अहिदी पठाए लैन
ताको सो सुनायो सूनै बिप्र ज्यायो जानिए।
देखिबे को चाहे नीके मुख सो निबाहे आइ
कही बहु विनय गही चले मन आनिए ॥
पहुँचे नृपति पास आदर प्रकास कियो
दियो उच्च आसन लै बोल्यो मृदु बानिए।
दीजै करामाति जग ख्यात सब मात किये,
कही झूठ बात, एक राम पहचानिए ॥५०७॥
देखौ 'राम कैसे !' कहि कैद किये किये हिये—
'हूजिए कृपाल हनुमान जू दयाल हो'।
ताही समै फैलि गए कोटि-कोटि कपि नये
नोचैं तन खैंचैं चीर भयो यो बिहाल हो ॥
फोरें कोट मारें चोट किये डारें लोट पोट
लीजै कौन ओट आइ मानों प्रलय काल हो।
भईं तब आँखें दुख सागर को चाखे अब
वेई हमें राखें भाखें 'वारौं धन माल हो' ॥५०८॥
आइ पाइ लिये तुम दिए हम प्रान आवै
आप समुझावे करामाति नैक लीजिए।
लाजि दबि गयो नृप तब राखि लियो कह्यौ
भयो घर रामजू को बेगि छाड़ि दीजिए ॥

सुनि तजि दियो और कह्यौ लैके कोट नयो
अब हूँ रहै कोऊ वामै तन छीजिए ।
कासी जाइ बृन्दाबन आइ मिले नाभाजू सों
सुन्यो हो कवित्त निज रीझ मति भीजिए ॥५०९॥
मदन गोपालजू को दरसन करि कही 'सही
राम इष्ट मेरे दृग भाव पागी है' ।
वैसोई सरूप कियो दियो लै दिखाई रूप
मन अनुरूप छवि देख नीकी लागी है ॥
काहू कह्यो कृष्ण अवतारी जू प्रशस महा
राम अंश सुनि बोले मति अनुरागी है ।
'दशरथ सुत जानो अनूप मानो
ईसता बताई रति कोटि गुनी जागी है' ॥५१०॥

प्रियादास के कवित्तों में ५०१ नं० के कवित्त में हनुमानजी से तुलसीदास की भेंट की जो कथा दी हुई नहीं है, उसकी प्रामाणिकता हमें तुलसीदास के शब्दों में भी मिलती है :

बेदन कुभाँति सो सही न जाति रात-दिन
सोई बाँह गही जो गही समीर डावरे ।

अर्थात् रात-दिन ऐसी भयानक पीड़ा, जो सही नहीं जाती, उसी बाँह में रहती है, जिसे पवन-पुत्र ने पकड़ा था ।

भक्त-कल्पद्रुम, भक्तमाल, रस-रसिकावली

ये तीनों पुस्तकें प्रियादास के आधार पर बनी हैं । अतएव इनका महत्त्व प्रियादास की उक्त टीका के अन्तर्गत ही है ।

शिवसिंह-सरोज

'शिवसिंह-सरोज' के कर्त्ता उन्नाव-निवासी शिवसिंह सेंगर थे । इसमें शिव-सिंह के समय तक के हिन्दी-कवियों के साधारण परिचय दिये गए हैं । ऐसे समय में जब कि खोज के साधन बहुत कम थे, शिवसिंह ने प्रशंसनीय परिश्रम से हिन्दी-कवियों का समय, उनके ग्रन्थों के नाम और उनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त करके यह संग्रह तैयार किया था । हम उनकी इस सुरुचि ही की प्रशंसा नहीं करते, बल्कि उनकी साहित्य-सेवा को भी बहुत मूल्यवान् समझते हैं । यद्यपि नवीन खोजों के आधार पर 'शिवसिंह-सरोज' की कुछ बातें निराधार प्रमाणित हो रही हैं, पर शिवसिंह के समय तक जो बातें जिस रूप में प्रचलित थीं, उनका संग्रह तो हमें 'सरोज' द्वारा मिल ही रहा है ।

'सरोज' में तुलसीदास के सम्बन्ध में यह मिलता है :

"यह महाराज सरवरिया ब्राह्मण, राजापुर, जिले प्रयाग के रहने वाले और संवत् १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए थे। संवत् १६८० में स्वर्गवास हुआ। इनके जीवन-चरित्र की पुस्तक वेणीमाधवदास कवि पसका-ग्रामवासी ने, जो इनके साथ-साथ रहे, बहुत विस्तार पूर्वक लिखी है। उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विस्तृत कथा को हम कहाँ तक संक्षेप मे वर्णन करें। निदान गोस्वामीजी बड़े महात्मा, रामोपासक, महा योगी सिद्ध हो गए हैं। इनके बनाये ग्रन्थों की ठीक-ठीक संख्या हमको मालूम नहीं हुई। केवल जो ग्रन्थ हमने देखे; अथवा हमारे पुस्तकालय में है, उनका जिकर किया जाता है। प्रथम ४६ काण्ड रामायण बनाया है, इस तफ़सील से, १ चौपाई-रामायण ७ काण्ड, २ कवितावली ७ काण्ड, ३ गीतावली ७ काण्ड, ४ छन्दावली ७ काण्ड, ५ बरवै ७ काण्ड, ६ दोहावली ७ काण्ड, ७ कुंडलिया ७ काण्ड। सिवा इन ४६ कांडों के १ सतसई, २ राम-शलाका, ३ संकटमोचन, ४ हनुमत्बाहुक, ५ कृष्ण-गीतावली, ६ जानकी मङ्गल, ७ पार्वती मङ्गल, ८ करखाछन्द, ६ रोला-छन्द, १० झूलना-छन्द इत्यादि और भी ग्रन्थ बनाये हैं। अन्त में विनयपत्रिका महाविचित्र मुक्ति रूप प्रज्ञानन्द-सागर ग्रन्थ बनाया है। चौपाई गोस्वामी महाराज की ऐसी किसी कवि ने नहीं बना पाई, और न 'विनय-पत्रिका' के समान अद्भुत ग्रन्थ आज तक किसी कवि महात्मा ने रचा। इस काल मे जो रामायण न होती, तो हम ऐसे मूर्खों का बेड़ा पार न लगता। गोसाईंजी श्री अयोध्याजी, मथुरा-वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, वाराणसी, पुरुषोत्तम पुरी इत्यादि क्षेत्रों में बहुत दिनों तक घूमते रहे हैं। सबसे अधिक श्री अयोध्या, काशी, प्रयाग और उत्तराखंड, वंशीवट जिले सीतापुर इत्यादि मे रहे हैं। इनके हाथ की लिखी हुई रामायण, जो राजापुर में थी, खंडित हो गई है। पर मलीहाबाद मे आज तक सम्पूर्ण सातों कांड मौजूद हैं। केवल एक पत्रा नहीं है। विस्तार-भय से अधिक हालात हम नहीं लिख सकते। दो दोहे लिखकर इन महाराज का वृत्तान्त समाप्त करते हैं :

> कबिता कर्ता तीनि है, तुलसी केसव, सूर।
> कबिता खेती इन लुनी, सीला बिनत मजूर॥ १॥
> सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केसवदास।
> अब के कवि खद्योत-सम, जहँ-तहँ करत प्रकास॥ २॥"

'सरोज' के वर्णन से हमे तुलसीदास के जन्म और मृत्यु के संवत् तो मिलते

है, पर उनकी सचाई का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित

यह पुस्तिका श्रीमती रानी कमलकुँवरिदेवजू (रियासत सरीला, जिला हमीरपुर) ने पद्य में बनाई थी। इसकी सं० १९५२ की छपी हुई प्रति मुझे लाला सीताराम (प्रयाग) के पुस्तकालय मे देखने को मिली थी। इसमें दोहे और चौपाइयों मे तुलसीदास का जीवन-चरित दिया हुआ है और नन्ददास को तुलसीदास का गुरुभाई लिखा है।

इसमें दो-तीन बातें विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो यह कि तुलसीदास सनौगिया (सनाढ्य ?) ब्राह्मण थे और दूसरी यह कि वे सुरसरि (गंगाजी) को पार करके ससुराल गये थे। यह बात राजापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान मानने वालों के विरुद्ध पड़ती है; क्योंकि राजापुर मे गंगाजी नहीं, जमुनाजी हैं। पर इसी मे राजापुर को उनका जन्म-स्थान भी लिखा है। इससे दोनों में सत्य क्या है, यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। तीसरी यह कि तुलसीदास का जन्म सं० १५८३ में हुआ था, जैसा सरोजकार ने भी लिखा है :

द्विज सनौढिया पादन जानो।
राजापुर में जन्म बखानो।
पद्रा सै तैरासी, जन्म भयो सुभ जान।
सोरा सै अस्सी वरस, हो गए अन्तरधान॥

× ×

बनिता से अति प्रेम लगायो।
नैहर गई सोच उर छायो।
सुरसरि पार गये घबराई।
एक मुरदा की नाव बनाई।

नोट्स ऑन तुलसीदास

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'इंडियन एंटीक्वेरी' में, सन् १८९३ में, तुलसीदास पर एक लेख प्रकाशित कराया था, जिसमें उस समय तक प्राप्त तुलसीदास के जीवन-सम्बन्धी घटनाओं पर प्रकाश डाला गया था। पीछे उक्त लेख अलग भी पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् हिन्दी में तुलसीदास-सम्बन्धी जितने इतिहास-ग्रन्थ लिखे गए, सबका आधार वही है।

तुलसीदास के अन्य अंग्रेज़ विद्वानों ने भी, जिनमे एफ० एस० ग्राउस और

रेवरेंड एड्विन ग्रीव्स मुख्य है, ग्रियर्सन साहब ही का समर्थन किया है। ग्राउस साहब ने पहले-पहल सन् १८७६ में 'रामचरितमानस' के एक अंश का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया था। अब उनका सम्पूर्ण मानस का अनुवाद पुस्तकाकार छपा हुआ मिलता है। उसके प्रारम्भ में एक बहुत विचारपूर्ण भूमिका लिखकर उन्होंने तुलसीदास पर अपना पूर्ण अधिकार प्रमाणित किया है। ग्रीव्स साहब ने सन् १८९९ की 'नागरी प्रचारिणी-पत्रिका' मे तुलसीदास का जीवन-चरित लिखा है। उसमे भी गियर्सन साहब की खोज का समर्थन किया गया है।

विस्तार-भय से यहाँ हम उनके समूचे लेख देने में असमर्थ है।

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित

यह जीवन-चरित 'रामचरितमानस' के सुप्रसिद्ध टीकाकार बैजनाथदास कुरमी की रचना है। इसमे बैजनाथदास ने अपने समय तक की प्रचलित तुलसीदास के जीवन-सम्बन्धी कथाओं को संग्रह करके उन्हें पद्यबद्ध कर दिया है। यह उनकी 'रामचरितमानस' की टीका के साथ सन् १८९० ई० मे नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ है। महात्मा रामचरणदास की 'राम-चरितमानस' की टीका के साथ भी यही जोड़ा हुआ है।

घटनाओं की प्रामाणिकता का प्रश्न उठाये विना केवल कविता की दृष्टि से मै यह कह सकता हूँ कि इसकी कविता रघुबरदास के 'तुलसी-चरित' और वेणीमाधव के 'मूल गोसाईं-चरित' से कहीं अधिक सरस और सुबोध है। यहाँ तीनों के अलग-अलग उदाहरण दिये जाते है :

तुलसी-चरित—

मोर ब्याह द्वै प्रथम जो भयऊ। हस्तप्रास भार्गव गृह ठयऊ।
भई स्वर्गवासी दोउ नारी। कुलगुरु तुलसी कहेउ व्रतधारी।
तृतिय ब्याह कञ्चनपुर माँही। सोइ तिय बच विदेस अवगाही।
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई। मात भ्रात परिवार छोटाई।
कुलगुरु कथन भई सब साँची। सुख धन गिरा अवर सब काँची।

मूल गोसाईं-चरित—

घरि पाँच इक बार चढै मुनिआ। निज सास के पाँय गही चुनिया।
सब हाल हवाल बताय चली। सुनि सास कही बहु कीन्ह भली।
घर माँहि कलोर को दूध पिआ। बिनु माय को है सिसु लेसि जिआ।

× × ×

बालक दसा निहारि, गौरा माई जग जननि।
द्विजतिय रूप सँवारि, नितहिं पवा जावहि असन।।

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित—

कुंडलिया

राना की सुतबधू इक, कीरति जग अभिराम।
परम भागवत भक्ति दृढ, मीराबाई नाम।।
मीराबाई नाम विषय-रस परस घटायो।
सकल कामनाहीन चित्त हरि चरनन लायो।।
लायो चरनन चित्त साधु-सेवा प्रन ठाना।
लखि निज लज्जा भंग बहुत बरजै तेहि राना।।

अरिल्ल

कौन सुनै केहि बैन प्राण हरि पद बसै।
विष नहीं चढै सरीर भुजङ्गम जो डसै।

'तुलसी-चरित' और 'मूल गोसाईं-चरित' से बैजनाथदास-रचित जीवन-चरित की कविता अधिक शुद्ध और सरस होने पर भी उसका ऐतिहासिक मूल्य बहुत ही कम है। उसमें केवल तुलसीदास के चमत्कारों का वर्णन है, जो साधारण जनता में अन्ध-विश्वास बढ़ाने के लिए ही अधिक उपयोगी है। जैसे चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में 'श्रीगुसाईंजी महाप्रभून' के दैवी चमत्कार बटोरे गए हैं, वैसे ही इसमें तुलसीदास के अलौकिक कार्यों की कथाएँ भक्तों के लिए सुलभ कर दी गई है।

तुलसी-चरित

प्रयाग से 'मर्यादा' नाम की एक पत्रिका मासिक रूप में निकला करती थी। उसकी ज्येष्ठ, १९६९ की संख्या में श्रीयुक्त इन्द्रदेवनारायण ने अपने एक लेख में तुलसी-चरित की सूचना सर्व-साधारण को दी थी। उसकी अविकल लिपि यहाँ दी जाती है:

"गोस्वामीजी का जीवन-चरित उनके शिष्य महानुभाव महात्मा रघुबर-दासजी ने लिखा है। इस ग्रन्थ का नाम 'तुलसी-चरित' है। यह बड़ा ही वृहत् ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खण्ड है—(१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा, इनमें भी अनेक उपखंड है। इस ग्रन्थ की छन्द-संख्या इस प्रकार लिखी हुई है—

यह ग्रन्थ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामीजी के जीवन-चरित-

विषयक नित्य-प्रति के मुख्य-मुख्य वृत्तान्त लिखे हुए हैं। इसकी कविता अत्यन्त मधुर, सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुबरदासजी-विरचित इस आदरणीय ग्रन्थ की कविता श्री 'रामचरितमानस' के टक्कर की है और यह 'तुलसी-चरित' बड़े महत्त्व का ग्रन्थ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है। इस माननीय बृहत् ग्रन्थ के 'अवध-खण्ड' में लिखा है कि जब श्री गोस्वामीजी घर से विरक्त होकर निकले, तो रास्ते में रघुनाथ नामक एक पंडित से भेंट हुई और गोस्वामीजी ने उनसे अपना सब वृत्तान्त कहा—

गोस्वामीजी का वचन

चौपाई

काल अतीत यमुन तरनी के। रोदन करत चलेहुँ मुख फीके ॥
हिय विराग तिथि अपमित बचना। कठ मोह बैठो निज रचना ॥
खीचत त्याग विराग बटोही। मोह गेह दिसि कर सत सोही ॥
भिरे जुगल बल बरनि न जाही। स्पदन वपू खेत वन माही ॥
तिनिहूँ दिशा अपथ महि काटी। आठ कोस मिसिरन की पाटी ॥
पहुँचि ग्राम तट सुतरु रसाला। बैठेहुँ देखि भूमि सुबिसाला ॥
पंडित एक नाम रघुनाथा। सकल शास्त्रपाठी गुण गाथा ॥
पूजा करत डरत मैं जाई। दंड प्रनाम कीन्ह सकुचाई ॥
सो मोहि कर चेष्टा सनमाना। बैठि गयउँ महितल भय माना ॥
बुध पूजा करि मोहिं बुलावा। गृह वृतात पूछब मन भावा ॥

× × ×

जुवा और शुचि बढनि विचारी। जनु बिधि निज कर आपु सँवारी ॥
तुम विसोक आतुर गति धारी। धर्मशील नहि चित्त बिकारी ॥
देखत तुम्हहि दूरि लगि प्रानी। अद्भुत सकल परस्पर मानी ॥
तात मात तिय भ्रात तुम्हारे। किमि न तात तुम्ह प्रान पियारे ॥
कुटुम परोस मित्र कोउ नाही। किधौ मूढ़ पुर वास सदाही ॥
सन्यपात पकरे सब ग्रामा। चले भागि तुम तजि वह ठामा ॥
तब यात्रा विदेश कर जानी। बिदरि हृदय किमि मरे अयानी ॥
चित्त वृत्ति तुव दुख मह ताता। सुनत न जगत व्यक्त सब बाता ॥
मोते अधिक कहत सब लोगा। अजहुँ जुरे देखत तरु योगा ॥
कहाँ तात ससुरारि तुम्हारी। तुम्हहिं धाय नहि गहें अनारी ॥
जाति पाँति गृह ग्राम तुम्हारा। पिता पीठि का नाम अचारा ॥

दोहा—कहहु तात दस कोस लगि, विप्रन को व्यवहार।
मैं जानत भलि भाँति सब, सत अरु असत विचार॥
चले अश्रु गदगद हृदय, सात्त्विक भयो महान।
भुवि नख रेख लग्यौ करन, मैं जिमि जड़ अज्ञान॥

चौपाई

दयाशील बुधवर रघुराई। तुरत लीन्ह मोहि हृदय लगाई॥
अश्रु पोंछि बहु तोष देवाई। बिसे बीस सुत मम समुदाई॥
लखौ चिह्न मिश्रन सम तोरा। बिसुचि मंजु मम गोत्र किशोरा॥
जनि रोवसि प्रिय बाल मतीशा। मेटहि सकल दुसह दुख ईशा॥
धीरज धरि मैं कथन विचारा। पुनि बुध कीन्ह बिबिध सतकारा॥
परशुराम परपिता हमारे। राजापुर सुख भवन सुधारे॥
प्रथम तीर्थ यात्रा महँ आये। चित्रकूट लखि अति सुख पाये॥
कोटि तीर्थ आदिक मुनिवासा। फिरे सकल प्रमुदित गत आसा॥
वीर मरुतसुत आस्रम आई। रहे रैनि तहँ अति सुख पाई॥
परशुराम सोये सुख पाई। तहँ मारुतसुत स्वप्न दिखाई॥
बसहु जाय राजापुर ग्रामा। उत्तर भाग सुभूमि ललामा॥
तुम्हरे चौथ पीठिका एका। तप समूह मुनि जन्म विवेका॥
सम्पति तीरथ भ्रमे अनेका। जानि चरित अदभुत गहि टेका॥
दंपति रहे पक्ष एक तहवाँ। गये कामदा शृङ्ग सु जहवाँ॥
नाना चमतकार तिन्ह पाई। सीतापुर नृप के ढिग आई॥
राजापुर निवास हित भाषा। कहे चरित कुछ गुप्त न राखा॥
तरिवनपुर तेहि की नृपधानी। मिश्र परशुरामहि नृप आनी॥

दोहा—अति महान विद्वान लखि, पठन शास्त्र षट जासु।
बहु सन्माने भूप तहँ, कहि द्विज मूल निवासु॥
सरयू के उत्तर वसत, मञ्जु देश सरवार।
राज मँझवली जानिये, कसया ग्राम उदार॥
राजधानि ते जानिए, कोश विश त्रय भूप।
जन्मभूमि मम और पुनि, प्रगट्यो बौध स्वरूप॥

चौपाई

बौध स्वरूप पेड ते भारी। उपल रूप महि दीन बलारी॥
जैनाभास• चल्यो मत भारी। रक्षा• जीव पूर्ण परिचारी॥
हेम सुकुल तेहि कुल के पडित। क्षत्री धर्म सकल गुण मडित॥

मै पुनि गाना मिश्र कहावा। गणपति भाग यज्ञ महँ पावा ॥
मम बिनु महावंश नहि कोई। मै पुनि बिन सन्तान जो सोई ॥
तिरसठि अब्द देह मम राजा। तिमिसम पत्नि जानि मति आजा ॥
खचित स्वप्नवत लखि मरलोका। तीरथ करन चलेहुँ तजि सोका ॥
चित्रकूट प्रभु आज्ञा पावा। प्रगट स्वप्न बहु बिधि दरसावा ॥
भूप मानि मै चलेहुँ रजाई। राजापुर निवास की ताई ॥
निर्धन बसब राजपुर जाई। वृक्ष कलिन्दि तीर सचु पाई ॥
नगर गेह सुख मिलै कदापी। बसब न होहि जहाँ परितापी ॥
अति आदर करि भूप बसावा। बाममार्ग पथ शुद्ध चलावा ॥
स्वाद त्यागि शिव शक्ति उपासी। जिनके प्रकट शम्भु गिरिवासी ॥
परशुराम काशी तन त्यागे। राम मत्र अति प्रिय अनुरागे ॥
शभु कर्ण गत दीन सुनाई। चढि विमान सुरधाम सिधाई ॥
तिनके शकर मिश्र उदारा। लघु पडित प्रसिद्ध ससारा ॥

दोहा—परशुरामजू भूप को, दान भूमि नहि लीन।
शिष्य मारवाड़ी अमित, धन गृह दीन्ह प्रवीन ॥
बचन सिद्धि शंकर मिसिर, नृपति भूमि बहु दीन।
भूप रानि अरु राज नर, भए शिष्य मति लीन ॥
शकर प्रथम विवाह ते, बसु मुत करि उत्पन्न।
द्वै कन्या द्वै सुत सुबुध, निसि दिन ज्ञान प्रसन्न ॥

चौपाई

जोषित मृतक कीन अनु ब्याहा। ताते मोरि साखि बुधनाहा ॥
तिनके सन्त मिश्र द्वै भ्राता। रुद्रनाथ एक नाम जो ख्याता ॥
सोउ लघु बुध शिष्यन्ह महँ जाई। लाय द्रव्य पुनि भूमि कमाई ॥
रुद्रनाथ के सुत भे चारी। प्रथम पुत्र को नाम मुरारी ॥
सो मम पिता सुनिय बुध त्राता। मै पुनि चारि सहोदर भ्राता ॥
ज्येष्ठ भ्रात मम गणपति नामा। ताते लघु महेस गुण धामा ॥
कर्मकांड पंडित पुनि दोऊ। अति कनिष्ठ मगल कहि सोऊ ॥
तुलसी तुलाराम मम नामा। तुला अन्न धरि तौलि स्वधामा ॥
तुलसिराम कुल गुरू हमारे। जन्मपत्र मम देखि बिचारे ॥
हस्त प्रास पंडित मतिधारी। कह्यो बाल होइहि ब्रतधारी ॥
धन विद्या तप होय महाना। तेजरासि बालक मनिमाना ॥
भरतखड एहि सम एहि काला। नहि महान कोउ परमति शाला ॥

करिहि खचित नृपगन गुरुवाई । बचन सिद्धि खलु रहहि सदाई ॥
अति सुन्दर सरूप सित देहा । बुध मगल भाग्यस्थल गेहा ॥
ताते यह विदेह सम जाई । अति महान पदवी पुनि पाई ॥
पचम केतु रुद्र गृह राहू । जतन सहस्र वश नहि लाहू ॥
दोहा—राज योग दोउ सुख सु एहि, होहि अनेक प्रकार ।
अब्दै दया मुनीस को, लियो जन्म बर बार ॥

चौपाई

प्रेमहि तुलसि नाम मम राखी । तुलारोह तिय कहि अभिलाषी ॥
मातु भगिनि लघु रही कुमारी । कीन ब्याह सुन्दरी बिचारी ॥
चारि भ्रात द्वै भगिनि हमारे । पिता मातु मम सहित निसारे ॥
भ्रात पुत्र कन्या मिलि नाथा । षोडस मनुज रहे एक साथा ॥
+ + +
बानी विद्या भगिनि हमारी । धर्म शील उत्तम गुण धारी ॥
+ + +
दोहा—अति उत्तम कुल भगिनि सब, ब्याही अति कुसलात ।
हस्त प्रास पडितन्ह गृह, ब्याहे सब मम भ्रात ॥

चौपाई

मोर ब्याह द्वै प्रथम जो भएऊ । हस्त प्रास भार्गव गृह ठएऊ ॥
भईं स्वर्गवासी दोउ नारी । कुलगुरु तुलसि कहेउ व्रतधारी ॥
तृतिय ब्याह कंचनपुर माही । सोइ तिय वच विदेश अवगाही ॥
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई । मात भ्रात परिवार छोटाई ॥
कुलगुरु कथन भई सव साँची । सुख धन गिरा अवर सबकाँची ॥
सुनहु नाथ कंचनपुर ग्रामा । उपाध्याय लछिमन अस नामा ॥
तिनकी सुता बुद्धिमति एका । धर्मशील गुनपुञ्ज बिबेका ॥
कथा पुरान श्रवन बलभारी । अति कन्या सुन्दरि मति धारी ॥
दोहा—मोह विप्र बहु द्रव्य ले, पितु मिलि करि उत्साह ।
यदपि मातु पितु सो विमुख, भयो तृतिय मम ब्याह ॥

× × × ×

चौपाई

निज विवाह प्रथमहि करि जहवाँ । तीन सहस मुद्रा लिय तहवाँ ॥
षट् सहस्र लै मोहि विवाहे । *उपाध्याय कुल पावन चाहे ॥

ऊपर लिखे हुए पदों का सारांश यह है कि सरयू नदी के उत्तर-भागस्थ

सरवार देश मे मझौली से तेईस कोस पर कसैयाँ ग्राम मे गोस्वामी के प्रपिता मह परशुराम मिश्र का जन्म-स्थान था और वहीं के वे निवासी थे। एक बार वे तीर्थ-यात्रा के लिए घर से निकले और भ्रमण करते हुए चित्रकूट में पहुँचे। वहाँ हनुमानजी ने स्वप्न मे आदेश दिया कि तुम राजापुर मे निवास करो, तुम्हारी चौथी पीढ़ी मे एक तपोनिधि मुनि का जन्म होगा। इस आदेश को पाकर परशुराम मिश्र सीतापुर में उस प्रांत के राजा के यहाँ गये और उन्होंने हनुमानजी की आज्ञा को यथातथ्य राजा से कहकर राजापुर में निवास करने की इच्छा प्रकट की। राजा इनको अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वान् जानकर अपने साथ अपनी राजधानी तीखनपुर मे ले आये और बहुत सम्मान पूर्वक उन्हें राजापुर में निवास कराया। उनके तिरसठ वर्ष की अवस्था तक कोई संतान नहीं हुई; इससे वे बहुत खिन्न होकर तीर्थ-यात्रा को गये, तो पुनः चित्रकूट में स्वप्न हुआ और वे राजापुर लौट आए। उस समय राजा उनसे मिलने आया। तदनन्तर उन्होंने राजापुर मे शिव-भक्ति के उपासकों की आचरण-भ्रष्टता से दुःखित हो राजापुर में रहने की अनिच्छा प्रकट की; परन्तु राजा ने उनके मत के अनुयायी होकर बड़े सम्मान पूर्वक उनको रखा और भूमिदान दिया; परन्तु उन्होंने ग्रहण नहीं किया। उनके शिष्यों मे मारवाड़ी बहुत थे, उन्हीं लोगों के द्वारा इनको धन, गृह और भूमि का लाभ हुआ। अंतकाल में काशी जाकर इन्होंने शरीर-त्याग किया। ये गाना के मिश्र थे और यज्ञ मे गणेशजी का भाग पाते थे।

इनके पुत्र शङ्कर मिश्र हुए जिनको वाक्सिद्धि प्राप्त थी। राजा और रानी तथा अन्यान्य राज्यवर्ग इनके शिष्य हुए और राजा से इन्हें बहुत भूमि मिली। इन्होंने दो विवाह किये। प्रथम से आठ पुत्र और दो कन्याएँ हुईं; दूसरे विवाह से दो पुत्र हुए—(१) संत मिश्र (२) रुद्रनाथ मिश्र। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र हुए। सबसे बड़े मुरारी मिश्र थे। इन्हीं महाभाग्यशाली महापुरुष के पुत्र गोस्वामीजी हुए।

गोस्वामीजी चार भाई थे—(१) गणपति, (२) महेश, (३) तुलाराम, (४) मङ्गल।

यही तुलाराम तत्त्वाचार्यवर्य भक्तचूड़ामणि गोस्वामीजी है। इनके कुल-गुरु तुलसीराम ने इनका नाम तुलाराम रखा था। गोस्वामीजी के दो बहनें भी थीं। एक का नाम वाणी और दूसरी का विद्या था।

गोस्वामीजी के तीन विवाह हुए थे। प्रथम स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह हुआ और दूसरी के मरने पर तीसरा। यह तीसरा ब्याह कंचनपुर के लक्ष्मण

उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ। इस विवाह मे इनके पिता ने छः हजार मुद्रा ली थीं। इसी स्त्री के उपदेश से गोस्वामीजी विरक्त हुए थे।" (मर्यादा भाग ४, अङ्क १)

इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के विषय मे हम और अधिक न कहकर तुलसीदास के सुप्रसिद्ध जीवनी-लेखक श्रीयुक्त शिवनन्दनसहाय का एक लेख-खण्ड यहाँ उद्धृत करते है, जो श्रीश्यामसुन्दरदास और बडथ्वाल-लिखित 'गोस्वामी तुलसीदास' के १९वें पृष्ठ पर प्रकाशित हुआ है। उससे इस ग्रन्थ की मौलिकता और उपयोगिता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है—

"हमें ज्ञात हुआ है कि केसरिया (चंपारन)-निवासी बाबू इन्द्रदेव-नारायण को गोसाईंजी के किसी चेले की, एक लाख दोहे-चौपाइयों में लिखी हुई, गोसाईंजी की जीवनी प्राप्त हुई है। सुनते है, गोसाईंजी ने पहले उसके प्रचार न होने का शाप दिया था; किंतु लोगों के अनुनय-विनय से शाप-मोचन का समय सं० १९६७ निर्धारित कर दिया। तब उसकी रक्षा का भार उसी प्रेत को सौंपा गया जिसने गुसाईंजी को श्रीहनुमानजी से मिलने का उपाय बताकर श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन का उपाय बताया था। वह पुस्तक भूटान के किसी ब्राह्मण के घर पड़ी रही। एक मुन्शीजी उसके बालको के शिक्षक थे। बालकों से उस पुस्तक का पता पाकर उन्होंने उसकी पूरी नकल कर डाली। इस गुरुतर अपराध से क्रोधित हो वह ब्राह्मण उनके वध के निमित्त उद्यत हुआ तो मुन्शी जी वहाँ से चंपत हो गए। वही पुस्तक किसी प्रकार अलवर पहुँची और फिर पूर्वोक्त बाबू साहब के हाथ लगी। क्या हम अपने स्वजातीय इन मुन्शीजी की चतुराई और बहादुरी की प्रशंसा न करेंगे? उन्होंने सारी पुस्तक नकल कर ली, तब तक ब्राह्मण देवता के कानों तक खबर न पहुँची, और जब भागे तो अपने बोरिए-बस्ते के साथ उस बृहत्काय ग्रन्थ को भी लेते हुए। इसके साथ ही क्या अपने दूसरे भाई को यह अश्रुतपूर्व और अलभ्य पुस्तक हस्तगत करने पर बधाई न देनी चाहिए? पर प्रेत ने उसकी कैसे रक्षा की और वह उस ब्राह्मण के घर कैसे पहुँची? यह कुछ हमारे संवाददाता ने हमें नहीं बताया। जो हो, जिस प्रेत की बदौलत सब-कुछ हुआ, उसके साथ गोसाईंजी ने यथोचित प्रत्युपकार नहीं किया। वनखंडी तथा केशवदास के समान उसके उद्धार का उद्योग तो भला करते, उलटे उसके माथे ३०० वर्ष तक अपनी जीवनी की रक्षा का भार डाल दिया!"

मूल गोसाईं-चरित

शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में बाबा बेनीमाधवदास-रचित तुलसीदास

के एक जीवन-चरित की सूचना दी है। शिवसिंह ने तुलसीदास का जन्म सं० १५८३ में होना लिखा है और मूल गोसाईं-चरित में, जो बेनीमाधवदास के 'चरित' का संक्षिप्त संस्करण कहा जाता है, जन्म-संवत् यह लिखा मिलता है:

पंद्रह सै चौवन विषै, कालिन्दी के तीर।
स्रावन सुक्ला सत्तमी, तुलसी धरेउ सरीर॥

शिवसिंह ने स्वयं उक्त चरित को देखा था या नहीं, इस विषय में मुझे संदेह है। देखा होता तो कम-से-कम तुलसीदास के जन्म-सवत् में दोनों ग्रन्थ-कारों में मतभेद न होता। यदि शिवसिंह की यह बात मान भी ली जाय कि उन्होंने बेनीमाधवदास का गोसाईं-चरित देखा था, तो यह भी मान लेना ही चाहिए कि उन्होंने उसे पढ़ा नहीं था। पढ़ा होता तो वे संवत् ही की भूल से न बचते, बल्कि अपने 'सरोज' में वे बेनीमाधवदास का परिचय और उनके कुछ छन्द भी देते, जैसा उन्होंने अन्य कवियों के लिए किया है।

शिवसिंह ने 'सरोज' में एक ऐसी पुस्तक का हवाला दिया, जो अब अप्राप्य है। उस हवाले का परिणाम यह हुआ कि उसी नाम की पुस्तक प्राचीन कागज पर लिखकर या लिखवाकर चतुर आदमियों को तुलसीदास के प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित करने का अवसर मिल गया। प्राचीन कागज मिलना कठिन नहीं। जितनी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें हैं, प्रायः सबके अन्त में कुछ पत्रे सादे लगे मिलते हैं, जो पुस्तक की समाप्ति पर बच जाते होंगे। उन पत्रों को लेकर कोई व्यक्ति चाहे, तो तुलसीदास या कालिदास के नाम से उन पर एक नई पुस्तक लिखकर या लिखवाकर प्रस्तुत कर सकता है और यदि उसको इस बात का भी सहारा मिल जाय कि उस नाम की पुस्तक कभी थी और अब नहीं मिल रही है, तब तो उसके पौ बारह हैं।

'मूल गोसाईं-चरित' को मैं इसी तरह की एक नव-निर्मित पुस्तक मानता हूँ। मैंने उसे ध्यान से पढ़ा है। उसके एक-एक शब्द और मुहावरे पर विचार किया है और तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उसकी आयु अभी बहुत थोड़ी है।

पचास-साठ वर्ष पहले से ग्रियर्सन साहब और ग्राउस और ग्रीव्स साहबान भी तुलसीदास के जीवन-चरित की खोज में थे, पर उन्हें कोई लिखित प्रमाण नहीं प्राप्त हुआ था। अब जब कि साहित्यिक खोज की कद्र बढ़ रही है, कालेजों और युनिवर्सिटियों में हिन्दी के प्राचीन कवियों को स्थान दिया जा रहा है, तब अप्राप्य पुस्तकों का एकाएक प्रादुर्भाव अवश्य ही चतुर व्यक्तियों

के लिए रोचक विषय हो गया है।

सन् १६२५ में उन्नाव के एक वकील पंडित रामकिशोर शुक्ल, बी० ए०, ने स्वसम्पादित 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में बाबा बेनीमाधवदास-कृत 'मूल गोसाईं-चरित' लगाकर नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित कराया है। उसमें वे लिखते हैं—

"काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के विद्वान् सम्पादकों ने 'श्रीरामचरितमानस' का शुद्ध संस्करण सम्पादित करते समय 'गोस्वामीजी के जीवन-चरित की उपलब्धि' पर विचार करते हुए लिखा है :

'सबसे प्रामाणिक वृत्तान्त बताने वाला' ग्रन्थ, वेणीमाधवदास-कृत 'गोसाईं-चरित' है, जिसका उल्लेख बाबू शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह-सरोज' में किया है। परन्तु खेद का विषय है कि न तो अब वह ग्रन्थ ही कहीं मिलता है और न शिवसिंह-सरोजकार ने उसका संक्षिप्त वृत्तान्त ही अपने ग्रन्थ मे लिखा है। वेणीमाधवदास कवि पसका ग्राम के निवासी थे और गोसाईंजी के साथ सदा रहते थे।'

ऊपर जिस प्रामाणिक ग्रन्थ का उल्लेख हुआ है, उसका अन्तिम अध्याय, सौभाग्य से, भगवत् की असीम कृपा से, हमें प्राप्त हो गया है। इस अध्याय का नाम 'मूल गोसाईं-चरित' है। इसमें बाबा वेणीमाधवदासजी ने नित्य पाठ करने के अभिप्राय से, संक्षेप से तुलसीदास के सम्पूर्ण चरित्र का उल्लेख कर दिया है।"

उक्त 'चरित' कैसे प्राप्त हुआ ? कहाँ से प्राप्त हुआ ? यह रहस्य बताने की आवश्यकता शुक्लजी ने नहीं समझी। यद्यपि ऐसी प्रामाणिक पुस्तक के लिए उसकी प्राप्ति का पूरा विवरण देना बहुत ही आवश्यक था। प्रसन्नता की बात है कि शुक्लजी का यह भार श्रीयुक्त श्यामसुन्दरदास और बडथ्वाल-जैसे विद्वानों ने अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने 'मूल गोसाईं-चरित' के आधार पर 'गोस्वामी तुलसीदास' नाम की एक भारी भरकम पुस्तक की रचना की है, जो हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग से सन् १६३१ मे प्रकाशित हुई थी। उक्त सम्पादकद्वय 'गोस्वामी तुलसीदास' के पृष्ठ २० और २१ पर 'मूल गोसाईं-चरित' की असली प्रति का हाल इस प्रकार लिखते है—

"पंडित रामकिशोर शुक्ल को वेणीमाधवदास की प्रति कनक-भवन अयोध्या के महात्मा बालकराम विनायकजी से प्राप्त हुई थी। महात्माजी की कृपा से उनकी प्रति को देखने का हमे भी सौभाग्य मिला है। जिस प्रति से यह प्रति लिखी गई थी वह मौजा सरूब, पोस्ट ओबरा, जिला गया के पंडित

रामाधारी के पास है। पांडेयजी ने लिखा है कि यह प्रति उनके पिता को गोरखपुर में किसी से प्राप्त हुई थी। तब से वह उनके यहाँ है और नित्य-प्रति उसका पाठ होता है। पांडेयजी इस प्रति को पूजा में रखते है। इससे वह बाहर तो नहीं जा सकती; परन्तु यदि कोई उसे वहाँ जाकर देखना और जाँचना चाहे तो ऐसा कर सकता है।

जाँच कराने से ज्ञात हुआ है कि यह प्रति पुराने देशी कागज पर देव-नागरी अक्षरों मे लिखी है। इसमे ६॥" × ५॥" के आकार के ५४ पृष्ठ है। प्रत्येक पृष्ठ मे १२ पंक्तियाँ है।"

इतना विवरण मिलने पर भी यह जानना अभी शेष ही है कि उक्त महात्मा-जी को वह प्रति कैसे प्राप्त हुई? क्या वे गया गये थे? और स्वयं उन्होंने उसकी नकल की थी? वह पुस्तक तो पूजा मे रहती है, कहीं बाहर जा नहीं सकती, फिर वह कनक-भवन अयोध्या तक कैसे पहुँची? असली प्रति भी तो अभी किसी ने नहीं देखी है। केवल पत्र द्वारा उसके पत्रों की लम्बाई-चौड़ाई मँगा ली गई है।

खैर; हम एक बार यह मान ही लेते है कि उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' बाबा वेणीमाधवदास ही के रचे हुए ग्रन्थ की नकल है। अब आइये, हम प्रस्तुत पुस्तक की प्रामाणिकता को तर्क की कसौटी पर तो कसकर देखें।

मेरे पास 'मूल गोसाईं-चरित' गीता प्रेस गोरखपुर का छपा हुआ है। उसमे डबल क्राउन आकार के कुल ३६ पृष्ठ है। उसके प्रारम्भ में ये दो दोहे है:

संतन कहेउ बुझाय, मूल-चरित पुनि भाषिये।
अति सछेप सोहाय, कहौ सुनिय नित पाठ हित॥
चरित गोसाईं उदार, बरनि सकै नहि सहस फनि।
हौ मति मन्द गँवार, किमि बरनौ तुलसी सुजस॥

अंत में यह दोहा है:

सोरह सै सत्तासि सित, नवमी कातिक मास।
बिरच्यो यहि निज पाठ हित, बेनीमाधवदास॥

इसके आगे लेखक का यह वक्तव्य है:

इति श्री वेणीमाधवदास-कृत मूल गोसाईं-चरित समाप्त।

श्रीसूगण्डिल्यगोत्रोत्पन्नपक्तिपावनत्रिपाठीरामरक्षमणिरामदासेन तदात्मजेन च लिखितम्। मिति विजयादशमी सक्त् १८४८ भृगुवासरे।

इससे यह तो प्रकट ही है कि वर्तमान पुस्तक 'मूल गोसाईं-चरित' की नकल

है, जो संवत् १८४८ में की गई थी।

उक्त विद्वान् सम्पादकद्वय ने पृष्ठ २१ पर यह भी लिखा है कि "मूल गोसाईं-चरित से इस बात का संकेत मिलता है, कि गोसाईंजी से वेणी-माधवदास की पहली भेंट संवत् १६०६ और १६१६ के बीच में हुई थी। संभवतः इसी समय वे उनके शिष्य भी हुए हों। × × जिस व्यक्ति का अपने चरितनायक से ६४-७० वर्ष का दीर्घकालीन संपर्क रहा हो, उसके लिखे जीवन-चरित की प्रामाणिकता के विषय में संदेह के लिए बहुत कम अवकाश हो सकता है। यदि यह मूल चरित प्रामाणिक न हो तो, आश्चर्य की बात होगी।"

पर 'मूल-चरित' को अच्छी तरह पढ़ने पर यदि वह प्रामाणिक माना जाय, तो वास्तव में यही आश्चर्य की बात होगी। मैंने मूल चरित को कई बार पढ़ा, मुझे तो कहीं यह आभास नहीं मिला कि तुलसीदास से बेनीमाधवदास की भेंट सम्वत् १६०६ और १६१६ के बीच (में ?) हुई थी। और यह कैसे विदित हुआ कि वे शिष्य भी हुए और शिष्य होने के बाद लगातार ६४ या ७० वर्षों तक साथ भी रहे। ऐसी लचर कल्पनाओं पर इतिहास लिखना ही सबसे बड़े आश्चर्य की बात है।

'मूल गोसाईं-चरित' में वर्णित घटनाओं पर विचार करने के पहले हम उसकी भाषा-सम्पत्ति पर विचार कर लेना चाहते हैं। जिस व्यक्ति ने 'मूल गोसाईं-चरित' की रचना की, भाषा पर तो उसका कुछ भी अधिकार नहीं जान पड़ता। उसमें शब्दों को तो ऐसे बेढंगे तौर पर तोड़ा-मरोड़ा गया है कि 'चरित' के रचयिता की असमर्थता पर दया आती है। रचयिता को न छन्द का ज्ञान था, न व्याकरण का; और न वह तुक ही मिला सकता था। जो व्यक्ति तुलसीदास-जैसे महाकवि के साथ सत्तर वर्षों तक रहता हुआ माना जाय, फिर भी वह चन्दन के वन में एरंड ही बना रहे, तो उसके कथन का प्रमाण ही क्या होगा ?

काव्य-रचना तो तुलसीदास का विषय नहीं था, उसका लाभ तो 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता को सहज ही में प्राप्त हो सकता था। पर उसे न लेकर वह तुलसीदास की डायरी लिखा करता था, यह कहाँ तक विश्वसनीय माना जायगा ? हिन्दू साधुओं में कभी डायरी लिखने-लिखवाने की चाल सुनी नहीं गई, फिर बाबा बेनीमाधवदास को यह प्रवृत्ति कैसे हुई।

सन्-सम्वत् तथा दिनों और तिथियों का ठीक उतरना कोई कठिन बात नहीं है। तुलसीदास से भी दो-चार सौ वर्षों पहले की तिथियाँ और दिन किसी

सम्वत् के साथ ठीक-ठीक जाने जा सकते है। और उनकी एक सूची बनाकर किसी सम्वत् के साथ ठीक तिथि और दिन मिलाकर कोई कल्पित कथा पिरो दी जा सकती है।

इस पर इस प्रश्न का हम स्वागत कर सकते है कि तब तो कोई भी ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि तुलसीदास ने 'कवितावली' मे रुद्रबीसी और मीन के शनैश्चर का जिक्र किया है, हम उसे सत्य ही समझते है, क्योंकि तुलसीदास ने उसे कहा है। किसी ग्रन्थ की प्रामाणिकता उसके रचयिता की योग्यता पर निर्भर होती है, न कि इस बात पर कि वह किसके साथ कै वर्षों तक रहा।

इसमे से बहुतों को मालूम है कि सन् १९३१ मे महात्मा गाँधी और सम्राट् से मुलाक़ात हुई थी। मुलाक़ात दस-पन्द्रह मिनटों से अधिक देर तक नहीं हुई थी और उनमे जो बाते हुई थीं, वे भी गिनी-चुनी थीं। पर वे बातें मालूम कितनों को है? महात्मा गाँधी के निरन्तर सहवास मे रहने वाले भी कितने ही व्यक्ति ऐसे है, जो यह नहीं जानते कि क्या-क्या बाते हुई और ठीक कै मिनटों तक हुईं? पर यदि कल्पना-निपुण तुकबन्द को उक्त मिलन पर कुछ लिखने को दे दिया जाय, तो वह एक लम्बी-सी गाँधी-गीता तैयार कर देगा और फिर गाँधी जी के बाद सौ-दो सौ वर्षो मे वही प्रामाणिक माना जाने लगेगा। तब भक्त लोग इस बात का प्रसंग ही न उठने देगे कि मुलाक़ात कै मिनटों में समाप्त हुई थी, उतनी देर में गाँधी-गीता कही या सुनी जा सकती है, या नहीं?

ठीक यही दशा 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता की है। एक साधारण तुकबन्द ने ग़ैर जिम्मेदारी के साथ, जो कुछ उसके मग़ज़ मे से निकला, या निकलवाया गया, बे-सिर-पैर के पद्यों मे निकालकर रख दिया है। हमें उसका कहाँ तक विश्वास करना चाहिए?

'मूल गोसाईं-चरित' की भाषा मुझे तीन सौ वर्ष की पुरानी नहीं मालूम होती। कुछ उदाहरण लीजिए:

> एक दासि कढी तेहि अवसर मे।
> कहि देव बुलाहट है घर मे।।

हमें इस 'बुलाहट' के 'हट' को देखकर सन्देह हुआ था। क्योंकि 'हट' प्रत्यय-युक्त शब्द जैसे घबराहट, मुसकराहट, चिल्लाहट आदि बहुत प्राचीन नहीं है। कम-से-कम मुझे किसी प्राचीन कवि की कविता मे अभी तक 'हट' प्रत्यय-युक्त शब्द नहीं मिले। हिन्दू-विश्वविद्यालय के हिन्दी-अध्यापक आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल को मैंने पत्र लिखकर और फिर मिलकर भी पूछा। वे भी 'हट' की प्राचीनता नहीं प्रमाणित कर सके।

२१ वें पृष्ठ पर एक छन्द है—

पोथी पाठ समाप्त कैके धरे, सिवलिग ढिग रात मे।
मूरख पडित सिद्ध तापस जुरे, जब पट खुलेउ प्रात मे॥
देखिन तिरषित दृष्टि से सबजने, कीन्ही सही संकर।
दिव्याषर सो लिख्यो पढे धुनि सुने, सत्यं सिव सुन्दर॥

इस 'सत्यं सिवं सुन्दरं' ने तो मूल-चरित के रचयिता को अँधेरे में से खींचकर उजाले में लाकर खड़ा कर दिया है। 'सत्यं सिवं सुन्दरं' यद्यपि संस्कृत का वाक्य है, पर अभी थोड़े दिनों से हिन्दी वालों मे इसने प्रवेश पाया है। हिन्दी के किसी प्राचीन कवि ने इसका उपयोग नहीं किया था। तुलसीदास ही ने नहीं किया तो उनके एक साधारण पढ़े-लिखे चेले की क्या बिसात थी, जो इस वाक्य तक पहुँचा ?

ऊपर शार्दूल-विक्रीड़ित छन्द की छीछालेदर आप देख चुके, अब जरा अन्य छंदों के कुछ और नमूने लीजिये :

सुत जन्म बधाव लग्यो बजने। सजन छजने रजने गजने॥

× × ×

घरि पॉचइ बार चढै मुनिया। निज साम के पॉय गही चुनिया॥

× × ×

चरनारि हती तहँ सो परषी। जब माय खवाय ललाट रषी॥

× × ×

जिन जोह जसूस पै आइ जकै। परिचय द्विज नारिन पाइ थकै॥

× × ×

सुठि घाट मनोहर पच पगा। गगिया कर कौतुक केलि झगा॥

× × ×

पुनि चारु कुँवरि बरदान दियो। जिन सत सुसेवा लियो रु कियो॥

× × ×

वृन्दावन के हरिबस हितू। प्रियदास नवल निज सिष्य भूतू॥

× × ×

कवि केसवदास बडे रसिया। घनस्याम सुकुल नभ के बसिया॥

× × ×

पहुँचे लखनैपुर मोद भरे। अरु धेनुमती तट पै उतरे॥

कहुँ दीनन को प्रतिपाल करै। कहुँ साधुन के मन मोद भरै॥
कहुँ लखनलाल को चरित बचै। कहुँ प्रेम मगन ह्वै आपु नचै॥
कहुँ रामायन कलगान सचै। उत्साह कोलाहल भूरि मचै॥

× × ×

निमिसार को विप्र सुधर्म रता। वनखडि सुनाम विमोह गता।

ये छंद आप ही बतला रहे हैं कि इनके रचयिता की शब्द-सम्पत्ति और काव्य-कला कैसी थी, और महाकवि तुलसीदास का वह कैसा शिष्य था?

अब आइये, 'मूल गोसाईं-चरित' के ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करें।

पृष्ठ २ पर तुलसीदास का जन्म-काल इस प्रकार दिया हुआ है:

पंद्रह सै चौवन विषै, कालिन्दी के तीर।
स्रावन सुक्ला सत्तिमी, तुलसी धरेउ सरीर॥

इसके अनुसार संवत् १६३१ मे जब तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' लिखना प्रारम्भ किया, तब उनकी आयु ७७ वर्षों की थी। यदि 'रामचरित-मानस' का रचना-काल सं० १६३१ उसमें न दिया होता, तो हमे तुलसीदास का जन्म १५५४ ही नहीं, दस-पाच वर्ष और भी पहले मान लेने मे शायद आपत्ति न होती। क्योंकि संयमी पुरुषों का सौ-सवा सौ वर्षों तक जीवित रहना असंभव नहीं है। पर ७७ वर्ष की आयु मे 'रामचरितमानस'-जैसे महा-काव्य का प्रारम्भ करना असम्भव-सा दिखता है। जिस राम-कथा को तुलसी-दास ने बालपन से लेकर युवावस्था तक गुरु-मुख से कई बार सुना था, उसे वे ७७ वर्षों तक मन मे लिये बैठे रहे, यह बात कवि-स्वभाव के अनुकूल नहीं जान पड़ती। अतएव यह जन्म-संवत् सत्य नहीं जान पड़ता।

'मूल-गोसाईं चरित' में, संवत् १६०९ में, जब तुलसीदास चित्रकूट मे थे, हितहरिवंशजी के सम्बन्ध में यह उल्लेख है:

वृन्दावन ते हरिबस हितू। प्रियदास नवल निज सिष्य भृतू।

× × ×

जमुनाष्टक राधा सुधानिधिजू। अरु राधिकातन्त्र महाविधिजू॥
अरु पाति दई हित हाथ लिखी। सोरह सै नव जन्माष्टमि की॥
तेहि माँहि लिखी विनती बहुरी। सोइ बात मुखागर सो कहु री॥
रजनी महरास की आवत जू। चित चोर सदय ललचावत जू॥
रसिकै रस मो तन त्याग चहौ। मोहि आसिष देइअ कुञ्ज लहौ॥

सुनि विनती मुनिनाथ, एवमस्तु इति भाषेउ।
तनु तजि भये सनाथ, नित्य निकुज प्रबेस करि॥

हितहरिवंश का जन्म बैसाख बदी ११, सं० १५३० में हुआ था। संवत् १६०९ में वे ७९ वर्ष की आयु के थे। ऊपर के वर्णन से मालूम होता है कि इसी आयु में उन्होंने तुलसीदास से आज्ञा लेकर शरीर-त्याग किया। पहले तो यही विचाराधीन है कि उन्होंने तुलसीदास का आशीर्वाद लेकर महारास के दिन नित्य-निकुञ्ज में इस लोक की लीला समाप्त करने का विचार क्यों किया? हित जी तो अनन्य राधावल्लभीय सम्प्रदाय के संस्थापक थे। अन्त समय में वे अपने इष्टदेव का ध्यान न करके वृन्दावन से कई सौ मील दूर बैठे हुए तुलसीदास से आशीर्वाद लेकर शरीर छोड़ने को उत्सुक क्यों हुए? और उन्होंने सं० १६०९ में शरीर छोडा भी तो नहीं। संवत् १६२२ तक उनके जीवित रहने का प्रमाण मिलता है। अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में पंडित रामचन्द्र शुक्ल लिखते है—'ओरछा-नरेश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास जी १६२२ वि० के लगभग आपके शिष्य हुए थे, (पृष्ठ १७७)।' हाँ, मिश्रबन्धुओं ने अपने 'विनोद' में अवश्य लिखा है कि 'स्वामी हितहरिवंश जी की जीवन-यात्रा प्रायः ७९ वर्ष की अवस्था मे समाप्त हुई।' जो ठीक सं० १६०९ मे पड़ती है। तो क्या 'मूल गोसाईं-चरित' मे 'विनोद' की आत्मा बोल रही है?

'मूल गोसाईं-चरित' के पृष्ठ १५ पर सूरदास के सम्बन्ध में यह उल्लेख है:

सोरह सै सोरह लगै, कामद गिरि ढिग बास।
सुचि एकात प्रदेस महँ, आये सूर सुदास॥
पठये गोकुलनाथजी, कृष्ण रग महँ बोरि।
दृग फेरत चित चातुरी, लीन्ह गोसाईं छोरि॥

× × ×

कवि सूर दिखायउ सागर को। सुचि प्रेम-कथा नटनागर को।

× × ×

दिन सात रहे सतसग पगै। पदकज गहे जब जान लगै॥

इससे प्रकट है कि सूरदास संवत् १६१६ मे तुलसीदास से मिलने के लिए चित्रकूट आये थे और उन्होंने उन्हें अपना 'सूरसागर' दिखलाया भी था। अभी तक सूरदास का समय १५४० से १६२० तक माना जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता ने ब्रजभाषा के कट्टर कृष्णोपासक कवियों को उनकी आयु के अन्तिम दिनों में दौड़ा-दौड़ाकर सैकड़ों मील दूर लाकर तुलसीदास के चरणों पर गिराया है। माना तो यह जाता है कि सूरदास अन्तिम दम तक ब्रजमण्डल से नहीं टले। और ८ वर्ष के गोकुल-

नाथ जी ने ७६ वर्ष के वृद्ध सूरदास को 'कृष्ण रंग मे बोरि' तुलसीदास के पास भेजा, यह तो और भी असंगत जँचता है ।

वह गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी का समय था, न कि गोकुलनाथ जी का। बिट्ठलनाथ जी का जन्म सं० १५७२ मे और अन्त सं० १६४३ मे हुआ, और गोकुलनाथ जी का जन्म और मरण सं० १६०८ और १६६० मे माना जाता है ।

'मूल गोसाईं-चरित' के उसी पृष्ठ पर मीराबाई के सम्बन्ध में यह छपा हुआ मिलता है :

तब आयो मेवाड ते, बिप्र नाम सुखपाल ।
मीराबाई-पत्रिका, लायो प्रेम प्रबाल ।।

इससे यह अर्थ निकलता है कि सं० १६१६ में मीराबाई ने तुलसीदास के पास सुखपाल ब्राह्मण के हाथ पत्र भेजा था । मीराबाई का विवाह सं० १५७३ में हुआ था और राजपूताने के ऐतिहासिकों ने यह निश्चयपूर्वक निर्णय कर दिया है कि मीराबाई का देहान्त सं० १६०३ मे हुआ था, तब उनका सं० १६१६ में तुलसीदास को पत्र लिखना कैसे सम्भव हो सकता है ?

'मूल गोसाईं-चरित' के पृष्ठ २० पर यह छपा हुआ मिलता है :

स्वामी नंद सुलाल को सिष्य पुनी । तिसु नाम दयाल सुदास गुनी ।
लिषि कै सोइ पोथि स्वठाम गयो । गुरु के ढिग जाय सुनाय दयो ।
जमुना तट पै तय बत्सर लौं । रसखानहि जाइ सुनावत भो ।

इससे ज्ञात होता है रसखान ने लगातार तीन वर्षों तक यमुना-तट पर किसी दयालदास से 'मानस' सुना । पर रसखान की जीवनी से यह विदित है कि वे स० १६४० के आस-पास गोस्वामी बिट्ठलनाथ के शिष्य हुए थे । शिष्य होने के पहले वे एक साहूकार के लड़के पर आशिक थे और उसके साथ-साथ घूमा करते थे । सं० १६७१ में उन्होंने 'प्रेम बाटिका' की रचना की थी । सं० १६३४ से १६३७ तक वे 'मानस' के प्रेमी रहे होंगे या अपने माशूक के ? यह विचार करने की बात है । उस समय तो वे यौवन के उन्माद में ग्रस्त थे। और उनका प्रेम-परिवर्तन पहले-पहल कृष्ण के लिए हुआ, न कि राम के लिए । अतएव 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता की यह बात भी असत्य जान पड़ती है :

कवि केसवदास बड़े- रसिया । घनस्याम सुकुल नभ के बसिया ।।
कवि जानि के दरसन हेतु गये । रहि बाहर सूचन भेजि दिये ।।
सुनि कै जु गोसाईं कहै इतनो । कवि प्राकृत केसव आवन दो ।।

फिरिगे झट केसव सो सुनि कै। निज तुच्छता आपुइ ने गनि कै ॥
जब सेवक टेरेउ गे कहि कै। हौ भेंटिहौ कालिह बिनय गहि कै ॥

× × ×

रचि राम सुचन्द्रिका रातहि में। जुरै केसवजू असि घाटहि में ॥
सतसंग जमी रसरंग मची। दोउ प्राकृत दिव्य विभूति खची ॥

× × ×

सो०—उडछै केसवदास, प्रेत हतौ घेरेउ मुनिहि।
उधरे बिनहि प्रयास, चढि बिमान स्वरगहि गयौ ॥

इस उद्धरण से मालूम होता है कि केशवदास ने एक रात में 'रामचन्द्रिका' रच डाली थी। यह घटना 'मूल गोसाईं-चरित' के अनुसार सं० १६४३ के आस-पास की है। पर केशवदास तो स्वयं अपनी 'रामचन्द्रिका' की रचना का यह समय देते है:

दो०—सोरह सै अट्ठावनै, कातिक सुदि बुधवार।
रामचद्र की चंद्रिका, तब लीन्हों अवतार ॥

अतएव बेनीमाधवदास का कथन तो बिलकुल ही असत्य है। और सोरठे में जो केशवदास के प्रेतोद्धार की कथा है, वह भी भ्रमात्मक है। बेनीमाधवदास के कथनानुसार यह घटना सं० १६५० के लगभग की है। पर केशवदास ने तो सं० १६५८ में 'कविप्रिया' और 'रामचन्द्रिका' १६६४ में 'वीरसिंह देवचरित' १६६७ मे 'विज्ञान गीता' और १६६६ मे 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' की रचना की थी। वे प्रेत हुए होंगे, तो सं० १६६६ के बाद ही कभी हुए होंगे।

'मूल गोसाईं-चरित' के अनुसार स० १६५१ के आस-पास तुलसीदास 'दिल्लीपति' से मिले थे:

तहँ ते पँचये दिन मुनी, पहुँचे दिल्ली जाय।
षबरि पाय तुरतहिं नृपति, लिय दरबार बुलाय ॥
दिल्लीपति बिनती करी, दिषरावहु करमात।
मुकरि गये बंदी किये, कीन्हे कपि उतपात ॥
बेगम को पट फारेऊ, नगन भईं सब बाम।
हाहाकार मच्यो महल, पटको नृपहि धडाम ॥

पर यह 'दिल्लीपति' कौन था ? इतिहास से प्रकट है कि अकबर ने सं० १६६२ तक राज्य किया था। बेनीमाधवदास के कथनानुसार यदि तुलसीदास की भेंट दिल्लीपति (अकबर) से हुई होती, तो उसका उल्लेख अवश्य 'आईने अकबरी' मे होता। पर आश्चर्य की बात है कि अबुलफ़जल ने 'आईने अकबरी'

में अकबर से तुलसीदास के मिलने की कौन कहे, उस समय तुलसीदास की विद्यमानता का भी कहीं उल्लेख नहीं किया है। अतएव यह प्रसंग भी बेनी-माधवदास की कपोल-कल्पना जान पडता है।

बेनीमाधवदास ने सं० १६७० मे काशी में जहाँगीर का आना लिखा है :

जहाँगीर आयो तहाँ, सत्तर सम्वत् बीत।
धन धरती दीबो चहै, गहे न मुनि विपरीत।।

पर जहाँगीर के इतिहास में प्रामाणिकता के साथ यह विदित है कि सन् १६१३ (स० १६७०) में वह आगरा में था और उसने खुर्रम को मेवाड़-विजय के लिए भेजा था, और उसी सन् में मेवाड़ के राणा अमरसिंह ने उसकी अधीनता स्वीकार की थी। जहाँगीर सं० १६६९ से १६७३ तक दक्षिण और राजपूताने ही के युद्धों में लगा रहा। वह इस अवसर में पूर्व की ओर तो आया ही नहीं। ६ मार्च, सन् १६१७ में उसने दक्षिण पर चढ़ाई की थी।

इस प्रकार 'मूल गोसाईं-चरित' हमे भ्रमपूर्ण और असत्य बातों से भरा मिलना है। हम उसे तुलसीदास के जीवन-चरित के लिए बिलकुल ही विश्वास के योग्य नहीं मानते। वह किसी अनधिकारी व्यक्ति का लिखा हुआ जान पड़ता है। सम्भव है, उसका उत्पत्ति-स्थान कनक-भवन (अयोध्या) ही हो।

४

जीवनी का मूल आधार

तुलसीदास के जीवन-चरित से सम्बन्ध रखने वाले जितने प्राचीन प्रमाण उपलब्ध हैं, प्राय. वे सब ऊपर आ गए हैं। तुलसीदास के इधर के चरित-लेखकों में कोई ऐसा नहीं दिखाई पड़ता, जो ग्रियर्सन साहब की सीमा को पार करके आया हो। हम तो देख रहे हैं कि गत पचास वर्षों से ग्रियर्सन साहब ही तुलसीदास के चरित-लेखकों का मार्ग-प्रदर्शन कर रहे हैं। अतएव उन सब चरित-लेखकों को ग्रियर्सन साहब ही के अन्तर्गत समझना होगा।

तुलसीदास के जीवन-चरित-सम्बन्धी दो पद्य-पुस्तकों—'तुलसी-चरित' और 'मूल गोसाई-चरित' की समीक्षा ऊपर कुछ विस्तार के साथ की जा चुकी है। यद्यपि उनमे संवत्, तिथियाँ, दिन और प्रसिद्ध पुरुषों और स्थानों के नाम सभी कुछ है; पर उनमे वह सत्य नहीं निकला, जिसे इतिहास चाहता है। इससे हमे उनसे कुछ प्रकाश पाने की आशा त्याग ही देनी पड़ी।

अब अतीत के अन्धकार मे हमे कोई प्रकाश की रेखा दिखाई पड़ती है, तो वह है, 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता'। मुझे आश्चर्य है कि तुलसीदास के चरित-लेखकों ने अब तक 'वार्ता' की ऐसी उपेक्षा की। इसे हम उनकी विचार-परतन्त्रता के सिवा और क्या कहे? ग्रियर्सन साहब ने अपनी खोज के अनुसार जो कुछ निर्धारित कर दिया था, उसका समर्थन ही बाद के चरित-लेखकों का धर्म-सा हो गया है। यदि किसी को कभी 'वार्ता' की पीड़ा कुछ उठी, तो उसने यह कहकर उसे टाल दिया कि वह सत्य नही है। उसमे के तुलसीदास कोई और होगे। पर ये तो टाल-मटोल की बाते है। ऐसी मनोवृत्ति के साथ कोई जीवन-चरित या इतिहास लिखा जायगा, तो सत्य-निर्णय की जिज्ञासा तो बनी ही रहेगी।

तुलसीदास के जन्म-स्थान की खोज

तुलसीदास के जितने जीवन-चरित अब तक प्रकाशित हो चुके है, करीब-करीब सबके पढ़ने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। किसी ने राजापुर (बाँदा) को, किसी ने तारी को, किसी ने हाजीपुर (चित्रकूट) को और किसी ने

हस्तिनापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान माना है। पर किसी ने इस शंका का समाधान नहीं किया कि तुलसीदास जब बहुत बालक और 'अति अचेत' थे, तब वे सूकरखेत कैसे पहुँच गए ? यदि यह भी मान लिया जाय कि वे मँगते के लड़के थे; घर से भीख माँगते हुए उधर निकल गए होंगे, तो इस प्रश्न का हल हो जाना तो और भी कठिन हो जायगा कि काशी और प्रयाग-जैसे निकट-वर्ती शहरों की अपेक्षा सूकर खेत मे उनके लिए कौन सा विशेष आकर्षण था ? सूकर खेत तो मँगतो का कोई खास अड्डा नहीं; और सो भी राजापुर या तारी-जैसे गाँव वालों के लिए, जो शायद सूकर खेत का नाम भी नहीं सुने होंगे।

बहुत दिनों से मेरे मन मे इस बात की शंका उठ रही थी कि संभव है, तुलसीदास का जन्म-स्थान सूकरखेत ही हो। इससे वहाँ चलकर पता लगाना चाहिए। संयोग से कुछ वर्ष पहले टीकमगढ़ से 'बुन्देल-वैभव' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई। उसमे भी तुलसीदास के जन्म-स्थान को 'वार्ता' के आधार पर प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया देखकर मेरी धारणा को और भी प्रोत्साहन मिला और मै तुलसीदास की जीवनी की खाज मे शीघ्र प्रवृत्त हुआ।

अक्तूबर, १६३५ के पहले सप्ताह में मै खोज के लिए घर से निकल ही पड़ा। भिन्न-भिन्न स्थानों मे होता हुआ ता० २० अक्तूबर को मै सोरों पहुँचा।

सोरो जाकर मुझे निश्चय हो गया है कि तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरो ही है। वही उन्होने पहले-पहल बाल्यावस्था मे गुरु-मुख से राम-कथा सुनी थी। सोरो मे मै कई विद्वानों से मिला, जिनमे विद्वद्वर पंडित गंगावल्लभ पांडेय, व्याकरणाचार्य, काव्यतीर्थ, न्यायशास्त्री, वैद्यराज, प्रिंसिपल मेहता-संस्कृत-विद्यालय और पंडित गोविन्दवल्लभ शास्त्री मुख्य है। सबने तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों ही बताया। मैंने राह चलते हुए साधारण व्यक्तियों से भी पूछ-ताछ की, जिनमे हिन्दू और मुसलमान दोनों थे, सबने ऊपर ही की बात का समर्थन किया। ऐसा उन्होंने इस लोभ से नहीं किया कि तुलसीदास-जैसे अमर कवि का जन्म-स्थान होने से उनके सोरों की महिमा बढ़ जायगी; इस रहस्य को तो वे बेचारे समझते भी नहीं; बल्कि वहाँ तो आम तौर से यह बात सबको विदित है कि यह तुलसीदास का घर है, यह उनकी ससुराल है और यहाँ से वे गंगा पार करके सावन की रात में ससुराल गये थे।

मुझे सोरों के योगमार्ग मुहल्ले मे वह स्थान दिखलाया गया, जहाँ तुलसीदास का घर था। वह इस समय एक कसाई के अधिकार मे है। और कसाई ने उसके चारो ओर नये कमरे बनवाकर उसे भीतर कर लिया है।

फिर भी कर्णमूल रोग पर लेप करने के लिए उस मकान की मिट्टी लेने को लोग जाते ही आते रहते हैं।

जान पड़ता है, तुलसीदास का घर शुरू ही से कसाइयों के मुहल्ले में पड़ गया था। वहाँ इस प्रकार के कई दोहे सुनने को मिले और एक तो मुझे पहले ही से याद भी था; पर मैं 'गलकटियों' को काम, क्रोध आदि समझता रहा। सोरों जाने पर यह रहस्य खुला कि वे 'गलकटियें' वास्तव में कसाई थे। दोहा यह है :

तुलसी तेरी झोपड़ी, गलकटियों के पास।
जौन करै सोई भरैं, तू कत होत उदास॥

तुलसीदास के गुरु नरसिंहजी

सोरों में तुलसीदास के विद्या-गुरु नरसिंहजी नाम के एक विद्वान् थे। वहाँ उनका एक मन्दिर भी है। वह 'नरसिंहजी का मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध है। मैंने उसे देखा, उसके बाहरी दालान को छोड़कर भीतर का असली मन्दिर बहुत पुराना है, इसमें सन्देह नहीं। कहा जाता है, पहले उस मन्दिर में हनुमानजी की मूर्ति थी, क्योंकि नरसिंहजी हनुमानजी के उपासक थे, पर कुछ वर्ष हुए, उनके किसी कुटुम्बी ने हनुमानजी की मूर्ति वहाँ से निकालकर बाहर एक ताक में जड़ दी और उस स्थान पर पीतल की एक मूर्ति रख दी है, जो किसी अन्य देवता की है। मन्दिर के सामने अहाते के कोने पर बरगद का एक वृक्ष है, जो तुलसीदास के समय के किसी बड़े वट-वृक्ष की जटा से उत्पन्न हुआ कहा जाता है। मन्दिर के सामने जो रास्ता है, उसके एक कोने पर एक प्राचीन कुआ है, जो नरसिंहजी का कुआ कहलाता है। तुलसीदास ने 'कृपासिंधु नर रूप हरि' में इन्हीं नरसिंह की ओर संकेत किया है।

तुलसीदास की ससुराल

सोरों के पास ही एक फर्लाङ्ग की दूरी पर बदरिया नाम का एक छोटा-सा गाँव है, जिसमें तुलसीदास की ससुराल थी। ससुराल वाला मकान, जो मुझे दिखाया गया, अब एक मन्दिर के रूप में है। सोरों और बदरिया के बीच में किसी समय गंगाजी की एक धारा बहती थी। सरकार ने गंगा की मुख्य धारा के पास नहर के लिए बाँध बँधवा दिया, इससे सोरों आने वाली धारा का मुख बन्द हो गया; पर अब भी कई फर्लाङ्ग लम्बा, नदी के आकार का एक तालाब वहाँ पर विद्यमान है, जो बरसात में दोनों ओर गंगाजी से जुड़ जाया करता है। अब भी उसमें काफ़ी जल है। अब तो उस तालाब पर पुल बन गया है, पर तुलसीदास के समय में सम्भव है, नाव ही से सोरों और

बदरिया के बीच आवागमन होता रहा हो। वहाँ जाने पर यह बात तत्काल ध्यान में आती है कि तुलसीदास गंगा की इसी धारा को पार करके अपनी ससुराल गए होंगे।

सोरों का ऐतिहासिक महत्त्व

सोरों, जिसका शुद्ध नाम शूकर क्षेत्र है, एटा जिले मे एक कस्बा और तीर्थ-स्थान है। यह अत्यन्त प्राचीन स्थान है। नवीं सदी मे वहाँ सोलङ्की वंश का सोमदत्त नाम का एक बड़ा प्रतापी राजा राज करता था। उसके चिह्न वहाँ अब तक मिलते है। सोरों के आस-पास कुछ टीले है, जिनके अन्दर पत्थर के पुराने मकान ढके पड़े है। खोदने पर समूचे-के-समूचे मकान मिलते है। एक टीले पर एक मकान अभी तक खड़ा है। मैंने उसे अन्दर जाकर देखा। उसके खम्भों पर बारहवीं और तेरहवीं सदी के अनेक शिला-लेख है।

एक शूकर क्षेत्र गोंडा जिले में सरयू और घाघरा के संगम पर है; कुछ चरित-लेखक उसी को तुलसीदास के गुरु का स्थान मानते है, पर प्राचीन शूकर क्षेत्र सोरों ही है, क्योंकि वही गंगा-तट पर है।

सोरों मे सनाढ्य ब्राह्मणों ही की बस्ती अधिक है। पर सनाढ्य वहाँ के मूल निवासी नहीं है, सब बाहर से आकर वहाँ बस गए है। वे अब तक अपने मूल स्थान का नाम अपने नाम के साथ रखते आ रहे है। जैसे बड़े गाँव से आने वाले बड़गैयाँ, लखनपुर से लखनपुरिया और राजोर से राजोरिया इत्यादि।

तुलसीदास के समय में सोरों मे गोसाइयों के मठ बहुत थे। वे सब शैव थे। केवल नरसिंहजी वैष्णव थे। सनाढ्यों में ब्राह्मण भी सिंह शब्द अपने नाम के साथ लगाते है। जैसे, हिन्दी वालों के सुपरिचित पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय सनाढ्य थे। कहा जाता है कि नरसिंहजी स्मार्त वैष्णव थे और अच्छे विद्वान् थे।

सोरों में तुलसीदास के एक कुटुम्बी पंडित मुरारी शुक्ल है, जो इस समय मेहता लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन है।

अन्य प्रमाण

मै समझता हूँ, तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरो प्रमाणित करने के लिए ये प्रमाण कमज़ोर नहीं है। इनके सिवा तुलसीदास के ग्रन्थों मे भी हम सोरों की झलक पा सकते है।

तुलसीदास ने 'कवितावली', 'गीतावली', 'दोहावली' और 'विनय-पत्रिका' में बहुत से ऐसे शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया है, जो सोरों मे आम तौर

से प्रचलित हैं, पर राजापुर और तारी में वे उस अर्थ मे प्रचलित नहीं है। जैसे :

तायो -

स्रवन नयन मन मग लगे सब थलपनि **तायो**।

(विनय-पत्रिका)

'तायो' का अर्थ है, जाँचा। यह सोरों मे अब भी बोल-चाल मे आता पर राजापुर मे तोपने, ढँकने या गरम करने के अर्थ में व्यवहृत होता है।

ओर को—

हौ तो बिगरायल **ओर को**।

(विनय-पत्रिका)

'ओर को' का अर्थ सोरों मे है, अन्त का। पर राजापुर और उसके आस-पास 'ओर' का अर्थ है, 'आदि'। जैसे, ओर-छोर।

चकडोरि—

खेलत अवध खोरि, **गोली भँवरा चकडोरि**।

(गीतावली)

ब्रज और उसके आस-पास के जिलों मे भौरा और चकडोरी खेलने का रिवाज बहुत है। लड़के बाज़ी लगाकर यह खेल खेलते है। पर अयोध्या, बनारस और राजापुर में इस खेल का प्रचार शायद ही है। सोरों मे इसका बड़ा प्रचार है। इससे तो और भी प्रमाणित होता है कि तुलसीदास का जन्म ऐसे स्थान में हुआ था, जहाँ भौरा और चकडोरी खेलने का बड़ा रिवाज था।

सोरों मे प्रचलित एक और शब्द भी तुलसीदास को सोरों ही का प्रमाणित करता है। वह है, 'कुटिल कीट' :

तनु जनेउ **कुटिल कीट** ज्यो तज्यो मातु पिताहू।

सोरों मे केकड़े की जाति का एक कीट होता है, जिसे वहाँ लोग कुटीला कहते है। उसकी यह विशेषता है कि वह माँ के पेट को फाड़कर निकलता है। उसके जन्म लेते ही उसकी माँ मर जाती है। ठीक ऐसी घटना तुलसीदास के सम्बन्ध मे भी हुई जान पड़ती है। उनके जन्म के समय ही उनकी माता का देहान्त हो गया होगा।

तुलसीदास की कविता का अनुशीलन सोरो मे बैठकर करने से ऐसे और बहुत से शब्द उसमे मिलेगे, जो तुलसीदास को सोरो ही का बतायँगे।

तुलसीदास ने ब्रजभाषा और अवधी-मिश्रित भाषा मे सफलता के साथ

रचना की है, यह भी उनके ब्रज और अवध की सरहद पर होने का प्रबल प्रमाण है :

तुलसीदास का एक अन्य प्रयोग भी हमारा ध्यान सोरों की ओर खींचता है :

स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक औचट उलटि न हेरो ।

(विनय-पत्रिका)

अर्थात् स्वार्थ के साथियो ने तिजरा के टोटके की तरह मुझे छोड़ दिया, उन्होंने एक बार लौटकर देखा भी नहीं ।

'विनय-पत्रिका' के टीकाकारों ने तिजरा का अर्थ तिजारी (ज्वर) किया है । पर सोरों मे तिजरा पसली चलने के रोग को कहते हैं । इस रोग मे आटे का एक पुतला बनाकर, चौराहे पर डालकर, लोग चले जाते हैं और फिरकर उसे नहीं देखते ।

सोरों ब्रज, राजपूताना, पंजाब, काठियावाड़ और गुजरात-निवासियों का मुख्य तीर्थ-स्थान है । उन प्रान्तों के लोग गङ्गाजी मे अपने मृतकों की अस्थियाँ डालने के लिए सोरो में लाते हैं । वहाँ हर साल एक बड़ा मेला लगता है, जिसमे उपर्युक्त प्रान्तो ही के लोग अधिक संख्या मे एकत्र होते हैं । इससे सोरों की बोल-चाल में उपर्युक्त प्रान्तों के बहुत-से शब्द स्वभावतः भर गए हैं । तुलसीदास के काव्यों में उन शब्दो का हम ऐसा स्वाभाविक प्रयोग पाते हैं, जैसे वे तुलसीदास के अत्यन्त परिचित शब्द थे, और उन्होंने जान-बूझकर अपनी बहुज्ञता दिखलाने के लिए उन्हें वहाँ नहीं बैठा दिया था । उदाहरण लीजिये :

माय जायो—

तोसे माय जायो को ।

(विनय-पत्रिका)

'तेरे-जैसा माँ से उत्पन्न और कौन है ?'

यह शब्द ब्रज और मारवाड़ में आम तौर से प्रचलित है । पर राजापुर में यह इसी रूप में नही बोला जाता ।

मींजो—

मींजो गुरु पीठ ।

(विनय-पत्रिका)

'गुरु ने पीठ पर हाथ फेरा ।'

मींजो का अर्थ हाथ फेरना सोरों और उसके आस-पास ही प्रचलित है,

अवध या राजापुर मे नही।

मैन—

मैन के दसन कुलिम के मोदक।

(श्रीकृष्ण-गीतावली)

मैन (मैण) मारवाड़ी बोली में मोम को कहते हैं।

मोखे—

नयन बीस मन्दिर के मोखे।

(गीतावली)

'बीस नेत्र घर के झरोखे (गवाक्ष) की तरह'। मोखा शब्द मारवाड़ में व्यवहृत होता है।

माठ—

पिघले है आँच माठ मानो घिय के।

(गीतावली)

माठ मारवाड़ी शब्द है और घड़े के अर्थ में व्यवहृत होता है।

मौंगी—

मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।

(गीतावली)

मौंगी का अर्थ है चुप। यह ठेठ गुजराती शब्द है।

मूकी—

मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।

मूकी शब्द ठेठ गुजराती है और छोड़ने के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

बियो—

कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है।

(कवितावली)

बियो गुजराती बीजा शब्द का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है, दूसरा।

म्हाको—

मन्दमति कत सुन मन्त म्हाको।

(कवितावली)

म्हाको मारवाड़ी शब्द है, जिसका अर्थ है, मेरा या मुझको।

दारू—

काल तोपचीं तुपक महि, दारू अनय कराल।

(दोहावली)

दारू मारवाड़ी में बारूद को कहते हैं।

नारि, नार—

जियत न नाई नारि, चातक घन तजि दूसरहि।

(दोहावली)

नाड़ शब्द मारवाड़ी है, जिसका अर्थ है, गरदन। नार या नारि नाड़ का अपभ्रंश है।

इसी प्रकार के और भी बहुत से शब्द आये हैं, जो सोरों और उसके पश्चिमी प्रांतों के हैं। इन शब्दों को तुलसीदास ने जान-बूझकर पूर्वी हिन्दी में रख लिया है, इसका कोई कारण नहीं जान पड़ता। बल्कि यह अधिक युक्ति-संगत जान पड़ता है कि ये उनके घरू शब्द थे, जो उनकी विचार-धारा में आप-से-आप निकल पड़े थे।

तुलसीदास ने अपनी कविता में अरबी-फारसी के शब्दों का भी मनमाना प्रयोग किया है। यह भी उनके पश्चिम-प्रान्त-निवासी होने का प्रमाण माना जा सकता है। सोरों और उसके आस-पास के जिलों में मुसलमानों की बस्तियाँ बहुत हैं। इसी से अरबी-आरसी के जितने शब्द पश्चिमी हिन्दी में मिलते हैं, उतने पूर्वी हिन्दी में नहीं। तुलसीदास तत्कालीन राज-भाषा जानते थे और अरबी-फारसी के बहुत से शब्द उनके घर में ऐसा घर कर गए थे कि उनके प्रयोग में उनको कुछ भी हिचकिचाहट नहीं थी। जैसे :

लागती साँग विभीषण ही पर सीपर आप भये हैं।

(गीतावली)

'सीपर' फारसी का 'सिपर' है, जिसका अर्थ है, ढाल। यह तो स्पष्ट ही है कि 'ही पर' (हृदय पर) का अनुप्रास मिलाने के लिए ही 'सीपर' आया है। पर आया है कितनी आसानी से, यह ध्यान देने की बात है। तुलसीदास न म्लेच्छों के हिमायती थे, न म्लेच्छ भाषा के प्रेमी। यदि 'सीपर' शब्द उनकी बोल-चाल में आम तौर से प्रचलित न होता, तो फारसी-कोष में से निकालकर वे इस शब्द को राम के साथ प्रयोग करने की चेष्टा हरगिज न करते।

एक शब्द और लीजिये :

भई आस सिथिल जगन्निवास दील की।

× × ×

मैं विभीषन की कछु न सबील की।

(कवितावली)

दिल (दील) और सबील शब्दों को देखिये, किस स्वाभाविक प्रवाह में

जड़ दिये गए है। राम के मुख से तुलसीदास-जैसे वैष्णव साधु का यह कहलाना कि 'मैंने विभीषण की कुछ सबील (प्रबन्ध) नहीं की', साधारण महत्त्व नहीं रखता। यदि 'सबील' और 'दिल' उनकी रोजमर्रा की बोल-चाल के शब्द न होते, तो मेरा विश्वास है, वे कम-से-कम राम के मुख मे तो उन्हें न जाने देते।

अब एक मुहावरा लीजिये :

वालिस वासी अवध को बूझिये न खाको।

(विनय-पत्रिका)

यह मुहावरा न संस्कृत का है, न हिन्दी का, यह तो साफ-साफ फारसी का है।

'रामचरितमानस' मे तो अरबी, फारसी शब्दों का एक ताँता-सा लगा हुआ है। जहान, गरीब नेवाज, बख़शीश, रुख, गरदन, ख्वार, शोर, गुमान, हवाले आदि शब्दों का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि वे पश्चिमी प्रान्त के निवासी थे, जहाँ अरबी-फारसी के शब्द हिन्दुओं के घरों मे निधड़क चलते थे। उनके साथ छुआछूत का विचार नहीं रखा जाता था। तुलसीदास की कविता मे अरबी-फारसी के कितने शब्द आए है, इस पर हम अलग विचार करेंगे। यहाँ केवल संकेत-मात्र कर दिया है।

अपने अनुमान को अधिक सबल करने के लिए यहाँ विरोधी पक्ष की इस बात पर भी हमे विचार कर लेना चाहिए कि तुलसीदास ने पूर्वी प्रान्तों में प्रचलित बहुत से घरेलू शब्दो और प्रथाओं का जिक्र भी तो किया है, फिर उन्हें पूर्वी ही प्रान्त मे उत्पन्न हुआ क्यों न मान लें। यह प्रश्न उपेक्षणीय नहीं है। पर यह तो स्पष्ट है कि उन्होंने पूर्वी हिन्दी मे 'रामचरितमानस' लिखा। वे जीवन के अन्त समय तक रहे भी इसी तरफ। अतएव इधर के घरेलू शब्द उनकी भाषा में आ गए, यह आश्चर्य की बात नहीं। पर अरबी-फारसी के शब्द उन्होंने पूर्वी हिन्दी से नहीं चुने, यह हम सन्देह-रहित होकर कह सकते हैं। क्योंकि यदि अरबी-फारसी के शब्द उसकी मातृभाषा द्वारा उनको न मिले होते तो वे कदापि म्लेच्छ शब्दों को देवताओं के पवित्र मुख में रखने की धृष्टता न करते। आजकल हिन्दी के कवि, जो भक्त नहीं है, बहुत अंशों मे उच्छृङ्खल ही है, अपनी रचना मे अरबी-फारसी के शब्दों को रखने मे भड़कते है। तुलसीदास तो भक्त थे और हिन्दू-संस्कृति के प्रबल समर्थक भी। अरबी-फारसी के शब्दों से उनकी भडक साधारण न होती।

अब हम 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' की ओर फिर मुड़ते है। 'वार्ता'

में तुलसीदास को नन्ददास का बड़ा भाई बताया गया है और नन्ददास को सनौड़िया ब्राह्मण। सनौड़िया सनाढ्य ही का अपभ्रंश हो सकता है। क्योंकि ब्राह्मणों की कोई जाति उक्त शब्द के निकट नहीं पहुँचती। अतएव तुलसीदास को भी सनाढ्य मानना पडेगा। 'वार्ता' मे नन्ददास रामपुर ग्राम के निवासी माने गए है। रामपुर सोरों के निकट एक गाँव था। नन्ददास के पिता का जन्म उसी गाँव मे हुआ था। वे किसी कारणवश वहाँ से उठकर सोरों के योगमार्ग मुहल्ले में आबाद हो गए थे।

तुलसीदास के जो चरित-लेखक राजापुर या तारी को तुलसीदास का जन्म-स्थान मानते है, उनको ऊपर के वर्णन पर एक बार विचार कर लेना चाहिए। अब भी राजापुर और उसके आस-पास के गाँवों में बहुत से वृद्ध ऐसे मिलते है, जो राजापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान नही मानते। वे कहते है कि तुलसीदास कुछ दिनों तक वहाँ आकर रहे थे। किसी विशेष स्थान पर जाकर कुछ दिनों तक रहना और वहीं जन्म-स्थान होना दोनों भिन्न बातें है। जनश्रुति यह भी है कि तुलसीदास गङ्गा पार करके ससुराल गये थे। राजापुर में गङ्गा नहीं है, जमुना है। और एक यह भी दलील विचारणीय है कि राजापुर से विरक्त होकर निकले हुए तुलसीदास फिर उसी गाँव में कैसे आकर रहे थे ? सोरों के पक्ष में यह बात अधिक जोरदार मालूम होती है कि सच्चे त्यागी की तरह एक बार सोरो छोड़ने के बाद तुलसीदास फिर वहाँ लौटकर नहीं गये। अतएव वह अवश्य ही उनका जन्म-स्थान रहा होगा।

काष्ठजिह्वा स्वामी तुलसीदास को, 'तुलसी परासर गोत दूबे पतिऔजा के' लिखा है। 'भक्त-कल्पद्रुम' में राजा प्रतापसिंह ने उनको कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखा है; ठाकुर शिवसिंह, पंडित रामगुलाम द्विवेदी, पंडित सुधाकर द्विवेदी और ग्रियर्सन साहब ने उनको सरयूपारीण ब्राह्मण लिखा है; पर ये सब सुनी-सुनाई बातों के आधार पर अवलम्बित है। 'वार्ता' की रचना उस समय की है, जब तुलसीदास जीवित थे, और उसमें नंददास से तुलसीदास की भेंट का वर्णन एक प्रत्यक्षदर्शी की तरह किया गया है। उसे मिथ्या क्या इसलिए मानना चाहिए कि तुलसीदास कान्यकुब्ज या सरवरियों की मंडली से निकल जायँगे और सनाढ्य हो जायँगे ?

यहाँ हमे 'वार्ता' की प्रामाणिकता पर थोड़ा और विचार कर लेना है। 'वार्ता' के गोकुलनाथजी द्वारा रचित होने के विरुद्ध एक यह दलील दी जाती है कि उसमें गोकुलनाथजी का भी हाल लिखा गया है। इससे उसे किसी अन्य

ने गोकुलनाथजी के बहुत पीछे लिखा होगा। पर गोकुलनाथजी भी तो एक गद्दी-धर थे; एक प्रमुख वैष्णव और दो सौ बावन शिष्यों मे थे; 'वार्ता' में उनका वर्णन तो आना ही चाहिए था। क्या एक वैष्णव-भक्त की हैसियत से अपना वर्णन वे स्वयं नहीं लिख सकते थे ? और क्या यह संभावना नहीं है कि शिष्टाचारवश अपना अंश उन्होंने स्वयं न लिखकर किसी अन्य से अपने सामने ही लिखा दिया हो ? 'मिश्र-बंधु-विनोद' मे मिश्र-बंधुओं ने अपना वर्णन स्वयं लिखा है। ऐसा ही गोकुलनाथजी भी तो कर सकते थे।

एक प्रश्न यह भी उठाया जाता है कि 'वार्ता' में 'सनौड़िया ब्राह्मण' वाला वाक्य नहीं है। पर अब किसी खास संस्करण मे न हो तो यह कैसे स्वीकार कर लिया जाय कि वह किसी भी संस्करण मे न होगा। 'रास-पंचाध्यायी' की भूमिका में स्व० बाबू राधाकृष्णदास ने नन्ददास का जो परिचय 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' से लेकर उसका हिन्दी-अनुवाद करके दिया है, उसका पहला वाक्य यह है :

'नन्ददास सनौड़िया ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई पूर्व देश के रहने वाले थे।'

इससे यह तो निश्चित ही है कि 'वार्ता' की जो प्रति स्व० बाबू राधाकृष्णदासजी के सामने थी, उसमें यह वाक्य था। मैंने एक गुजराती सज्जन द्वारा सम्पादित और बम्बई से प्रकाशित 'वार्ता' की एक ऐसी प्रति भी देखी है; जिसमें नन्ददास की वार्ता ही नहीं है। पर भूमिका में उसके सम्पादक ने लिख दिया है कि उन्होंने कुछ वार्ताएँ, जो उन्हे अनावश्यक जान पड़ीं, निकाल दी है। अतएव 'वार्ता' की जो प्राचीन-से-प्राचीन हस्तलिखित प्रति श्रीनाथद्वारा में और श्रीगट्टूलालजी के पुस्तकालय (बम्बई) में है, उसे ही प्रमाण मानना चाहिए।

अन्त मे मै निश्चित रूप से सोरों को, जिसका प्राचीन नाम शूकर क्षेत्र या वाराह क्षेत्र है और जो इस समय एटा जिले मे एक कस्बा और तीर्थ-स्थान है, तुलसीदास का जन्म-स्थान स्वीकार करता हूँ। साथ ही यह भी कि वे सनाढ्य ब्राह्मण थे और शुक्ल थे। सनाढ्यों मे शुक्ल, तिवारी आदि सभी आस्पद होते है।

अब यहाँ दो प्रश्न और उठ खड़े होते है।

१—क्या तुलसीदास नंददास के सगे भाई थे ? यदि थे, तो पहले प्रमाणित किया जा चुका है कि तुलसीदास की माता का तो उनके जन्मते ही देहान्त हो गया था, तब नन्ददास और चन्द्रहास किससे पैदा हुए थे ?

२—तुलसीदास के 'ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौ' का क्या अभिप्राय है ? वे अपनी जाति-पाँति छिपाते क्यों थे ?

इन प्रश्नों पर हमे गम्भीरता से विचार करना होगा। खेद है, यहाँ हमें अनुमान ही से काम लेना पड़ेगा। 'वार्ता' में सगा भाई होना नहीं लिखा है। चचेरा भाई भी भाई ही कहलाता है। संभव है, तुलसीदास नन्ददास के चचेरे भाई हों। दोनों के पिता पहले ही अलग हो चुके हों। तुलसीदास के माता-पिता सोरों मे पहले ही आकर बस गए हों और नन्ददास के माता-पिता रामपुर ही में रहते रहे हों। जब बचपन मे तुलसीदास अनाथ होकर घर-घर टुकड़े माँगकर जीवन चला रहे थे, तब उनको नरसिंहजी ने स्वजाति का बालक समझकर पाला-पोसा और पढाया-लिखाया। पीछ तुलसीदास विवाह करके गृहस्थ बने, तब नन्ददास के पिता भी सपरिवार ही सोरों में आ बसे होंगे।

'वार्ता' से मालूम होता है--

नंददास बड़े रसिया और गाने-बजाने के बड़े शौकीन थे। उन्होंने तुलसीदास से द्वारिका चलने को कहा। तुलसीदास नहीं गये; तब नंददास अकेले चले गये। पर फिर वे नहीं लौटे। मथुरा पहुँचकर वे एक क्षत्रिय की सुन्दरी बहू पर आसक्त हो गए। उसके पीछे वे ऐसे पड़े कि क्षत्रिय अपने परिवार-सहित चुपके से घर छोड़कर भाग निकला और गोकुल पहुँचा। नंददास उस बहू को एक बार देखे बिना अन्न-जल ही न ग्रहण करते थे। वे भी खोज लगाते हुए गोकुल पहुँचे। वहाँ गोसाईं बिट्ठलनाथ जी से उनका साक्षात्कार हुआ। उनके उपदेश से उन्होंने उक्त बहू का पिंड छोड़ा।

गोसाईं जी के दरबार में रात-दिन रस की वर्षा होती रहती थी। अतएव नंददास वहीं रम गए और फिर घर नहीं लौटे। गोसाईं जी की एक सेविका रूपमंजरी से उन्होंने मित्रता भी जोड़ ली थी। उसके नाम पर उन्होंने 'रूप-मंजरी' नामक एक पुस्तक भी रची है।

सोरों में यह प्रसिद्ध है कि नंददास एक बार कुछ धन कमाकर लौटे थे और उन्होंने रामपुर को हस्तगत किया और उसका नाम बदलकर श्यामपुर कर दिया। सोरों के निकटवर्ती गाँवों में 'नददास सुकुल कियो रामपुरसे श्यामपुर' की कहावत अब तक प्रचलित है।

नंददास के गृह त्यागने के बाद तुलसीदास ने गृह त्यागा था। इसका संकेत 'वार्ता' में भी मिलता है।

मेरा अनुमान है कि तुलसीदास नंददास के चचेरे भाई थे।

दूसरे प्रश्न के उत्तर मे भी अनुमान ही से काम लेना पड़ेगा। यदि तुलसीदास कान्यकुब्ज या सरवरिया ब्राह्मण होते, तो उनको जाति बताने में कोई खटका ही नहीं था। क्योंकि इन नामों से काशी के लोग परिचित थे। वे थे सनाढ्य। पूर्वी प्रान्तों में सनाढ्यों की बस्ती आजकल भी कम है। पहले तो बिलकुल ही न रही होगी। सनाढ्यों मे विद्वानों की सख्या अब भी बहुत कम है। इससे काशी के लोग विश्वास ही न करते होंगे कि सनाढ्य भी कोई ब्राह्मण होते हैं।

तुलसीदास को वे अब्राह्मण, रजपूत, धूत, अवधूत आदि कहकर चिढ़ाया करते थे। उसी पर झुँझलाकर तुलसीदास कहते थे—मुझे ब्याह-बरेखी तो करना नहीं है; किसी की बेटी से बेटा ब्याहना नहीं है, न किसी की जाति बिगाड़नी है। फिर मेरी जाति-पाँति के पीछे क्यों पड़े हो? यह उनका तत्सामयिक उत्तर था। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि उनका विवाह ही नहीं हुआ था और न उनकी कोई जाति-पाँति थी।

सनाढ्यों में खान-पान का वैसा बन्धन भी नही होता, जैसा कान्यकुब्जो या सरवरियों मे होता है। और लड़कपन मे तुलसीदास सब जातियों के टुकड़े खा भी चुके थे। वे कभी मसजिद में भी सो चुके थे; इससे उनके हृदय से खान-पान और जाति-पाँति की भावना उड़ ही गई थी। काशी वालों-जैसे खान-पान-सम्बन्धी आचार-विचार उनके न रहे होंगे। पर लोगों के ताने और आक्षेप सुनकर वे कुढ़ते अवश्य थे।

यहीं पर यह बात भी हमें हल कर लेनी चाहिए कि तुलसीदास ने 'कवितावली' मे जो यह लिखा है:

जायो कुल मगन बधावनो वजायो
सुनि पाप परिताप भयो जननी जनक को।

इसका अभिप्राय क्या है? इसमे आये हुए 'पाप' शब्द से कुछ लोग तर्क करते हैं कि संभवतः वे पाप की संतान थे। यद्यपि यह बात एक साधारण बुद्धि वाला भी समझ सकता है कि पाप की संतान को जन्म देने का लांछन केवल माता पर लग सकता है, पिता तो इस विषय मे प्रायः अनभिज्ञ ही रहता है। अतएव उसे परिताप क्यो होगा? मंगन कुल मे जन्म लेने की बात पर तो यह अनुमान किया जा सकता है कि वे भिक्षुक ब्राह्मण के कुल मे जन्मे थे। पर उनके जन्म से उनके माता-पिता को पाप और परिताप क्यो हुआ? कुछ चरित-लेखकों ने इस पर यह विचार दौड़ाया है कि वे अभुक्त मूल में पैदा हुए थे, इससे उनके माता-पिता को दुःख हुआ और वे यह भी कहते हैं कि

इस कारण से माता-पिता ने उन्हें छोड़ दिया। पहले तो अभी यही निश्चित नहीं कि वे १५८३ मे उत्पन्न हुए थे, या १५८६ मे ? वे चाहे जब पैदा हों, हर वक्त अभुक्त मूल ही उनके मत्थे क्यों पड़ेगा ? और यदि मान भी लिया जाय कि वे अभुक्त मूल में पैदा हुए थे, तो उनको छोड़ देने का क्या कारण था ? जो ज्योतिषी अभुक्त मूल बतायगा, वह उसका प्रायश्चित्त भी तो बतायगा। अभुक्त मूल मे तो कितने ही बच्चे पैदा होते रहते है, पर उनमें से कोई छोड़ नहीं दिया जाता। इससे अभुक्त मूल वाली कल्पना तो निस्सार ही जान पड़ती है।

तुलसीदास के उक्त कथन का अभिप्राय मै यह समझता हूँ कि तुलसीदास का जन्म लेना उनकी माता के लिए पाप-स्वरूप हुआ, क्योंकि यह उनके जन्मते ही मर गई। और स्त्री के वियोग तथा मातृहीन एक नवजात शिशु की प्राप्ति से उनके पिता को परिताप हुआ।

तुलसीदास का स्वभाव

कवि के स्वभाव का बहुत-कुछ प्रतिबिम्ब उसकी कृति में आ जाता है। तुलसीदास स्वभाव ही से कवि थे। जहाँ वे एक सूक्ष्मदर्शी, अनुभवी, विद्वान्, भक्त, निरभिमान और विनीत थे, वहाँ बड़े विनोद-प्रिय भी जान पड़ते है। इस कोटि के महापुरुषों मे विनोद की ऐसी मात्रा बहुत कम पाई जाती है, जैसी तुलसीदास मे थी। साधु-महात्मा प्रायः गम्भीर और उदासीन से रहते है, पर तुलसीदास को हम कभी हास-परिहास में पिछड़ा हुआ नहीं पाते। राम को छोड़कर उन्होंने शेष सब देवताओं के रूप-रंग, रहन-सहन का मज़ाक उड़ाया है। और 'बरवै रामायण' मे तो उन्होंने राम को भी नहीं छोड़ा। उनके साँवले रूप की चुटकी उन्होंने ले ही ली :

> गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह।
> देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह॥

ऋषि-मुनियों के प्रति उनमें काफी श्रद्धा होने पर भी उनके सम्बन्ध में उन्होंने एक ऐसा छंद लिखा है, जिसे पढ़कर उनके विनोदी स्वभाव पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। राम के वन आने का समाचार सुनकर वनवासी लोग बहुत सुखी हुए थे। उनमें विंध्य के वासी तपस्वी मुनि भी थे। पर उनकी प्रसन्नता का कारण क्या था ? वे इसलिए प्रसन्न नहीं हुए थे कि राम बड़े सुन्दर है, उनको आँख भरकर देखेंगे या वे राक्षसों को मारकर उन्हें निर्विघ्न करेंगे; बल्कि इसलिए कि राम के चरण लगने से पर्वत की सब शिलाएँ चन्द्रमुखी स्त्रियाँ हो जायँगी। वे बेचारे स्त्री-रहित थे ही, राम के आगमन से उनका यह

कष्ट दूर हो जायगा :

बिन्ध्य के बासी उदासी तपोब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे।।
ह्वैहैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे।।

अहल्या का उद्धार राम के चरण-स्पर्श से हुआ था। जब वह शिला से स्त्री हो गई, तब गौतम उसे लेकर जाने लगे। तुलसीदास से इस अवसर पर मज़ाक किये बिना रहा न गया। कह ही तो डाला :

गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।

'गौनो सो लिवाइ कै' पढ़ते ही देहाती दृश्य सामने आ जाता है।

शिव के पारषदों के रूप-रंग बेढंगे तो थे ही, देवताओं मे भी कुछ मूर्तियाँ ऐसी थीं, जिनको देखकर कौतूहल हो सकता था। जान पड़ता है, तुलसीदास बहुत समय से उनकी ताक में थे। अन्त में राम के विवाह के अवसर पर उन्होंने उनको एक साथ ही पकड़ लिया और उनकी शक्ल-सूरत को लेकर खासा विनोद किया।

ब्रह्मा के चार मुँह मे आठ आँखे थीं। राम के विवाह के अवसर पर वे आठों आँखों से राम के रूप-रस का पान कर रहे थे। पर उनका जी ललचा रहा था कि और अधिक आँखे क्यों न हुई :

निरखि राम छवि विधि हरखाने।
आठै नयन जानि पछिताने।।

स्वामि कार्तिक भी मौजूद थे। उनके छः मुख और बारह आँखे थीं। वे इसलिए प्रसन्न थे कि ब्रह्मा से ड्योढ़ा आनंद वे ले रहे थे। तुलसीदास की दृष्टि उन पर भी पड़ी :

सुरसेनप उर बहुत उछाहू।
विधि ते डेवढ सुलोचन लाहू।।

पास ही इन्द्र था। गौतम के शाप से पहले उसे हज़ार भग प्राप्त हुए थे, फिर उन्हीं स्थानो पर उसे नेत्र मिल गए थे। पहले तो अपने कलंक से वह बहुत लज्जित रहा करता था, पर उस दिन वह गौतम के शाप को अपने लिए बड़ा ही सुखदायक समझ रहा था :

रामहि चितव सुरेस सुजाना।
गौतम सापु परम हित जाना।।

अन्य देवता खड़े-खड़े ईर्ष्या से देख रहे थे और मन-ही-मन कह रहे थे

कि आज इन्द्र के समान कोई नहीं :

देव सकल सुरपतिहिं सिहाही।
आजु पुरन्दर सम कोउ नाही।।

विनोदी स्वभाव होने के अतिरिक्त तुलसीदास बड़े निर्भीक भी थे। सच्ची बात कहने में कभी वे संकोच नहीं करते थे। देवताओं से तो उनकी खास चिढ़-सी जान पड़ती है। उन्होंने उनके लिए कठोर-से-कठोर शब्द व्यवहृत किये हैं। अयोध्या-कांड में एक जगह उन्होंने लिखा है :

बिघन मनावहि देव कुचाली।

रावण के मर जाने पर देवता राम के पास खुशामद करने आए, तब तुलसीदास ने एक ही वाक्य में उनके स्वरूप का सारा भंडाफोड़ कर दिया :

आये देव परम स्वारथी।
बात करहिं जनु परमारथी।।

सुग्रीव और विभीषण ने यद्यपि राम की शरण ली थी, और तुलसीदास ने स्थान-स्थान पर उनकी भक्ति की प्रशंसा भी की है, पर वे दोनों भ्रातृ-द्रोही थे, उनके इस अपराध को तुलसीदास ने क्षमा नही किया। राम ने जब अयोध्या में आकर भरत से विभीषण और सुग्रीव की सराहना की, तब भरत उन्हें राम के समान प्रिय जानकर उठकर मिले। पर राम और भरत का प्रेम देख-कर दोनों भ्रातृ-द्रोही मन-ही-मन व्यथित हो उठे थे, यह तुलसीदास से छिपा न रहा :

राम सराहे, भरत उठि, मिले राम सम जानि।
तदपि विभीषन कीसपति, तुलसी गरत गलानि।।

(दोहावली)

जहाँ हम तुलसीदास के स्वभाव को साधु पुरुषों के अनेक सद्गुणों से भूषित पाते है, वहाँ उसमें हमें सहिष्णुता की भी काफी मात्रा विद्यमान मिलती है। 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में तुलसीदास ने दुष्टों की जो स्तुति की है, उसमें उनकी अपार मनोव्यथा सजीव हो उठी है। 'कवितावली' और 'विनय-पत्रिका' में भी बहुत से ऐसे छन्द मिलते हैं, जिनसे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि राम-कथा के साथ-साथ किसी या किन्हीं के साथ उनका रोज़ का रगड़ा भी चल रहा था :

मारग मारि महीसुर मारि कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
सकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो।

कासी में कटक जेते भये ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो ।
आजु कि कालिह परौ कि नरौ जड जाहिगे चाटि दिवारी को दीयो ।।
(कवितावली)

यह छन्द अवश्य ही किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके लिखा गया है ।

काशी में तुलसीदास के हृदय को अनेक आँधियों और तूफानों का सामना करना पड़ता था, फिर भी वे राम के प्रेम मे हिमालय के समान अचल रहते थे । जो आत्मानन्दी न होगा, सहिष्णुता जिसे सिद्ध न होगी, वह वैसी गम्भीर भावपूर्ण कविता नहीं रच सकता, जैसी तुलसीदास ने अपने अन्तिम दिनों मे 'विनय-पत्रिका' और 'कवितावली' मे रची है । वे छन्द अपने रचयिता के हृदय की विशालता और उसकी एकान्त चिन्ता के अनोखे साक्षी है ।

तुलसीदास का व्यक्तित्व

पहले मेरा अनुमान था कि 'रामचरितमानस' के कारण तुलसीदास की महिमा बड़ी होगी । पर उनके ग्रन्थों का अच्छी तरह अनुशीलन करने के उपरान्त मै इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि 'रामचरितमानस' रचने के पहले ही वे अपने व्यक्तित्व की विशेषता से बहुत सम्मान प्राप्त कर चुके थे । 'रामचरित-मानस' केवल उनके सम्मान को बढ़ाने मे सहायक हुआ है, निर्माण में नहीं । 'मानस' में वे स्वयं लिखते है :

नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवास ।
जो सुमिरत भये भाँग ते, तुलसी तुलसीदास ।।

इससे विदित होता है कि 'रामचरितमानस' की रचना के पहले तुलसीदास 'भाँग से तुलसी' बन चुके थे ।

इसी भाव की दो पंक्तियाँ वे 'बरवै रामायण' मे भी लिखते है :

केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास ।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास ।।

इसमें तो सन्देह नहीं है कि तुलसीदास ने सस्कृत-साहित्य का गम्भीर अनुशीलन किया था । वे वेद, उपनिषद्, दर्शन और पुराणों ही के पडित नहीं थे, नाटक, छन्दःशास्त्र, काव्य, इतिहास, ज्योतिष और अंकगणित के भी वे अच्छे ज्ञाता थे । मेरा तो विश्वास है कि वे अपने समय की राज-भाषा फ़ारसी से भी परिचित थे । उनकी कविता में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का बाहुल्य ही इसका प्रमाण है । अनुपम विद्वत्ता के साथ-साथ उनकी अद्भुत कवित्व-शक्ति ने सोने में सुगन्ध का रूप धारण कर लिया था । राम नाम के प्रभाव से विद्वत्ता और भी चमक उठी थी । 'रामचरितमानस' मे जितने प्रकार के

मनोभावों का चित्रण उन्होंने किया है, वे सब केवल कवि-कल्पना नहीं है, उनमे बहुत से उनके अनुभूत भी है। गुणों और दोषो से भरे हुए एक विस्तृत जगत् का अच्छा अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् ही वे 'मानस' की रचना मे प्रवृत्त हुए थे। उनकी प्रसिद्धि मे चाहे उनके अलौकिक चमत्कार अथवा चमत्कारों की रचना करके उनका प्रचार करने वाले उनके चतुर श्रद्धालु ही कारण क्यों न हुए हो, पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वे स्वय एक चमत्कारी पुरुष थे और उनका व्यक्तित्व दैवी चमत्कारो से नहीं, स्वतन्त्र रूप से सम्मान का पात्र था।

तुलसीदास का जन्म-संवत्

तुलसीदास के जन्म-संवत् का यदि कहीं कोई लिखित प्रमाण है, तो वह शिवसिंह सेंगर के 'सरोज' में है। शिवसिंह ने तुलसीदास का जन्म सं० १५८३ मे माना है। सुनी-सुनाई बातों के आधार पर या तुक भिड़ाकर कि कितने दिनों मे उन्होंने विद्या पढ़ी होगी, कितने दिनों तक वे गृहस्थी में रहे होंगे और कम-से-कम किस आयु में उन्होंने 'रामचरितमानस' लिखना प्रारम्भ किया होगा, तुलसीदास का जन्म-सवत् स्थिर करना एक दिमाग़ी कसरत है। शिवसिंह सेंगर ने आज से ७०–८० वर्ष पहले जो-कुछ सुना था, उसे तो आज की अपेक्षा सत्य के कुछ अधिक निकट ही मानना होगा। पर पडित रामगुलाम द्विवेदी, पं० सुधाकर द्विवेदी और ग्रियर्सन साहब तुलसीदास का जन्म-सं० १५८९ मानते है। मै भी यही माने लेता हूँ। सं० १५८३ और १५८९ मे केवल छः ही वर्षो का अन्तर है।

'मानस-मयङ्क' के रचयिता पंडित शिवलाल पाठक ने तुलसीदास का जन्म-सं० १५५४ माना है :

मन ऊपर सर जानिये, सर पर दीन्हे एक।
तुलसी प्रकटे रामवत, राम जनम की टेक ॥

इसे सच मानने से यह संभव नहीं मालूम होता कि तुलसीदास ने ७७ वर्ष की आयु में 'रामचरितमानस' प्रारम्भ किया था।

तुलसीदास की गुरु-परम्परा

'रामचरितमानस' के प्रारम्भ मे तुलसीदास ने जो गुरु-वन्दना की है, उसमें आये हुए 'कृपासिंधु नर रूप हरि' ने उनके चरित्र-लेखकों को बड़े विचार में डाल दिया है। 'नर हरि' के लिए कोई नरहर्यानन्द या नरहरिदास खोज निकाले गए है, जो श्रीरामानन्दजी के बारह शिष्यों में कहे जाते है। प्रमाण के लिए ग्रियर्सन साहब को पटना में मिली हुई वैष्णव-सम्प्रदाय की एक सूची

पेश की जाती है, जो इस प्रकार है :

१ श्रीमन्नारायण ।
२ श्रीलक्ष्मी ।
३ श्रीधर मुनि ।
४ श्रीसेनापति मुनि ।
५ श्रीकारिसूनु मुनि ।
६ श्रीसैन्यनाथ मुनि ।
७ श्रीनाथ मुनि ।
८ श्रीपुण्डरीक ।
९ श्रीराम मिश्र ।
१० श्रीपारांकुश ।
११ श्रीयामुनाचार्य ।
१२ श्रीरामानुज स्वामी ।
१३ श्रीशठकोपाचार्य ।
१४ श्रीकूरेशाचार्य ।
१५ श्रीलोकाचार्य ।
१६ श्रीपराशराचार्य ।
१७ श्रीवाकाचार्य ।
१८ श्रीलोकाचार्य ।
१९ श्रीदेवाधिपाचार्य ।
२० श्रीसैलेशाचार्य ।
२१ श्रीपुरुषोत्तमाचार्य ।
२२ श्रीगंगाधरानन्द ।
२३ श्रीरामेश्वरानन्द ।
२४ श्रीद्वारानन्द ।
२५ श्रीदेवानन्द ।
२६ श्रीशामानन्द ।
२७ श्रीश्रुतानन्द ।
२८ श्रीनित्यानन्द ।
२९ श्रीपूर्णानन्द ।
३० श्रीहर्यानन्द ।
३१ श्रीश्रयानन्द ।
३२ श्रीहरिवर्यानन्द ।
३३ श्रीराघवानन्द ।
३४ श्रीरामानन्द ।
३५ श्रीसुरसुरानन्द ।
३६ श्रीमाधवानन्द ।
३७ श्रीगरीबानन्द ।
३८ श्रीलक्ष्मीदासजी ।
३९ श्रीगोपालदासजी ।
४० श्रीनरहरिदासजी ।

४१ श्रीतुलसीदासजी ।

पर तुलसीदास के ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक पढ़ने के उपरान्त यही धारणा दृढ़ होती है कि वे एक स्मार्त वैष्णव थे, श्रीरामानुज या रामानन्द के सम्प्रदाय के शिष्य नहीं थे। यदि वे किसी रामानन्दी साधु के शिष्य होते,तो 'रामचरित-मानस' के प्रारम्भ में वे पहले-पहल वाणी और विनायक की स्तुति न करते। वे कहीं-न-कहीं स्वामी रामानुज या रामानन्द की प्रार्थना अवश्य करते।

इसके सिवा वे स्मार्तों ही की रामनवमी भी मनाते थे। 'मानस' का प्रारम्भ उन्होंने सम्वत् १६३१ में मधुमास की नवमी को किया था, जो सोमवार को पड़ी थी। ज्योतिष की गणना से यह नवमी बुधवार को पड़ती

है। पर स्मार्तों और वैष्णवों की रामनवमियों में अन्तर होता है। स्मार्तों की रामनवमी उस दिन मानी जाती है, जिस दिन मध्याह्न मे भी नवमी की तिथि रहती है। किन्तु वैष्णव उस नवमी को ठीक मानते है, जो मध्याह्न के पूर्व ही समाप्त हुई रहती है। इस नियम के अनुसार वैष्णवों की रामनवमी १६३१ मे बुधवार को पड़ी थी। तुलसीदास रामानन्दी वैष्णव होते, तो कभी मंगलवार की रामनवमी न मानते।

वास्तव में तुलसीदास के शिक्षा और दीक्षा दोनों के गुरु सोरों-निवासी नरसिंहजी थे, जो स्मार्त वैष्णव थे। उनका स्थान अब भी सोरों में है और वहाँ उनके वंशज भी विद्यमान है, जो चौधरी कहलाते हैं।

तुलसीदास की लिपि

तुलसीदास कैसे अक्षर लिखते थे ? यह जानने की उत्कंठा प्रत्येक साक्षर व्यक्ति मे होनी स्वाभाविक है। पर अभी तक एक भी ऐसा लेख कहीं नही मिला, जो निश्चित रूप से तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ कहा जा सके। अब तक राजापुर वाले 'रामचरितमानस' के अयोध्या-कांड को लोग तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ मानते थे। पर जाँच करने पर यह बात गलत प्रमाणित हुई है। इस सम्बन्ध मे हमने अलग अपने विचार प्रमाण-सहित लिखे है। वहाँ देखिये।

दूसरा एक पंचनामा है, जिस पर तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई छः पंक्तियाँ कही जाती है। यह पंचनामा तुलसीदास के एक मित्र टोडरमल के पुत्र और पौत्र के बीच जायदाद के बँटवारे के लिए लिखा गया था। टोडरमल और तुलसीदास की मित्रता का वर्णन दन्तकथाओं में दिया गया है। इससे यहाँ उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इस पंचनामे के विषय में श्री श्यामसुन्दरदास और बड़थ्वाल लिखते है :

"यह पंचनामा ग्यारह पीढ़ी तक टोडरमल के वंश मे रहा। ११वीं पीढ़ी मे पृथ्वीपालसिंह ने इसे काशिराज को दे दिया। अब भी यह काशिराज के यहाँ अच्छी तरह सुरक्षित है।"

मैंने स्वयं असली पंचनामे को नहीं देखा है। उसका छपा हुआ फोटो ही हमें प्राप्त है, जिसके साथ उसमें वर्णित विषय की नकल यहाँ दी जाती है :

पंचनामे की प्रतिलिपि

श्री जानकीवल्लभो विजयते

द्विश्शर नाभिसधत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान् ॥
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नैव भाषते ॥ १ ॥

तुलसी जान्या दशरथहि धरमु न सत्य समान ।।
रामु तजो जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ।। १ ।।
धर्म्मो जयति नाधर्म्मस्सत्य जयति नानृतम् ।।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः ।। १ ।।

जो फारसी नहीं जानते, उनके लिए आगे का अंश हिन्दी अक्षरों मे दिया जाता है ।

अल्लाहो अकबर

चू अनन्दराम बिन टोडर बिन देओराय व कन्हई बिन रामभद्र बिन टोडर मज़कूर ।

दर हुजूर आमद: करार दादन्द कि दर मवाज़िए मतरूक: कि तफ़सीलि आ दर हिंदी मज़कूर अस्त बिल् मुनासफ बतराजीए जानिबैन करार दादेम व यक सद व पिजाह बिघा ज़मीन ज्याद. किस्मत मुनासिफ खुद ।

दर मौज़े भदैनी अनन्दराम मज़कूर व कन्हई बिन रामभद्र मजकूर तज-वीज नमूद. ।

बरी मानी राजीगश्त: अतराफ महीह शरई नमूदन्द बिनाबर आ मुहर करद. शुद ।

मुहर सादुल्लाह बिन ... ...

किस्मत अनन्दराम — किस्मत कन्हई

करिया करिया — करिया करिया

भदैनी दो हिस्स. लहरतारा दरोबिस्त — भदैनी सेह हिस्स. शिवपुर दरोबिस्त

करिया — करिया

नैपुरा हिस्सै टोडर तमाम — नदेसर हिस्सै टोडर तमाम

करिया

चित्तूपुरा खुर्द हिस्सै टोडर तमाम — अन्हरुल्ला (मशकूक)

श्री परमेश्वर

सवत् १६६९ समय कुआर सुदि तेरसी वार शुभ दीने लिषीत पत्र अनन्दराम तथा कन्हई के अश विभाग पुर्वमु आगे जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य भै शे प्रमान माना दुनहु जने विदित तफसीलु अश टोडर मलु के माह जे विभाग बदुहोत रा

अंश अनंदराम	अंथ कन्धई
मौजे भदेनी मह अश पाँच तेहि मह अश दुइ	मोजे भदैनी मह अश पाँच तेहि मह तीनि अश
अनन्दराम, तथा लहरतारा सगरेउ तथा	कन्हई तथा मौजे शिपुरा तथा नदेसरी अश
छितुपुरा अश टोडर मलु के तथा नय-पुरा अश	टोडर मलु क हील हुज्जती नास्ती
टोडर मलु क हील हुज्जती नाश्ती	लीषीत कन्हई जे ऊपर लिषा से सही।
लिखीत अनन्दराम जे ऊपर लिखा से सही।	साछी रामसिह उद्धव सुत
साछी रायराम रामदत्त सुत	साछी जादो राय गहर राय सुत
साछी रामसनी उद्धव सुत	साछी जगदाश राय महोदधी सुत
साछी उदेयकरन जगतराय सुत	साछी चक्र पानी शिवा सुत
साछी जमुनी भान परमानन्द सुत	साछी मथुरा पीठा सुत
साछी जानकी राम श्रीकान्त सुत	साछी काशीदास वासुदेव सुत दसखत मथुरा
साछी कवलराम वासुदेव सुत	साछी खरगभान गोसाईदास सुत
साछी चन्द्रभान केसौदास सुत	साछी रामदेव बीसभर सुत
साछी पाडे हरीबलभ पुरुषोतम सुत	साछी श्रीकान्त पाडे राजचक्र सुत
साछी भावश्रो केसौउदास सुत	साछी विठ्ठलदास हरिहर सुत
साछी जदुराम नरहरि सुत	साछी हीरा दसरथ सुत
साछी अयोध्या लछी सुत	साछी लोहग कीस्ना सुत
साछी सबल भीष्म सुत	साछी नजराम शीतल सुत
साछी रामचन्द्र वासुदीव सुत	साछी कृष्णदत्त भगवन् सुत
साछी पितम्बरदास वधीपूरन सुत	साछी बिनराबन जय सुत
साछी रामराय गरीबराय मकटूरीकरन सुत	साछी धनीरान यधुराय सुत
(शहीद ब माफिह जलाल मकबूली बखतही)	(शहीद ब माफिहताहिर इबन् खाजे दौलते कानूनगोय)

सम्पूर्ण 'पंचनामा' तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ नहीं है। सिर्फ ऊपर की छः पक्तियाँ ही, जिनके ऊपर नीचे दो श्लोक और बीच में एक दोहा है, तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ अनुमान किया जाता है। अनुमान मे

इसलिए कहता हूँ कि 'पंचनामे' मे तुलसीदास का हस्ताक्षर नहीं। वे जब जायदाद का झगड़ा निपटाने के वक्त मौजूद थे और कहा जाता है कि उन्होने पञ्चायत भी की थी, तब पञ्चनामे मे साक्षी-रूप से उनका नाम तो आ ही सकता था। संभव है, किसी गूढ कारण से वे साक्षी न बनाये गए हों। फारसी में जो इबारत है, उसमे भी यह जिक्र नहीं है कि तुलसीदास की मौजूदगी मे वह निपटारा हुआ था।

ऊपर की जो छः पंक्तियाँ है, उनमे बीच का जो दोहा है, वह तुलसीदास का है, इसमें तो कोई संदेह नही है। और केवल उसी दोहे के कारण यह मानने को विवश होना पड़ता है कि यदि तुलसीदास ने वे छ. पक्तियाँ न लिखी होती, तो किसी अन्य लेखक को तुलसीदास का उक्त दोहा वहाँ लिखने की आवश्यकता क्या थी ? अतएव पञ्चनामे के ऊपर की पक्तियाँ तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई स्वीकार करने मे कोई बाधा नही दिखाई पड़ती।

काशी के सरस्वती-भवन मे 'वाल्मीकि रामायण' के उत्तरकाड की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। उसके अन्त मे उसके लिखे जाने का समय और लेखक का नाम इस प्रकार दिया हुआ है :

समाप्त चेद महाकाव्य श्रीरामायणमिति ।। सवत् १६४१ समये मार्ग सुदि रवौ लि० तुलसीदासेन ।।

इससे तो केवल इतना ही ज्ञात होता है कि तुलसीदास नाम के किसी व्यक्ति ने इसे लिखा था। वह और 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास दोनों एक है, इसका क्या प्रमाण है ? और 'लि० तुलसीदासेन' के आगे दूसरी कलम से एक और श्लोक लिखा मिलता है, जिससे लेखक का नाम दत्तात्रेय दानाध्यक्ष निकलता है। श्लोक यह है :

श्रीमद्देदिलशाहभूमिपसभासभ्येन्द्रभूमीसुर—
श्रेणीमडनमडलीधुरि दयादानादिभाजिप्रभु. ।
वाल्मीके. कृतिमुत्तमा पुररिपो. पुर्या पुरोग. कृती ।
दत्तात्रेयसमाह्वयो लिपिकृते. कर्मत्वमाचीकरन् ।। १ ।।

इसके अक्षर इस बात के स्वयं साक्षी है कि यह श्लोक किसी ने बाद मे रचकर लिख दिया है। जिस कलम से सारा उत्तरकाण्ड लिखा हुआ है, उसी कलम से 'लि० तुलसीदासेन' भी है। अतएव वहाँ तक तो तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ माना ही जायगा।

पंचनामे के अक्षर और इस उत्तर काण्ड के अक्षर मिलते है। दोनो की लिखावट एक ही व्यक्ति के हाथ की जान पड़ती है। अन्तर इतना ही है कि

उत्तरकाण्ड जमकर लिखा गया है, जिससे अक्षर अधिक सुन्दर है, और पंचनामा जल्दी मे लिखा गया है, जिससे उसके अक्षर बहुत सुन्दर नहीं बन सके। उत्तर-काण्ड की लिखावट देखकर यह मानना पड़ता है कि तुलसीदास बहुत सुन्दर अक्षर लिखते थे।

पंचनामे और उत्तरकाण्ड की लिखावट को तुलसीदास के हाथ की स्वीकार कर लेने पर राजापुर की प्रति का प्रश्न और भी आसानी से हल हो जाता है, क्योकि राजापुर की प्रति के अक्षर उक्त दोनों लिखावटों से बिलकुल भिन्न हैं। पंचनामे, उत्तरकाण्ड और राजापुर के अयोध्याकाण्ड की लिखावटों के फोटो से उनके अक्षर मिलाकर देखिये।

तुलसीदास का चित्र

इस समय तुलसीदास के दो मुख्य चित्र हमारे सामने है। एक चित्र खड्ग-विलास प्रेस, बॉकीपुर से प्रकाशित रामायण में दिया हुआ है, जिसके खोज निकालने का श्रेय ग्रियर्सन साहब को है। दूसरा चित्र काशी के प्रह्लाद-घाट-निवासी, श्रीयुत रणछोड़लाल व्यास के पास है, जिसे वे सं० १६५५ का बतलाते है। उसके आधार पर, उसीसे मिलते-जुलते अन्य कई चित्र तैयार हुए है, जिनके फोटो इस पुस्तक में दिये जा रहे हैं। पर किसी के लिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वास्तव में तुलसीदास का असली चित्र कौन सा है? खड्गविलास प्रेस वाले चित्र मे तुलसीदास का शरीर काफी मोटा-ताजा दिखलाया गया है, जो उनकी अधेड़ अवस्था का होगा। काशी के चित्र में तुलसीदास का शरीर रुग्ण-सा दिखता है। सं० १६५५ में उनके रुग्ण होने का कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है।

भारतवर्ष के प्राचीन चित्रों के एक विशेषज्ञ काशी-निवासी राय कृष्ण-दास जी तुलसीदास के चित्रों के सम्बन्ध में यह सम्मति रखते है:

"श्रीयुत रणछोड़लाल व्यास के पास जो चित्र है, वह सं० १६५५ का नहीं हो सकता, क्योंकि उसमे जो इमारत बनी है, उसकी शैली बहुत पीछे की है। वह उस शैली का है, जिसका प्रचलन मुहम्मदशाह के बाद हुआ है। किन्तु वह चित्र सम्भवतः तुलसीदास के किसी मूल चित्र पर अवलम्बित है; क्योंकि उसीसे मिलते-जुलते कई चित्र भिन्न-भिन्न संग्रहों मे मिलते है। उनमें एक तो प्रसिद्ध पुस्तक-संग्रहीता श्रीमयाशङ्कर याज्ञिक के पास है, और एक भारत-कला-भवन काशी में है। ये दोनों चित्र निश्चित रूप से प्राचीन हैं। अतएव तुलसी-दासजी के उस चित्र को वास्तविक मानना चाहिए। खड्गविलास प्रेस वाला चित्र अधेड़ अवस्था का होगा। उक्त चित्रों के देखने से यह जान पड़ता है कि

ये उसी व्यक्ति की वृद्धावस्था के है, जिसका यह अधेड़ अवस्था का है।

काशी के अस्सी घाट वाले तुलसीदास के स्थान में उनका जो दाढ़ी वाला चित्र है, वह एक आधुनिक चित्रकार की कृति है और सर्वथा कृत्रिम है।"

५

दन्त-कथाएँ

तुलसीदास का परिवार

तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलसी प्रसिद्ध है। 'हुलसी' उनकी माता का नाम था, इसके लिए कुछ प्रमाण भी देते है—

अकबर के प्रसिद्ध वजीर अब्दुर्रहीम खानखाना से तुलसीदास की मित्रता थी। एक बार एक गरीब ब्राह्मण की कन्या के विवाह मे कुछ सहायता देने के लिए तुलसीदास ने रहीम के पास यह आधा दोहा लिखकर उसी ब्राह्मण के हाथ भेजा :

सुरतिय नरतिय नागनिय, अस चाहत सब कोय।

रहीम ने ब्राह्मण को बहुत-कुछ धन देकर और दोहे की यह पूर्ति करके उसे तुलसीदास के पास वापस भेजा :

गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

लोगों की यह धारणा है कि यहाँ 'हुलसी' शब्द श्लेषार्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'हुलसी' का अर्थ 'प्रसन्न होकर' भी है।

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के कई स्थलों में इस शब्द का प्रयोग प्रसन्न होने ही के अर्थ मे किया है। जैसे :

सभुप्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी।

यहाँ 'हुलसी' शब्द 'उत्साहित हुई' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। पर मानस में एक स्थान पर यह शब्द कुछ भ्रम भी उत्पन्न करता है :

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय 'हुलसी' सी।

इस हुलसी' को लेकर 'माता' की कल्पना की जा रही है। पर जिस माता ने तुलसीदास को जन्मते ही छोड़ दिया, उसका कौन सा सुख स्मरण करके वे इतनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे है, यह विचारणीय चौपाई है। और चौपाई के पहले चरण से तो यह भाव टपकता है कि राम-कथा राम को पवित्र तुलसी की तरह प्रिय है। तुलसी जलन्धर दैत्य की स्त्री थी, जिसका पातिव्रत-धर्म

विष्णु ने नष्ट किया था। उसके समकक्ष हुलसी को तुलसीदास की माता क्यों माना जाय? उनकी स्त्री ने तो तुलसीदास को उपदेश भी दिया था, माता ने जन्म देने के सिवा और क्या किया था?

यह सब अर्थ की खींच-तान है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उनकी माता का नाम हुलसी था या क्या था?

सोरों में प्रसिद्ध है कि तुलसीदास की स्त्री का नाम रत्नावली और ससुर का दीनबन्धु पाठक था। रत्नावली से तुलसीदास को एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम तारक था। पर वह बचपन ही मे मर गया। तुलसीदास का विवाह अनुमान से पच्चीस वर्ष की अवस्था मे हुआ होगा। तुलसीदास के दो भाई और थे, जिनके नाम 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' मे आये है, जिसका उदाहरण इस पुस्तक में अलग दिया गया है।

गृह-त्याग

श्रावण का महीना था। तुलसीदास कहीं बाहर गये हुए थे। उनकी अनुपस्थिति मे रत्नावली अपने नैहर बदरिया गाँव को चली गई, जो सोरों से एक फर्लांग ही की दूरी पर गंगा के उस पार था। तुलसीदास घर आये, और अपनी स्त्री को घर मे न पाकर उसके वियोग से बहुत विकल हुए और बढ़ी हुई गंगा को वे आधी रात के समय तैरकर ससुराल पहुँचे। यकायक अनिमन्त्रित पति को आधी रात के समय घर मे देखकर स्त्री चकित हो गई और उसने व्यङ्गपूर्वक कहा:

> अस्थि चर्ममय देह मम, तामे जैमी प्रीति।
> तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भवभीति॥

स्त्री का यह व्यङ्ग-बाण तुलसीदास को करारा लगा। वे उसी वक्त घर से निकल पड़े और उनके प्रेम की जो धारा स्त्री के अस्थि-चर्ममय देह की ओर उमड़ रही थी, उसे उन्होंने सचमुच श्रीराम की ओर मोड़ लिया।

यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्री ने तुलसीदास को देखते ही दोहा बनाकर कहा या किसी ने पीछे से बना दिया, पर दोहे मे किसी हृदयवान के हृदय को बेधने वाला भाव पर्याप्त मात्रा में था। तुलसीदास उसके शिकार हो गए।

यदि तुलसीदास का जन्म-सं० १५८९ ठीक माना जाय, तो घर छोड़ने का समय सं० १६२० के आस-पास होगा। क्योंकि विवाह के उपरान्त पाँच ही छः वर्ष बीते होंगे, जब उनके प्रेमोन्माद को ऐसा जोरदार धक्का लग सकता है।

श्रीरामदास गौड़ लिखते हैं कि काशी-नरेश के पुस्तकालय में गोस्वामीजी-रचित 'विन्ध्येश्वरी-पटल' नाम की एक पुस्तक है, जो सं० १६१५ की रचना है। उसमें ज्योतिष और तान्त्रिक विषय भी हैं। उससे मालूम होता है कि सं० १६१५ तक तुलसीदास के हृदय में राम-भक्ति का प्राबल्य नहीं था। उस समय वे पूर्ण विषयासक्त थे। यदि उसमे कुछ कमी होती, तो सहसा ऐसा परिवर्तन नहीं होता। एक बार घर छोड़ने के बाद तुलसीदास फिर कभी सोरों नहीं गये।

एक बार उनकी स्त्री ने तुलसीदास के पास यह दोहा लिख भेजा :

कटि की खीनी कनक सी, रहत मखिन सँग सोय।
मोहि फटे की डर नही, अनत कटे डर होय॥

इस पर तुलसीदास ने यह उत्तर लिख भेजा :

कटे एक रघुनाथ सँग, बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस॥

तुलसीदासजी-जैसे महाकवि की स्त्री भी कविता करती हों, यह असंभव नहीं। पर पति-पत्नी के मार्मिक प्रसंगों को रसिक-जनों ने भी सरस बनाया है, यह स्मरण रखना चाहिए।

कहा जाता है कि वृद्धावस्था मे एक बार वे भूलकर अपनी ससुराल पहुँच गए। उस समय उनकी स्त्री जीवित थी और बहुत ही वृद्धा हो गई थी। पहले तो दोनों मे से किसी ने भी एक-दूसरे को नहीं पहचाना। पर रात में भोजन कराने के समय स्त्री को सन्देह हुआ। सबेरे जब तुलसीदास जाने लगे, तब स्त्री ने अपना भेद प्रकट किया और अपने को भी साथ रखने के लिए कहा। तुलसीदास ने स्वीकार नहीं किया। तब स्त्री ने कहा :

खरिया खरी कपूर लौ, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलिकै, अचल करहु अनुराग॥

यह सुनते ही तुलसीदास ने अपने झोले की सब चीजें ब्राह्मणों को बाँट दीं और अपनी राह ली।

सम्भवतः सं० १६१६ या २० मे तुलसीदास घर से निकले थे। वे सीधे काशी गये और वहाँ से अयोध्या और अयोध्या से चित्रकूट गये। वे चित्रकूट और अयोध्या में प्रायः अधिक रहा करते थे। जब कभी काशी जाते, पंडित गंगाराम जोशी के यहाँ ठहरा करते थे। 'रामाज्ञा' में गंगाराम का नाम आया है :

सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमि सुर, गोगन गंगाराम॥

भृगु-आश्रम और ब्रह्मपुर की यात्रा

एक बार काशी से तुलसीदास ने भृगु-आश्रम (बलिया) की यात्रा की। रास्ते में हंसनगर और परसिया होते हुए वे गाय घाट के राजा गंभीरदेव के अतिथि हुए थे। वहाँ से गंगा पार करके ब्रह्मपुर (शाहाबाद) में ब्रह्मेश्वर महादेव के दर्शन करते हुए वे कांत नाम के गाँव मे आये।

कांत के लोग उन्हें बड़ी क्रूर प्रकृति के दिखाई पड़े। वहाँ उन्हें भोजन का कोई पदार्थ नहीं मिला। गाँव के बाहर मँगरू नाम का एक अहीर मिला, जो साधु-ब्राह्मणों का सत्कार किया करता था। वह तुलसीदास को बड़े अनुनय-विनय से अपने घर ले गया। उसने तुलसीदास को दूध दिया, जिससे उन्होंने खोवा बनाकर खाया। मँगरू की सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने उसकी इच्छा जाननी चाही, तब मँगरू ने कहा—भगवान् के चरणों में मेरा दृढ़ विश्वास हो और मेरा वंश बढ़े। तुलसीदास ने कहा—यदि तुम्हारे वंश के लोग चोरी न करेंगे और किसी को दुःख न देंगे, तो ऐसा ही होगा।

बलिया और शाहाबाद जिले मे मँगरू के वंश वाले अब तक वर्तमान है, जो चोरी नहीं करते, भक्त और साधु-सेवी है और अतिथि-सत्कार के लिए प्रसिद्ध है।

कांत से तुलसीदास बेलापतौत आये। वहाँ गोविन्द मिश्र शाकद्वीपीय ब्राह्मण और रघुनाथसिंह क्षत्रिय ने उन्हें बड़े सत्कार से ठहराया। तुलसीदास वहाँ कुछ समय तक ठहरे रहे। उस गाँव का नाम बदलकर उन्होंने रघुनाथपुर कर दिया। वह गाँव ब्रह्मपुर से कोस भर की दूरी पर है। वहाँ तुलसीदास का चौरा अब तक है।

वहाँ से तुलसीदास कैथी गाँव को गये, जो रघुनाथपुर के पास ही है। कैथी के मुखिया जोरावरसिंह ने उनका बड़ा सत्कार किया और वे उनके शिष्य भी हो गए।

वहाँ से घूमते-घामते तुलसीदास पुरुषोत्तपुरी गये और फिर काशी लौट आए।

काशी में उनके निवास-स्थान

यद्यपि तुलसीदास की कविता से विदित होता है कि उनको अयोध्या और चित्रकूट बहुत प्रिय थे, इससे वे वहाँ अधिक समय तक रहा करते होंगे; पर काशी में भी वे कम नहीं रहे। यद्यपि काशी मे उनको शारीरिक और मानसिक

दोनों प्रकार के कष्ट बहुत मिले, पर काशी के प्रति उनकी धार्मिक प्रेरणा इतनी प्रबल थी कि वे कष्ट-पर-कष्ट झेलते रहे और वहीं रहते रहे। अन्त में वहीं उनका देहावसान भी हुआ। काशी में वे पहले हनुमान फाटक पर आकर रहे। वहाँ से मुसलमानों के उपद्रव से तंग आकर वे गोपाल-मन्दिर में चले आए। वहाँ भी वल्लभ-कुल वाले गोसाइयों से उनका विरोध हुआ, तब वे वहाँ से उठकर अस्सी पर रहने लगे।

काशी में साधारणतः उनके रहने के चार स्थान प्रसिद्ध हैं—

१. अस्सी—यहाँ तुलसीदास का घाट प्रसिद्ध है। यहाँ तुलसीदास के स्थापित किये हुए हनुमानजी हैं। उनके मन्दिर के बाहर बीसा-यंत्र खुदा है, जो पढ़ा नहीं जाता। यहाँ गोसाईंजी की एक गुफा भी है। इसी स्थान में तुलसीदास अन्त समय में रहे थे। यहाँ उन्होंने रामायण के अनुसार रामलीला प्रारम्भ की थी, जो अब तक होती है। अस्सी से दक्षिण जहाँ इस रामलीला की लंका थी, उस स्थान का नाम अब तक लंका है। यह रामलीला सबसे पुरानी है।

२. गोपाल-मन्दिर—यहाँ एक कोठरी है, जो तुलसीदास की बैठक कहलाती है। वह सदा बन्द रहती है और लोग उसके झरोखे से दर्शन करते हैं। केवल श्रावण सुदी ७ को वह वर्ष में एक दिन खुला करती है, तब लोग जाकर पूजा करते हैं। कहा जाता है कि उसमें बैठकर तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' का कुछ अंश लिखा था।

३. प्रह्लाद-घाट—यहाँ तुलसीदास पंडित गङ्गाराम जोशी के घर पर ठहरा करते थे।

४. संकट-मोचन—नगवा के पास अस्सी नाले पर तुलसीदास ने संकट-मोचन हनुमान की एक मूर्ति स्थापित की थी। प्रह्लाद-घाट वाले पंडित गङ्गाराम ने एक राजा से बहुत सा द्रव्य पाया था, उसमें से उन्होंने बारह हजार रुपये तुलसीदास को दिये थे। तुलसीदास ने उन रुपयों से हनुमानजी के बारह मन्दिर बनवाये। उनमें एक संकट-मोचन भी है।

प्रेत-मिलन

काशी में रहते हुए तुलसीदास शौच के लिए गङ्गा-पार जाया करते थे और लौटते समय शौच से बचा हुआ जल आम के एक वृक्ष की जड़ में डाल दिया करते थे। उस वृक्ष पर एक प्रेत रहता था। वह उस जल से तृप्त हुआ करता था। एक दिन वह प्रकट हुआ और उसने कहा—मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ; कुछ माँगो।

तुलसीदास ने कहा—मैं राम का दर्शन चाहता हूँ।

प्रेत ने कहा—यह मेरी शक्ति के बाहर की बात है। पर मैं तुमको एक बात बतलाता हूँ। काशी जी में अमुक स्थान पर रामायण की कथा होती है। उसे सुनने के लिए हनुमानजी एक कोढ़ी का वेश धरकर सबसे पहले आते हैं और सबसे पीछे जाते हैं। तुम उनके चरण पकड़ो, वे राम का दर्शन करा देंगे।

हनुमानजी से परिचय

प्रेत की सूचना के अनुसार तुलसीदास उक्त रामायण की कथा सुनने के लिए गए। कथा समाप्त होने पर जब सब चले गए, तब अन्त में वह कोढ़ी उठा। तुलसीदास ने तत्काल उसके चरण पकड़ लिए। उसने छुटकारे की बहुत कोशिश की, पर तुलसीदास ने उसे नहीं छोड़ा और अपना मनोरथ कहा। तब उसने कहा—जाओ, चित्रकूट में दर्शन हो जायँगे।

राम का दर्शन

काशी से तुलसीदास चित्रकूट गये और वहाँ राम के दर्शन की प्रतीक्षा करने लगे। एक दिन वे राम का स्मरण करते हुए बैठे थे। उसी समय दो अपूर्व सुन्दर राजकुमार मृग के पीछे घोड़ा दौड़ाते हुए उनके सामने से निकल गए। ध्यान में बाधा न पहुँचे, इस विचार से तुलसीदास ने उधर से दृष्टि हटाकर पृथ्वी की ओर कर ली और फिर वे ध्यानावस्थित हो गए। इतने में ब्राह्मण-वेश में हनुमानजी आये और उन्होंने पूछा—क्यों, राम-लक्ष्मण के दर्शन हुए ?

तुलसीदास चकित होकर बोले—नहीं।

हनुमानजी ने कहा—अभी तो तुम्हारे सामने से वे घोड़ों पर गये हैं।

तुलसीदास पछताकर रह गए। हनुमानजी ने कहा—कलियुग में इतने ही को तुम अपना अहोभाग्य समझो।

तुलसीदास ने उन युगल मूर्तियों को हृदय में रख लिया।

ग्रियर्सन साहब राम-दर्शन के एक और ही प्रसङ्ग का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

तुलसीदास चित्रकूट में घूम रहे थे। एक जगह उन्होंने रामलीला होती देखी। लङ्का-विजय, विभीषण का राज्याभिषेक और दल-बल-सहित राम के अयोध्या जाने की तैयारी का प्रसङ्ग था। लीला की समाप्ति पर तुलसीदास आगे चले, तो राह में ब्राह्मण के वेश में हनुमानजी मिले। तुलसीदास ने उनसे रामलीला की प्रशंसा की। हनुमानजी ने हँसकर कहा—तुम पागल हो गए

हो, भला, रामलीला का समय आजकल कहाँ है ? यह कहकर वह अन्तर्द्धान हो गए। तुलसीदास विस्मित होकर अपनी कुटी पर लौट आए और राम-स्मरण में निमग्न हो गए।

चित्रकूट में इस प्रकार की कोई घटना अवश्य घटी थी। 'विनय-पत्रिका' में भी इसका आभास मिलता है :

तुलसी तोको कृपालु, जो कियो कोसल पालु।
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ॥

(विनय-पत्रिका)

मृग के पीछे जाने वाले दोनों राजकुमारों को न पहचान पाने के दुःख को तुलसीदास ने इस पद में भी व्यक्त किया है :

लोचन रहे बैरी होय।
जान-बूझ अकाज कीनो गये भू मे सोय ॥
अविगत जु तेरी गति न जानी रह्यो जागत सोय।
सबै छवि की अवधि मे है निकसिगे ढिग होय ॥
करमहीन मै पाय हीरा दियो पल मे खोय।
दास तुलसी राम बिछुरे कहौ कैसी होय ॥

चित्रकूट में राम-दर्शन की एक कथा यह भी है—

एक दिन तुलसीदास चित्रकूट में रामघाट पर बैठे हुए राम के ध्यान में निमग्न थे। इतने मे एक सुन्दर पुरुष ने आकर कहा—बाबा, चन्दन दो। तुलसीदास चन्दन घिसने लगे। उसी समय तुलसीदास को सूचना देने के लिए हनुमानजी ने सुग्गे का रूप धरकर आकाश में उड़ते हुए यह दोहा पढ़ा :

चित्रकूट के घाट पर, भइ सतन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसे, तिलक देत रघुबीर ॥

यह सुनकर तुलसीदास रामचन्द्र की शोभा देखने लगे और देखते-देखते आनन्दमग्न होकर मूर्च्छित हो गए। रामचन्द्र स्वयं चन्दन लगाकर अन्तर्द्धान हो गए।

इस घटना के बाद तुलसीदास चित्रकूट से अयोध्या चले गए और कुछ दिनों तक अयोध्या में रहकर फिर काशी लौट आए।

राम का पहरा

काशी में जब तुलसीदास प्रह्लाद-घाट पर रहते थे, उस समय एक रात उनके घर में चोर घुसे। इस कथा को रेवेरेंड एड्विन ग्रीव्स ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिखा है। उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

"एक कथा से मैं प्रसन्न होता हूँ। इस कारण से कि कथा कैसी ही क्यो न हो, तो भी शिक्षा से भरी हुई है। लिखा है कि एक चोर चोरी करने गोसाई के घर गया। चोर ने देखा कि वहाँ एक मनुष्य रात भर पहरा देता रहा है। प्रातःकाल तुलसीदास के पास जाके उसने पूछा कि वह कौन श्यामकिशोर आपके यहाँ चौकी देता है ? यह बात :

मुनि करि मौन रहे आँसू डारि दिये ह ॥

उनको बोध हुआ और तुलसीदास ने समझ लिया कि रघुनाथ ने रात भर मेरे लिए चौकी दी और यह जानके कि धन-सम्पत्ति बटोरने से मैंने अपने स्वामी को इतना दुःख दिया कि वह रात भर पहरा देवे, उन्होंने अपना सब-कुछ कंगालों को बाँट दिया। यह बात अर्थात् ईश्वर अपने लोगो की रक्षा करते है, सोच-विचार करने योग्य है।"

टोडरमल के साथ मैत्री

काशी में टोडरमल नाम के एक भूमिहार जमीदार थे। उन्हे गोसाइयों न तलवार से काट डाला था। उनके पास पाँच गाँव थे—भदैनी, नदेसर, शिवपुर छीतपुर और लहरतारा। भदैनी अब काशिराज के पास है और उसी में अस्सी घाट है।

टोडरमल के वंशज अब तक अस्सी पर रहते है। वे प्रत्येक वर्ष श्रावण शुक्ला सप्तमी को तुलसीदास की पुण्य-तिथि पर सीधा (आटा) दिया करते है।

तब बल्लभ-कुल के गोसाइयो से जब तुलसीदास की अनबन हुई और उन्हे गोपाल-मन्दिर छोड़ना पड़ा, अस्सी पर एक मन्दिर बनवाकर टोडरमल उनको आग्रहपूर्वक उसमें ले आए थे। टोडरमल भी वैष्णव और राम के सच्चे स्नेही थे। इसी कारण से गोसाइयो ने तुलसीदास के साथ उनसे भी वैर बाँधा होगा। टोडरमल की मृत्यु पर तुलसीदास के रचे हुए चार दोहे मिलते है :

चार गाँव को ठाकुरो, मन को महा महीप।
तुलसी या कलिकाल मे, अथये टोडर दीप ॥१॥
तुलसी राम सनेह को, सिर धरि भारी भार।
टोडर काँधा ना दियो, सब कहि रहे उतार ॥२॥
तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुनगन बाग।
ये दोउ नैननि सीचिहौ, समुझि-समुझि अनुराग ॥३॥

रामधाम टोडर गये, तुलसी भये असोच ।
जियबो मीत पुनीत बिन, यही जानि सकोच ।।४।।

ये एक सच्चे वियोगी मित्र के दुःख से पूर्ण हृदय के उद्गार है, जो एक महाकवि की कलम से दोहे का रूप पा गए हैं। दूसरे दोहे से यह अर्थ निकलता है कि टोडर को राम की उपासना से हटाने का प्रयत्न किया गया था, पर वह सफल नही हुआ। सम्भव है, तुलसीदास का साथ छोड़ने को भी कहा गया हो और उन्होने अस्वीकार किया हो।

मधुसूदन सरस्वती से घनिष्ठता

तुलसीदास के समकालीन शंकर-मतानुयायी श्रीमधुसूदन सरस्वती काशी मे एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। उन दिनों 'रामचरितमानस' का आदर सर्व-साधारण में तो खूब था, पर भाषा में होने के कारण पंडित-समुदाय उससे विरक्त था। पंडितगण श्रीमधुसूदन सरस्वती की सम्मति जानना चाहते थे। श्रीमधुसूदन सरस्वती के साथ तुलसीदास का जब वाद-प्रतिवाद हुआ, तब उसका बड़ा ही उत्तम परिणाम हुआ और श्रीमधुसूदन सरस्वती ने तुलसीदास की प्रशंसा मे यह श्लोक लिखकर अपनी सम्मति दी :

आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरु. ।
कविता मञ्जरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता ।।

'भक्ति-विलास' मे पंडित महादेवप्रसाद ने यह श्लोक किसी अन्य पंडित का रचा हुआ बताया है, जो काशी मे दिग्विजय की इच्छा से आया था।

काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है :

तुलसी जंगम तरु लसै, आनँद कानन खेत ।
कविता जाकी मञ्जरी, राम भ्रमर रस लेत ।

नाभाजी से भेंट

'भक्तमाल' के कर्ता नाभाजी उन्हीं दिनों जब काशी आए थे, तब तुलसीदास से मिलने के लिए वे उनके स्थान पर भी गए थे। पर उस समय तुलसीदास ध्यान मे थे, इससे वे उनसे मिल न सके। नाभाजी बिना मिले ही उसी दिन वृन्दावन चले गए। पीछे यह बात तुलसीदास को मालूम हुई, तब वे बहुत पछताये और नाभा जी से मिलने के लिए वृन्दावन गए। जिस समय तुलसीदास नाभा जी के यहाँ पहुँचे, उस समय वहाँ वैष्णवों का भंडारा था। एक तो तुलसीदास बिना बुलाये वहाँ गए थे, दूसरे नाभाजी उनसे पहले ही से विरक्त हो रहे थे, इससे तुलसीदास का उन्होंने स्वागत नहीं किया। तुलसीदास

अन्य अभ्यागतों के साथ बैठ गए। इनको प्रसाद पाने के लिए बरतन भी नहीं दिया गया था। जब इनके सामने खीर आई, तब इन्होंने एक साधु का जूता उठा लिया और कहा—इससे अच्छा बरतन और क्या होगा ? इनकी विनम्रता ने नाभाजी का हृदय धो दिया। उन्होंने इनको गले से लगा लिया और कहा—आज मुझे 'भक्तमाल' का सुमेर मिल गया।

कहा जाता है, काशी से लौटकर नाभाजी ने तुलसीदास से अपने अपमान का बदला चुकाया था और 'भक्तमाल' मे जो छप्पय उनके नाम पर दिया हुआ मिलता है, उसका पहला चरण यह लिखा था :

कलि कुटिल जीव तुलसी भये बालमीकि अवतार धरि।

पर उस दिन की घटना के बाद उन्होंने इस चरण को ऐसा कर दिया :

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।

मीराबाई का पत्र

मीरा बाई नाम हिन्दी वालों से अपरिचित नही। कहा जाता है कि जब मीराबाई को तत्कालीन राणा बहुत तङ्ग करने लगे, तब उन्होंने तुलसीदास को यह पत्र लिख भेजा और पूछा कि क्या करना चाहिए .

स्वस्ति श्रीतुलसी गुन भूपन दूषन हरत गुसाई।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहु सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढाई।
साधु सङ्ग अरु भजन करत-मोहि देत कलेस महाई॥
बालपने ते मीरा कीन्ही गिरिधरलाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहि क्योहूँ लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हौ हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई॥

तुलसीदास ने उसके उत्तर में यह पद लिख भेजा :

जाके प्रिय न राम बैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाही।
रघुपति बिमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृत डराही॥
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषन बन्धु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन भे सब मङ्गलकारी॥
नातो नेह राम सो मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौ।
अजन कहा आँख जो फूटै बहुतक कहौ कहाँ लौं॥

तुलसी सोइ सब भाँति आपनो पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होइ सनेह राम सो एतो मता हमारो ॥

बनारसीदास से सत्संग

जौनपुर के जैन-कवि बनारसीदास तुलसीदास के समकालीन थे। कहा जाता है कि तुलसीदास से एक बार उनकी भेंट हुई थी। तुलसीदास ने बनारसीदास को 'रामचरितमानस' की एक प्रति दी थी और बनारसीदास ने उनको पार्श्वनाथ की स्तुति दी थी। दूसरी बार की मुलाकात मे बनारसीदास ने राम-चरित पर यह कविता लिखकर दी थी :

विराजै रामायण घट माही।
मरमी होय मरम सो जानै, मूरख मानै नाही ॥
आतम राम ज्ञान गुन लक्ष्मण, सीता सुमति समेत।
शुभ प्रयोग बानरदल मडित, बर बिबेक रन खेत ॥
ध्यान धनुष टकार सोर सुनि गई विषय दिति भाग।
भई भस्म मिथ्या मत लका उठी धारना आग ॥
जरे अज्ञान भाव राक्षस कुल लरै निशकित सूर।
जूझे राग द्वेष सेनापति ससय गढ चकचूर ॥
बिलखत कुम्भकरन भव विभ्रम, पुलकित मन दरियाव।
थकित उदार बीर महिरावन, सेतुबन्ध समभाव ॥
मूर्च्छित मन्दोदरी दुरासा, सजग चरन हनुमान।
घटी चतुर्गति परनति सेना, छुटै छपक गुन बान ॥
निरखि सकति गुन चक्र सुदर्शन, उदय बिभीषन दीन।
फिरै कबन्ध महीरावन को प्रान भाव सिरहीन ॥
इह बिधि साधु सकल घट अन्तर, होय सहज संग्राम।
यह बिवहार दृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम ॥

इसके उत्तर मे तुलसीदास ने पार्श्वनाथ की यह स्तुति लिखी थी :

पदजलज भगवान् जू बसत है उर माहिं।
चहुँ गति विहडन तरनतारन, देख बिघन बिलाहिं ॥
थकि धरनि पति नहि पार पावत नर सु बपुरा कौन।
तिहि लसत करुना जनपयोधर, भजहि भवि जन लौन ॥
दुति उदित त्रिभुवन मध्य भूषन, जलधि ज्ञान गँभीर।
जिहि भाल ऊपर छत्र सोहत, दहत दोष अधीर ॥

जिहि नाथ पारस जुगल पकज चित्त चरनन जास ।
रिधि सिद्धि कमला अजर राजति भजत तुलसीदास ॥"

('बनारसी-विलास' से उद्धृत)

कारावास

तुलसीदास के चमत्कारो की कहानियाँ जब दिल्लीपति के कानों तक पहुँचीं, तब उसने उनको दरबार मे आदर-सहित लाने के लिए अपने आदमी भेजे। तुलसीदास बादशाह की आज्ञा पाकर दिल्ली गये और दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह ने उनका बड़ा सत्कार किया और कुछ करामात दिखाने के लिए कहा। तुलसीदास ने कहा—मै तो एक राम-नाम जानता हूँ, और मुझमे कोई करामात नहीं। इस पर बादशाह ने अप्रसन्न होकर उनको कारागार में बन्द करवा दिया और कहा—बिना कोई करामात दिखाये छूटने न पाओगे।

कारागार मे तुलसीदास ने हनुमानजी की यह स्तुति की :

कानन भूधर वारि बयारि दवा बिष ज्वाल महा अरि घेरे ।
संकट कोटि परो तुलसी तहँ मातु पिता सुत बन्धु न नेरे ॥
राखहि राम कृपा करिकै हनुमान से पायक है जिन केरे ।
नाक रसातल भूतल मे रघुनायक एक सहायक मेरे ॥

× × ×

तोहि न ऐसी बूझिये हनुमान हठीले ।
साहेब कहूँ न राम से तो सो न वसीले ॥
तेरे देखत सिह को सिसु मेढक लीले ।
जानत हौ कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले ॥
हाँक सुनत दसकध के भये बधन ढीले ।
सो बल गयो किधौ भये अब गर्व गहीले ॥
सेवक को परदा फटै तू समरथ सीले ।
अधिक आपु ते आपुनो सुनि मान सही ले ॥
साँसति तुलसीदास की देखि सुजस तुही ले ।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले ॥

तुलसीदास की यह प्रार्थना व्यर्थ नहीं गई। हनुमानजी ने बन्दरों को भेजकर बादशाही किले, स्वयं बादशाह और बेगमों की दुर्गति करा डाली। बादशाह दौड़कर तुलसीदास के चरणों पर गिरा, तब तुलसीदास ने शान्ति के लिए हनुमानजी की यह स्तुति की :

अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।
इनको बिलगु न मानिये बोलहि न बिचारी॥
लोक-रीति देखी-सुनी व्याकुल नर-नारी।
अति बरसे अनबरसेहूँ देहि दैवहि गारी॥
ना कहि आये नाथ सों भई साँसति भारी।
कहि आये, कीबी छमा निज ओर निहारी॥
समय साँकरे सुमिरिये समरथ हितकारी।
सो सब बिधि दाया करै अपराध बिसारी॥
बिगरी सेवक की सदा साहेबहि सुधारी।
तुलसी पै तेरी कृपा निरुपाधि निरारी॥

तुलसीदास की स्तुति से बन्दरों का उपद्रव रुक तो गया, पर बादशाह को दंडस्वरूप अपना किला हनुमानजी के लिए छोड़ देना पड़ा।

प्रियादासजी ने भी इस कथा पर दो कवित्त लिखे हैं। आश्चर्य की बात है कि मुग़लों के दो बड़े प्रसिद्ध बादशाह अकबर (सं० १६१३–१६६२) और जहाँगीर (सं० १६६२–१६८४) तुलसीदास के जीवन-काल में होकर गुजरते हैं, और दोनों के अलग-अलग प्रामाणिक इतिहास भी मिलते हैं, पर किसी के इतिहास में हम तुलसीदास का नाम भी नहीं पाते, उनके दिल्ली जाने और बन्दरों से उत्पात मचवाने की तो बात ही क्या? अबुलफ़ज़ल ने अकबर का जीवन-चरित 'आईने अकबरी' में बड़ी ही तत्परता से लिखा है; पर उसमें भी तुलसीदास का नाम नहीं है। 'जहाँगीरनामा' मे भी तुलसीदास के दिल्ली जाने और दरबार में उपस्थित होने का कोई जिक्र नहीं। फिर किस दिल्लीपति के समय में तुलसीदास दिल्ली गए थे, यह ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता।

पर तुलसीदास के दिल्ली जाने की किंवदन्ती में सत्य का कुछ अंश अवश्य है। दिल्ली मे कुतुब के रास्ते पर एक स्थान है, जहाँ मुसलमान फ़क़ीर एक स्थान दिखलाकर यह कहते हैं कि यहाँ बाबा तुलसीदास जब दिल्ली आये थे, तब ठहरे थे, और पैसा माँगते हैं। मैंने भी वह स्थान देखा है। उस स्थान को सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने भी देखा है। यह बात 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' के किसी पिछले अङ्क में छपी हुई उनकी एक चिट्ठी से मुझे मालूम हुई है। अतएव तुलसीदास का दिल्ली जाना असत्य नहीं जान पड़ता। बाकी चमत्कार की बात तो तुलसीदास और हनुमानजी के अंतरंग भक्तों के हिस्से की चीज़ है; मुझे न उसका अनुभव है और न विश्वास है।

प्रयाग के कायस्थ-पाठशाला कालेज के एक रिटायर्ड प्रोफेसर मुंशी गणेशी-लाल साहब ने मुझे यह लिखकर भेजा था कि 'अकबरनामा' की हस्तलिखित प्रति में, जो जयपुर के राज-पुस्तकालय में है, अकबर के साथ बाबा तुलसीदास के शतरंज खेलने की बात लिखी हुई है। मैंने यह 'अकबरनामा' नहीं देखा; पर मुन्शीजी ने उसे देखा है। तुलसीदास शतरंज खेलना जानते थे, यह तो दोहावली के दोहों से भी विदित होता है, और यह अनुमान भी किया जा सकता है कि तुलसीदास सब ज्योतिष जानते थे, तंत्र-मंत्र भी जानते थे, संगीत के अच्छे मर्मज्ञ थे और राजा-रईसों मे उनका आना-जाना भी रहा होगा, तब उनके संसर्ग मे रहकर वे शतरंज न जानते हों, यह आश्चर्य की बात होगी। यदि अकबर के साथ वे शतरंज खेला करते थे, तब तो अकबर से उनकी निक-टता स्वीकार करनी पड़ेगी। पर अबुलफ़ज़ल ने उनकी उपेक्षा क्यों की ? इसका उत्तर अब कोई नही दे सकता।

फुटकर

१—पण्डित घनश्याम शुक्ल संस्कृत के अच्छे कवि थे। वे भाषा की कविता भी लिखते रहते थे। इस पर किसी पण्डित ने आपत्ति की कि देववाणी में न लिखने से ईश्वर अप्रसन्न होता है। शुक्लजी ने तुलसीदास से पूछा। तुलसीदास ने उत्तर दिया :

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै करै कमाँच ।।

२—तुलसीदास जब प्रह्लाद-घाट पर रहा करते थे, तब एक बार वे रात मे कहीं से लौट रहे थे। रास्ते में चोरों ने उन्हें घेर लिया। इस पर तुलसीदास ने हनुमानजी को स्मरण किया और यह दोहा पढ़ा :

बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँदिसि चोर।
दलत दयानिधि देखिये, कपि केसरी किसोर ।।

तब हनुमानजी ने अपना भयानक रूप दिखलाया, जिससे चोर डरकर भाग गए।

३—एक दिन तुलसीदास मणिकर्णिका घाट पर नहा रहे थे। एक पंडित ने पूछा—संस्कृत के विद्वान् होकर आपने गँवारी भाषा मे ग्रन्थ क्यों बनाया ? तुलसीदास ने उत्तर दिया :

मनि भाजन बिष पारई, पूरन अमी निहारि।
का छाँडिय का सग्रहिय, कहहु विवेक विचारि ।।

४—एक दिन एक फ़क़ीर ने आकर 'अलख-अलख' पुकारा। तुलसीदास ने कहा :

हम लखु हमै हमार लखु, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखै का लखै, राम नाम जपु नीच॥

५—श्रीरामदास गौड़ लिखते हैं—

"खलों को सुधारने के सम्बन्ध में एक कथा हमने अपनी बाल्यावस्था में सुनी थी।[1] एक बार गोस्वामीजी जाड़े में आधी रात को कहीं से लौटे आ रहे थे। राह मे चोरों का एक दल मिल गया। अँधेरे में इनकी आहट पाकर एक ने पूछा—'तू कौन है ?' यह बोले—'भाई, जो तुम सो मैं।' कहा—'अकेला ही है ?' बोले—'हाँ।' पूछा—'तो नये-नये निकले जान पड़ते हो। अच्छा, चाहो तो हमारे साथ हो लो।' गोस्वामीजी साथ हो लिये। इन्हें पहरे पर रखकर सेंध लगाई। जब चोर चोरी करने अन्दर गये, तब इन्होंने झोली में से शंख निकाला और बजाया। चोर भाग खड़े हुए, तो यह भी उनके साथ भागे। दूसरी जगह वह घर मे पैठे और पहले की तरह इन्हें पहरे पर रखा। फिर शंख बजा और जाग और भगदड़ हुई। इस बार किसी चोर ने गोस्वामी जी को शंख बजाते देख लिया था। जब एकान्त में सब एकत्र हुए, तो उसने नये चोर पर अपना सन्देह प्रकट किया। गोस्वामीजी ने स्वीकार कर लिया कि 'शंख मैंने बजाया था, तुमने मुझे पहरे पर रखा था कि कोई जोखिम देखना तो तुरन्त बताना। मैंने बहुत जोखिम देखकर ही दोनों बार शंख बजाया। मैंने देखा कि भगवान् रामचन्द्र तुमको चोरी करते देख रहे हैं; दंड अवश्य मिलेगा। सो मैंने अपनी झोली से तुमको चेतावनी देने को शंख निकालकर बजा दिया।' गोस्वामीजी की बातें सुनकर चोर उन्हें पहचान गए और उनके चरणों पर गिरे। चोरी छोड़ दी और उनके शिष्य हो गए।"

६—'रामचरितमानस' को काशी के संस्कृताभिमानी पंडित प्रामाणिक ग्रन्थों की कोटि में रखने को प्रस्तुत नहीं थे। पर उसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता को वे रोक भी नहीं सकते थे। तब उन्होंने यह चाल चली कि यदि विश्वनाथजी इस पर सही कर दें, तो यह ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाय। इसके अनुसार रात के समय 'मानस' की एक प्रति विश्वनाथजी के मन्दिर में रख दी गई। सबेरे पट खुलने

---

१ यह कहानी स्वर्गीय पितृ-चरणो से प्राप्त हुई थी। उन्होने शायद पंडित बन्दन पाठक से सुनी थी। मैंने कही किसी जीवनी मे इसका उल्लेख नहीं देखा। —लेखक

पर उस पर विश्वनाथजी की स्वीकृति पाई गई। पता नहीं, विश्वनाथजी की स्वीकृति वाला 'मानस' अब कहाँ है ?

इतने ही से पंडितों को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने फिर प्रश्न उठाया कि 'मानस' श्रुति, स्मृति, पुराण, काव्य में किस कोटि का माना जाय। अगली रात 'मानस' उपर्युक्त विषयक ग्रन्थों के साथ सबके नीचे रखा गया सबेरे यह सबके ऊपर रखा हुआ मिला।

इतने पर भी पंडितगण पीछे नहीं हटे। वे 'रामचरितमानस' को उड़ा लेनें की चिन्ता में प्रवृत्त हुए। उन्होंने उसके लिए कुछ चोर नियुक्त किये। चोर जब 'मानस' को चुराने के लिए तुलसीदास की कुटी पर पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने तुलसीदास से क्षमा-प्रार्थना की। तुलसीदास ने देखा कि उनके राम को उनके लिए कितना कष्ट उठाना पड़ता है; तब उन्होंने कुटी की सब चीजें लुटा दीं और 'मानस' को टोडरमल के यहाँ रखवा दिया।

७—एक ब्राह्मण को ब्रह्म-हत्या लगी थी। वह प्रायश्चित्त के लिए तीर्थाटन करता हुआ काशी आया और तुलसीदास के पास पहुँचा। तुलसीदास ने उसके मुँह से राम नाम कहलाकर उसे पवित्र कर लिया और उसके साथ भोजन भी किया। इस पर काशी के पंडित बहुत बिगड़े। विरोध के लिए एक ब्राह्मण-सभा की गई और उसमें तुलसीदास को बुलाकर उनसे पूछा गया कि उन्होंने ऐसा शास्त्र-विरुद्ध कार्य क्यों किया ? तुलसीदास ने समस्त शास्त्रों से राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन करके अपने कार्य का समर्थन किया। इस पर यह निर्णय हुआ कि शिवजी का नाँदिया इस हत्यारे ब्राह्मण के हाथ का भोजन ग्रहण कर लेगा, तो हम लोग इसे शुद्ध समझ लेंगे। नन्दीश्वर के सामने जब उस हत्यारे के हाथ से पक्वान्न रखे गए, तब नन्दीश्वर ने सब पा लिये। इस पर तुलसीदास का जय-जयकार होने लगा।

८—काशी वालों ने तुलसीदासजी की हत्या के कई प्रयत्न किये, पर जब एक भी प्रयत्न सफल न हुआ, तब उन्होंने तंत्र-मंत्र की शरण ली। काशी के प्रसिद्ध तांत्रिक बटेश्वर को तुलसीदास की हत्या के लिए नियुक्त किया गया। उसने काशी के कोतवाल भैरवजी को प्रेरित किया। पर जब भैरव जी ने तुलसीदास के पास पहुँचकर देखा कि वहाँ बजरङ्गबली पहले से ही प्रस्तुत है, तब वे लौट गए और उन्होंने बटेश्वर को ही मार डाला।

९—बिहार के सारन जिले मे हरीराम ब्रह्म (हरसू ब्रह्म) का स्थान है। कनकशाही बिसेन के अत्याचार से पीड़ित होकर हरीराम ने आत्म-हत्या कर ली थी। वहाँ रामनवमी के दिन बड़ा मेला होता है। कहा जाता है कि उन हरी-

राम के यज्ञोपवीत के अवसर पर तुलसीदास भी उपस्थित थे।

१०—बङ्गाल से आये हुए एक क्रोधी पंडित रविदत्त शास्त्री को काशी के पंडितों ने तुलसीदास से शास्त्रार्थ के लिए भिड़ा दिया। पर जब वह हार गया तब लट्ठ लेकर दौड़ा। पर सामने उसे हनुमानजी खड़े दिखाई पड़े और वह भयभीत होकर भाग गया।

शास्त्र और शस्त्र दोनों से हारकर रविदत्त ने अनुनय-विनय से काम निकालना चाहा। उसने तुलसीदास की सेवा-शुश्रूषा करके उनको प्रसन्न किया और वरदान माँगा। साधु-स्वभाव तुलसीदास उसके फेर मे आ गए और उन्होंने उसे वरदान माँगने की स्वीकृति दे दी। इस पर उसने यह माँगा कि आप काशी छोड़कर चले जाइए। तुलसीदास अपने वचन के लिए विवश थे। वे विश्वनाथजी की प्रार्थना करके काशी से चले गए। शिवजी ने तुलसीदास को स्वप्न देकर उन्हें रास्ते में ठहरने के लिए आदेश दिया और काशी वालों को स्वप्न देकर बहुत डराया-धमकाया। तब काशी के लोग तुलसीदास के मित्र टोडरमल को आगे करके गये और उन्हें मना लाये। तब से वे गोपाल-मन्दिर छोड़कर अस्सी पर रहने लगे।

११—नाभाजी से मिलने के लिए तुलसीदास जब वृन्दावन गये, तब उन्हें वहाँ सर्वत्र कृष्ण ही का नाम सुनकर आश्चर्य हुआ। वहाँ राम का नाम उन्हें कहीं सुनने को भी न मिला, तब उन्होंने यह दोहा कहा :

राधा कृष्ण सबै कहै, आक ढाक अरु कैर।
तुलसी या ब्रज मों कहा, सियाराम सो बैर॥

जब वे गोपाल-मन्दिर में पहुँचे, तब श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने खड़े होकर उन्होंने यह दोहा पढ़ा :

कहा कहौ छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष-बान लो हाथ॥

इसे सुनकर कृष्ण ने राम का रूप धारण कर लिया और तब तुलसीदास ने उन्हें प्रणाम किया।

महाराष्ट्र कवि मोरो पन्त ने भी 'केकावली' में इस घटना का उल्लेख किया है :

श्रीकृष्ण मूर्ति जेणे केली श्रीराममूर्ति सज्जन हो।
रामसुत मयूर म्हणे त्याचा सुयशोमृतात मज्जन हो॥

१२—हिन्दी के प्रसिद्ध कवि केशवदास, जो ओरछा के राजा इन्द्रजीतसिंह के दरबारी कवि थे, एक प्रेत-यज्ञ में जलकर प्रेत हो गए थे। तुलसीदास जब

ओरछा गये और एक कुए से पानी लेने लगे, तब केशवदास ने लोटा पकड़ लिया और कहा - मुझे प्रेत-योनि से छुड़ाइये, तब लोटा छोड़ूँगा। तुलसीदास ने कहा —अपनी 'रामचन्द्रिका' का २१ वार पाठ करो, तब तुम्हारी मुक्ति होगी।

केशवदास ने कहा —'रामचन्द्रिका' के पहले छन्द का पहला अक्षर मैं भूल गया हूँ।

तुलसीदासजी ने स्मरण दिला दिया, तब २१ बार पाठ करके केशवदास प्रेत-योनि से मुक्त हुए।

१३ —एक बार एक ब्राह्मण दरिद्रता से घबराकर आत्म-हत्या करने पर उतारू हुआ। तुलसीदास ने उसकी दीन-दशा पर तरस खाकर मंदाकिनी (नदी) से प्रार्थना करके दरिद्र-मोचन नाम की शिला प्रकट करवा दी, जिसके प्रभाव से ब्राह्मण की दरिद्रता दूर हुई। चित्रकूट में रामघाट पर जहाँ उक्त शिला प्रकट हुई थी, उस स्थान का नाम अब तक दरिद्र-मोचन है।

१४—एक बार एक तांत्रिक की स्त्री को एक वैरागी निकाल ले गया। तांत्रिक ने तन्त्र-बल से बादशाह को पकड़ मँगाया और यह हुक्म जारी करा दिया कि जितने माला और तिलक वाले मिलें, सबकी मालाएँ उतार ली जायँ और तिलक मिटा दिये जायँ। इससे काशी के वैरागियों में बड़ा हाहाकार मचा। बहुतों की माला छीनी गईं और तिलक मिटाये गए। जब बादशाही दूत तुलसीदास के पास पहुँचे, तब उन्हें जहाँ-तहाँ भयंकर देव दिखाई दिए, जिनसे डरकर वे भाग गए और सबकी माला और तिलक फिर ज्यों-के-त्यों हो गए।

१५—काशी में भुलई साहू नाम का एक कलवार था। वह साधु-सन्तों की निन्दा किया करता था। पर उसकी स्त्री साधु-सन्तों में श्रद्धा रखती थी। एक दिन भुलई मर गया। उसे लोग श्मशान की तरफ लिये जाते थे कि रास्ते में उसकी स्त्री को, जो रोती-पीटती पीछे-पीछे जा रही थी, तुलसीदास मिले। उसने तुलसीदास को प्रणाम किया। तुलसीदास ने अभ्यास के अनुसार कह दिया—सौभाग्यवती हो। स्त्री ने कहा—महाराज, आपका वचन तो मिथ्या होना चाहता है, मेरा पति तो मर गया। तुलसीदास ने उसके पति की लाश को वापस मँगाया और उसे चरणामृत पिलाकर जीवित कर दिया।

१६ मुर्दों को जिला देने के चमत्कार से लोग बहुत आकर्षित हुए और तुलसीदास के दर्शनों के लिए उनकी कुटी पर भीड़ जमा रहने लगी। इससे उनके भजन में बाधा पड़ने लगी। तब उन्होंने कुटी से बाहर निकलना ही छोड़ दिया। हृषीकेश, शान्तिपद और दातादीन ये तीन उनके भक्त थे। तुलसीदास का दर्शन किये बिना वे अन्न-जल न ग्रहण करते थे। इससे तुलसी-

दास दिन में एक बार उनको दर्शन देने के लिए कुटी से बाहर आया करते थे। लोग इस बात को तुलसीदास का पक्षपात समझते थे। तुलसीदास एक दिन उनके लिए भी बाहर न निकले। परिणाम यह हुआ कि वे तीनों कुटी के द्वार पर तड़प-तड़पकर मर गए। तब लोगों को उनके सच्चे प्रेम पर विश्वास हुआ। तुलसीदास ने तीनों को चरणामृत पिलाकर जीवित कर दिया।

१७—एक दिन तुलसीदास कहीं जा रहे थे। राह में उन्हें ब्राह्मण की एक स्त्री मिली, जो अपने मृत पति के साथ सती होने जा रही थी। तुलसीदास को देखकर उसने उनके चरण छूकर प्रणाम किया। तुलसीदास ने आशीर्वाद दिया—सौभाग्यवती हो। स्त्री ने कहा—मैं तो विधवा हो गई हूँ, और अब सती होने जा रही हूँ। तुलसीदास बड़े विचार में पड़े। अन्त में उन्होंने राम-नाम के प्रभाव से उसके मृत पति को जीवित कर दिया। प्रियादास ने 'भक्त-माल की टीका' में इस घटना का उल्लेख किया है।

भारत के पुण्य-राशि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस कथा में एक नवीन प्राण डालकर इसे इस बीसवीं सदी में सती होने से बचा लिया है। कवि रवीन्द्रनाथ ने इस घटना को अपनी इस कविता द्वारा इस प्रकार अमरत्व प्रदान किया है :

स्वामी-लाभ

एकदा तुलसीदास जाह्नवीर तीरे निर्जन श्मशाने,
सन्ध्याय आपन मने एका एका फिरे माति निज गाने।
हेरिलेन, मृत पति चरणेर तले वसियाछे सती,
तारि सने एक साथे एक चितानले मरिबारे मति।
संगिगन माझे माझे आनन्द चीत्कारे करे जयनाद,
पुरोहित ब्राह्मणेरा घेरि चारि धारे गाहे साधुवाद।
सहसा साधु रे नारी हेरिया सम्मुखे करिया प्रणति,
कहिल विनय "प्रभो, आपने श्रीमुख देह अनुमति।"
तुलसी कहिल "मातः, जाबे कोन् खाने एत आयोजन ?"
सती कहे "पती सह जाब स्वर्गपाने करियाछि मन।"
"धरा छाड़ि केन नारी, स्वर्ग चाह तुमि" साधु हासि कहे,
"हे जननी स्वर्ग जाँर ए धरणी भूमि ताँहारि कि नहे ?"
बुझिते ना पारि कथा नारि रहे चाहि विस्मये अवाक्—
कहे कर जोड़ करि—"स्वामी यदि पाइ स्वर्ग दूरे थाक्।"
तुलसि कहिल हासि "फिरे चलो घरे कहितेछि आमि,
फिरे पावे आज हतें मासेकेर परे आपनार स्वामी।

रमनी आशार वश गृहे फिरे जाय श्मशान तेयागि',
तुलसी जाह्नवी तीरे निस्तव्ध निशाय रहिलेन जागि'।
नारी रहे शुद्ध चिते निर्जन भवने, तुलसी प्रत्यह,
कि ताहारे मंत्र देय नारी एक मने ध्याय अहरह।
एक माम पूर्ण हते प्रति वेशी दले आसि' ता'र द्वारे,
शुधाइल-"पेले स्वामी ?" नारी हासि बले-पेयेछि ताँहारे
शनि व्यग्र कहे ता'रा-"कह तबे कह" आछे कोन् घरे ?
नारी कहे "ग्येछेन प्रभु अहरह आमारि अन्तरे॥

('कथा' मे उद्धृत)

अर्थ—

एक बार तुलसीदास संध्या समय, गंगा-तट पर, निर्जन श्मशान-भूमि में, अकेले अपने गान में निमग्न घूम रहे थे।

उन्होंने देखा, एक सती अपने मृत पति के साथ एक ही चिताग्नि में अपने प्राण विसर्जन करने के लिए उसी के चरणों के पास बैठी है।

उसके साथ के लोग बीच-बीच में आनन्द-घोष के साथ जयनाद करते थे और पुरोहित और ब्राह्मण चारों ओर से घेरकर आशीर्वाद देते थे।

यकायक स्त्री ने साधु (तुलसीदास) को सामने देखा और प्रणाम करके कहा—प्रभो! अपने श्रीमुख से अनुमति दीजिये।

तुलसीदास ने कहा—माता! कहाँ जाने की ऐसी तैयारी हो रही है? सती ने कहा—पति के साथ स्वर्ग जाने की इच्छा है।

साधु (तुलसीदास) नें हँसकर कहा—तुम पृथ्वी छोड़कर क्यों स्वर्ग जाना चाहती हो? हे माता! स्वर्ग जिनका है, क्या यह भूमि भी उन्हीं की नहीं है?

स्त्री समझ न सकी। वह विस्मित और अवाक् होकर उन्हें देखने लगी। फिर उसने हाथ जोड़कर कहा—स्वामी मिल जायँ, तो स्वर्ग की मुझे परवाह नहीं।

तुलसीदास ने हँसकर कहा – तुम घर लौट चलो। मैं कहता हूँ, आज से एक मास के पश्चात् तुम अपने स्वामी को पा जाओगी।

स्त्री आशा-वश श्मशान छोड़कर घर वापस गई। तुलसीदास गंगा-तट पर उस निस्तब्ध रात्रि भर जागते रहे।

स्त्री शुद्ध चित्त से अपने निर्जन भवन में रहती रही। तुलसीदास प्रतिदिन

जो मन्त्र उस नारी को सिखाते थे, वह निरन्तर उसी का ध्यान किया करती थी।

एक मास पूर्ण होते ही पड़ोसियों ने द्वार पर आकर पूछा—स्वामी मिला ? स्त्री ने हँसकर कहा—हाँ, मैंने उन्हें पा लिया है।

यह सुनकर उन लोगों ने व्यग्रता से पूछा—बताओ, बताओ, वह किस घर में है ? स्त्री ने कहा—मेरे वह नाथ निरन्तर मेरे ही अन्तर में विराजमान है।

१८—एक ठाकुर के एक बड़ी रूपवती कन्या थी। संयोग से उसका विवाह एक कन्या से हो गया। कन्या की माता ने उसके जन्म के समय यह घोषणा करा दी थी कि पुत्र हुआ है। पुत्र ही की तरह उसका लालन-पालन भी हुआ था। विवाह हो जाने पर यह रहस्य खुला। इससे ठाकुर साहब के घर में शोक छाया हुआ था। संयोग से उसी समय तुलसीदास, जो बादशाह के बुलाने पर दिल्ली जा रहे थे, ठाकुर साहब के यहाँ जा ठहरे। ठाकुर की मनोव्यथा देखकर तुलसीदास को दया आई। उन्होंने नौ दिन वहीं रहकर 'रामचरितमानस' का पाठ किया, जिसके प्रभाव से ठाकुर की कन्या पुरुष हो गई। तभी से 'मानस' के नवाह्निक पाठ की प्रथा चल निकली है।

इस घटना के प्रमाण में 'दोहावली' के ये दोहे दिये जाते हैं :

कबहुँक दरसन सन्त के, पारसमनी अतीत।
नारि पलटि सो नर भयो, तेल प्रसादी सीत॥
तुलसी रघुबर सेवतहि, मिटिगो कालो काल।
नारि पलटि सो नर भयो, ऐसे दीनदयाल॥

१९ – 'मानस' के बाल-कांड में इस सोरठे के तीन चरण :

संकर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहुबल।
बूडे सकल समाज,

लिखकर तुलसीदास चिन्ता में पड़ गए कि सकल समाज में तो राम-लक्ष्मण जी थे, क्या वे भी डूब गये ? यहीं उन्होंने लेखनी रख दी। रात में हनुमानजी ने चौथा चरण 'चढे जे प्रथमहि मोह बस' लिखकर सोरठा पूरा कर दिया।

२०—कहा जाता है कि तुलसीदास पर आमेर के महाराजा मानसिंह और उनके भाई जगतसिंह भी बड़ी श्रद्धा रखते थे। वे प्राय: उनके पास आया करते थे। एक बार किसी ने पूछा—पहले तो आपके पास कोई नहीं आता था, अब बड़े-बड़े राजा-महाराजा आने लगे। तुलसीदास ने कहा :

घर-घर माँगे टूक पुनि, भूपनि पूजे पाय ।
ते तुलसी तव राम विनु, ते अब राम सहाय ।।

२१—दिअरा (सुलतानपुर—अवध) के राज-भवन में एक चौकठ लगी है, जिसके सम्बन्ध मे मुझे बताया गया था कि तुलसीदास ने उसे लाँघा था। वहाँ उस चौखट के साथ तुलसीदास की यह स्मृति सजीव हो रही है।

२२—तुलसीदास ने भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्राएँ की थीं। चित्रकूट, काशी, अयोध्या तो उनके मुख्य निवास-स्थान थे ही, वे तीर्थ-स्थानों में भी भ्रमण करते रहते थे। प्रयाग, जनकपुर, नैमिषारण्य, लखनऊ, संडीला, मलीहाबाद, मडियाहू (जौनपुर) और बिठूर भी वे गये थे। इन स्थानो मे उनके जाने और रहने की कथाएँ जनता मे परम्परा से चली आ रही है। मलीहाबाद मे उनके हाथ का लिखा हुआ 'मानस' रखा है। मैने उसे देखा है, पर उसमें संवत् नहीं दिया होने से मै निश्चय नही कर सका कि वास्तव में वह उन्हीं के हाथ का या समय का है या नही। दिल्ली और वृन्दाबन जाने की कथाएँ ऊपर दी जा चुकी है। वे कुछ दिनों तक राजापुर मे भी रहे थे, ऐसी जन-श्रुति है। यद्यपि राजापुर तो उनका जन्म-स्थान ही प्रसिद्ध किया गया है, और गवर्नमेंट ने भी उसे स्वीकार करके अपनी तख्ती लगा दी है, पर वह वास्तविक जन्म-स्थान न होने पर भी कुछ समय तक उनका निवास-स्थान जरूर रहा होगा।

तुलसीदास के चमत्कार की और भी छोटी मोटी बहुत सी दन्त-कथाएँ है। कुछ को तो उनके चरित्र-लेखकों ने अपने-अपने ग्रन्थो में गूँथ लिया है, कुछ सर्व-साधारण की जिह्वा पर है। मैंने दोनों मे से चुनकर कुछ कथाएँ ऊपर दे दी है। इनमे कुछ तो सच्ची ही होगी। जैसे तुलसी के परिवार और गृह-त्याग की कथा, नाभाजी के भण्डारे मे तुलसीदास की उपस्थिति, टोडरमल के साथ उनकी मित्रता तथा भिन्न-भिन्न स्थानो की यात्राएँ आदि। पर जिन कथाओ मे चमत्कार शामिल है, उनको तो अलौकिक ही समझना चाहिए। इन कथाओं के आधार पर तुलसीदास का कोई क्रम-बद्ध जीवन-चरित नहीं तैयार किया जा सकता।

सभी देशों मे महात्माओ के जीवन-चरित प्रायः अधूरे ही मिलते है। वे अपने को समाज में ऐसा निर्लिप्त रखते है और मान-प्रतिष्ठा से इतना बचकर रहना चाहते है कि जनता उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे मे उनमे बहुत कम जान पाती है। इसीसे उनमें तरह-तरह की कल्पनाएँ उत्पन्न होकर घर कर लेती है और समय पाकर वे सत्य का रूप धारण कर लेती है। फिर उन्हें भक्तों के मस्तिष्क से निकाल बाहर करना कठिन हो जाता है। जिस महात्मा

के प्रति लोगों की जैसी श्रद्धा होती है, उसी के परिणाम से उसके चमत्कार की बातें भी गढ़ी जाती हैं। बुद्ध, ईसा मूसा, मुहम्मद किसी का भी जीवन-चरित्र करिश्मों से खाली नहीं है।

जब महात्मा गांधी जीवित थे तब हममें से करोड़ों ने उनके दर्शन किये थे, लाखों ने उनको सुना है, हजारों ने उनको समझा है और सैकड़ों ने उनके जीवन के साँचे को निकट से देखा है। पर हर एक से अलग-अलग बात कीजिये, तो उनमें से शायद ही कोई महात्मा गांधी के किसी-न-किसी चमत्कार से खाली मिले और हर एक का चमत्कार उसके व्यक्तित्व के साँचे में अलग-अलग ढला हुआ भी होगा।

चमत्कार तो हिन्दू जाति की पैतृक संपत्ति सी है। कोई व्यक्ति अपनी विशेषताओं से ऊपर उठा हुआ या उठता हुआ दिखाई पड़ता है, तो लोग उसके साथ किसी-न-किसी चमत्कार की भावना करने लगते हैं और अधिक समय न देकर स्वयं चमत्कार रचकर उसकी महिमा को चमत्कृत करते रहते हैं। उनको सत्य और मिथ्या की परवाह नहीं होती।

इसी प्रकार तुलसीदास भी चमत्कारों के शिकार हुए हैं। यद्यपि वे स्वयं तो प्रतिष्ठा से भागते थे :

> माँगि मधुकरी खात जे, सोवत पाँव पसारि।
> पाप प्रतिष्ठा बढि परी, तुलसी बाढी रारि॥
>
> × × ×
>
> लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाह।

पर लोगों को यह रुचता है कि किसी मुर्दे को जिला देने, किसी कन्या को पुत्र बना देने, राम से अपनी कुटी की रखवाली कराने और बन्दरों से बादशाह के महल को उजड़वा डालने का चमत्कार उनकी जीवनी के साथ जरूर रहे। तुलसीदास अपनी निर्बलता और विवशता के लिए कितना ही चिल्लाते रहें, पर उनको चमत्कारों से भरा हुआ देखने ही में लोगो को मजा आता है।

तुलसीदास तो स्वयं अपने मानवीय गुणों से देदीप्यमान हैं; झूठे आश्चर्य-जनक चमत्कारों से उनकी महिमा बढाना उनके व्यक्तित्व का उपहास करना है। श्रद्धालुओं ने भावुकतावश उनकी जीवनी में चमत्कारों का जितना अधिक सौन्दर्य भरा है, वह यदि सत्य नहीं है, तो वह जीवनी को सुन्दर बनाने की अपेक्षा उसे निर्जीव बनाने ही में अधिक सहायक होगा।

तुलसीदास का देहावसान

नीचे लिखे एक दोहे के आधार पर यह कहा जाता है कि तुलसीदास ने

संवत् १६८० में, श्रावण शुक्ला सप्तमी को काशी में शरीर-त्याग किया था।

संवत् सोरह सै असी, असी गग के तीर।
सावन मुक्ला सत्तमी, तुलसी तजेउ सरीर॥

पर यह दोहा किसने बनाया ? यह किसी को ज्ञात नहीं।

काशी के सुप्रसिद्ध रामायणी श्रीविजयानन्द त्रिपाठी का कथन है कि गोस्वामीजी के अखाड़े मे और टोडरमल के वंशज चौधरी लालबहादुर के यहाँ भी श्रावण शुक्ला तीज को तुलसीदास की निधन-तिथि मनाई जाती है। अतएव मेरी राय मे भी यही तिथि प्रामाणिक मानी जानी चाहिए।

तिथि के पहले सम्वत् का प्रश्न हल होना चाहिए। सम्वत् १६८० मे तुलसीदास का देहान्त हुआ, इसका प्रमाण उक्त दोहे के सिवा और कहीं नहीं मिलता। 'सावन शुक्ला सत्तमी' को तो यह कहकर अशुद्ध बताया जा रहा है कि वह 'भड्डर' के कई दोहों में आने से लोगों की जबान पर था, इससे लोग 'सावन स्यामा तीज' के बदले उसे कहने लगे। पर इसी तरह कोई तर्क करना चाहे, तो कर सकता है कि असी (अंक) और असी (नदी) का तुक मिलता देखकर किसी ने उक्त दोहे में १६८० सवत् डाल दिया है। सम्भव है, तुलसीदास वर्ष-दो वर्ष आगे-पीछे लोकान्तरित हुए हों। इसका उत्तर ही क्या हो सकता है ? मेरी राय में उक्त सम्वत् पञ्चों की राय के सिवा और कोई बल नहीं रखता।

'सावन स्यामा तीज' के आगे कोई 'सनि' शब्द बताते है और कोई-कोई 'को'। श्रीश्यामसुन्दरदास ने 'सनि' ही पाठ माना है। पर श्रीरामदास गौड़ का एक लेख मैंने पढ़ा है, जिसमें वे उस दिन 'शुक्रवार' होना मानते है, 'सनि' नहीं। अतएव यह पाठ भी अभी भ्रमात्मक ही है।

मृत्यु के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी उठा हुआ है कि तुलसीदास की मृत्यु कैसे हुई ? कुछ चरित-लेखक कहते है कि प्लेग से उनकी मृत्यु हुई, कुछ कहते है कि फोड़े मे हुई; कुछ कहते है, स्वाभाविक रीति से वृद्धावस्था के कारण हुई। मैंने किसी पिछले पृष्ठ पर यह प्रकट किया है कि उनको शक था कि किसी 'खल की उपाधि' से उनको पीड़ा पहुँच रही है, अतएव यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी विरोधी ने उनको विष दिया हो, जिससे तमाम बदन में फोड़े निकल आए हों, जैसे स्वामी दयानन्द को विष दिये जाने पर निकले थे। 'कवितावली' में जहाँ वे अपनी लेखनी छोड़ते है,वहाँ तक तो वे बड़े कष्ट में थे। उसके आगे का पता नहीं है कि वे उस कष्ट से मुक्त होकर कुछ दिन और जिये या वही उनका अन्तिम कष्ट था ? 'कवितावली' के आधार पर

केवल एक ही बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि वे प्लेग से नही मरे थे।

कहा जाता है कि अन्तिम समय मे तुलसीदास ने क्षेमकरी पक्षी देखकर यह सवैया कहा था :

कुकुम रग सुअग जितो मुखचंद सो चंदन होड परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकत सोच विषाद हरी है।
गौरी कि गग बिहगिनि वेष कि मजुल मूरति मोद भरी है।
पेपु सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन छेमकरी है ।।

इस लोक से प्रयाण करते समय यह दोहा भी उन्हीं का कहा हुआ कहा जाता है :

राम नाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अब ही तुलसी सोन ।।

दूसरा भाग

तुलसी और उनका काव्य

१

रचनाएँ

इस समय तुलसीदास के रचे हुए जितने ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, उनकी एक सूची पहले दी जा चुकी है। यह निर्णय करना कि उनमे कौन-कौन सी रचनाएँ वास्तव मे तुलसीदास की है, जरा कठिन काम है ।

तुलसीदास ने कब से कविता लिखनी प्रारम्भ की, इसका भी पता नहीं। केवल 'मानस' का रचना-काल हमे मालूम है कि वह संवत् १६३१ मे प्रारम्भ हुआ था। सं० १६३१ के बहुत पहले से तुलसीदास रचना किया करते थे, यह तो स्वीकार ही कर लेना पड़ेगा, क्योकि 'मानस'-जैसे महाकाव्य का कवि एक दिन में नहीं बना करता। तुलसीदास छात्रावस्था ही से पद्य-रचना करने लगे थे, यह हमे उनकी 'कवितावली' के अनेक छन्दों से विदित होता है।

तुलसीदास की रचनाओं के काल-क्रम पर हम आगे स्वतन्त्र रूप से विचार करेंगे। यहाँ हम उन रचनाओं पर अलग-अलग विचार कर लेना चाहते हैं, जो विशेषज्ञों की सम्मति से उन्हीं की स्वीकार कर ली गई है। वे रचनाएँ ये हैं—

१. रामचरितमानस
२. गीतावली
३. कवितावली
४. वैराग्य-संदीपिनी
५. रामाज्ञा-प्रश्न
६. दोहावली
७. पार्वती-मगल
८. रामलला-नहछू
९. जानकी-मंगल
१०. श्रीकृष्ण-गीतावली
११. बरवै-रामायण
१२. विनय-पत्रिका

इनमें जो सग्रह-ग्रन्थ है, जैसे 'दोहावली' और 'कवितावली' आदि, उनके विषय मे यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनका सकलन तुलसीदास ने स्वयं किया था, या उनके समय मे या उनके पश्चात् उनके किसी शिष्य या मित्र ने किया था। प्रत्येक रचना पर अलग-अलग विचार करते समय हम

इस प्रश्न को भी हल करेंगे कि अपनी किन-किन रचनाओं को तुलसीदास ने स्वयं ग्रन्थ का रूप दे दिया था और किन-किन रचनाओं मे अन्यों के हाथ लगने की भी सम्भावना हो सकती है।

यहाँ हम उपर्युक्त रचनाओं पर अलग-अलग विचार करते हैं—

रामचरितमानस

'रामचरितमानस' तुलसीदास की सबसे बड़ी और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसका प्रारम्भ-काल 'मानस' मे इस प्रकार दिया हुआ है :

सवत् सोरह सै इकतीसा। करौ कथा हरि पद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यहा चरित प्रकासा।

इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि सवत् १६३१ में, चैत्र की नवमी को, जो मंगलवार को पड़ी थी, अयोध्या मे 'रामचरितमानस' का प्रकाश हुआ। पर यहाँ सन्देह उठ खड़ा होता है कि उपर्युक्त सूचना तुलसीदास ने बाल-काण्ड मे ७ श्लोक, १० सोरठे, ३२८ चौपाइयाँ, ४४ दोहे और १ छन्द लिख लेने के बाद दी है। इससे यह तो मान ही लेना चाहिए कि तुलसीदास ने उस दिन कम-से-कम उतने छन्द अवश्य लिख डाले थे। यद्यपि तुलसीदास-जैसे प्रतिभाशाली कवि के लिए यह असम्भव नहीं, पर मुझे सन्देह है कि नवमी ही को उन्होंने उतना लिख लिया होगा। रामनवमी का उत्सव भी तो बाधक हुआ होगा।

मेरा अनुमान है कि तुलसीदास ने अयोध्या मे पहले-पहल अयोध्या-कांड लिखा था। 'अवधपुरी यह चरित प्रकासा' से यही ध्वनि निकलती भी है। 'प्रकासा' भूतकालिक क्रिया है। इसके अर्थ की रक्षा तभी हो सकती है, जब हम या तो कुल 'मानस' को या कम-से-कम अयोध्या-कांड को उक्त चौपाई के लिखे जाने के पूर्व का रचा हुआ मान ले। बाल-कांड का प्रारम्भिक अंश तो सम्पूर्ण 'मानस' की भूमिका है, जो कम-से-कम अयोध्या-कांड या सम्पूर्ण मानस के बाद ही का लिखा हुआ होना चाहिए।

अयोध्या-कांड को तुलसीदास ने पहले रचा था, इसके प्रमाण मे मैं ये युक्तियाँ उपस्थित करता हूँ—

१—अयोध्या-कांड में तुलसीदास ग्रन्थारम्भ की यह सूचना देते है :

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
बरनौ रघुबर विमल जसु, जो दायकु फल चारि ।।

जब बाल-काण्ड में वे 'करौ कथा हरिपद धरि सीसा' कह ही चुके थे, तब अयोध्या-काण्ड मे फिर इसके दुहराने की क्या आवश्यकता थी ? ऐसा

आगे के और किसी काण्ड मे नही हुआ है ।

२—अयोध्या-काण्ड का एक निश्चित स्वरूप है । उसमें साधारणत. आठ चौपाइयों पर एक दोहा और पचीस दोहो पर एक छन्द तथा सोरठे का क्रम आदि से अन्त तक रखा गया है । यद्यपि दो-तीन स्थानों पर सात-सात चौपाइयों पर भी दोहा आ गया है, पर इससे यह प्रमाणित नही हो सकता कि अयोध्या-काण्ड की सारी रचना अपने-आप आठ-आठ चौपाइयों के बाद एक-एक दोहे की हो गई है और उसमें कवि का बुद्धि-प्रयोग कारण नहीं हुआ है । मेरा दृढ़ विश्वास है कि तुलसीदास ने अयोध्या-काण्ड में दोहे, चौपाई, छन्द और सोरठे का क्रम जान-बूझकर एक निश्चय के अनुसार रखा है । जहाँ कही इस क्रम का विपर्यय हुआ है, वह कवि की असावधानी भी कही जा सकती है, और यह भी हो सकता है कि वहाँ की चौपाई नकल करने वालों से छूट गई होगी, जैसा राजापुर के अयोध्या-काण्ड मे हुआ है, जिसे मैं आगे प्रमाणित करूँगा । जिस क्रम से अयोध्या-काण्ड की रचना हुई है. वह क्रम और किसी काण्ड मे दिखाई नहीं पड़ता । इससे स्पष्ट है कि अयोध्या-काण्ड का प्रारम्भ और अन्त किसी खास विचार-धारा मे हुआ है, और वह विचार-धारा आगे चलकर अन्य काण्डों मे बदल गई है ।

३—अयोध्या-काण्ड में उमा-महेश्वर-सम्वाद, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज-सम्वाद, गरुड़-काकभुशुण्डि-सम्वाद और गुरु-गोसाई-सम्वाद की कही गन्ध भी नहीं है । उसकी रचना के समय, कवि के हृदय मे 'मानस' और उसके 'घाट मनोहर चारि' की कल्पना भी नही जान पड़ती ।

४—अयोध्या-काण्ड की रचना आदि से अन्त तक प्रौढ़ है । उसमे कवि की सजगता सर्वत्र पाई जाती है । कहीं शिथिलता नहीं आने पाई है । वह सर्वाङ्ग सुन्दर और 'मानस' के शेष सब काण्डो से श्रेष्ठ है । उसमे उत्तम कविता के सभी लक्षण वर्तमान है । रसों का परिपाक उसमे बड़ी सफलता के साथ हुआ है, और विविध अलंकारों से उसकी सारी कविता जगमगा रही है । अयोध्या-काण्ड तुलसीदास की कविता का बसन्त है । उसमें कवि ने अपना पूर्ण विकास दिखलाने का प्रयत्न किया है । उनका ऐसा प्रयास और किसी काण्ड में नहीं मिलता । इससे वह सबसे पहले का रचा हुआ जान पड़ता है ।

५—अयोध्या-काण्ड के प्रारम्भ मे केवल शिव और राम की वन्दना है। यह भी इस बात का प्रमाण है कि उस समय तक तुलसीदास केवल शिव और राम के उपासक थे, अन्य देवों के झमेले मे नही पड़े थे । 'रामचरितमानस' नाम से एक बड़ा काव्य रचकर उसे धर्म-ग्रन्थ का रूप देने का विचार उनके

मन मे उस समय तक जागा ही नहीं था। अयोध्या-काण्ड लिखे जाने के पश्चात् काशी आने पर उनके मन मे यह विचार उठा कि राम-चरित्र को इस प्रकार लिखें कि सब सम्प्रदायों और सब श्रेणियों के लोग उससे लाभ उठायें। यह विचार उठते ही उन्होने अन्य देशों को सम्मिलित किया, प्राचीन सम्वादों से शृङ्खला जोड़ी, 'मानस' की कल्पना की और इस प्रकार जब उन्होंने अपने लिए एक नया राज-मार्ग खोल लिया, तब उस पर सम्वत् १६३१, चैत्र शुक्ला नवमी, मंगलवार को उन्होंने चलना प्रारम्भ किया। यही पर यह समझ लेना चाहिए कि ७ श्लोक, १० सोरठे, ३२८ चौपाइयाँ, ४४ दोहे और एक छन्द लिख लेने के बाद उन्होंने 'मानस' का प्रारम्भ किया है। अयोध्या-काण्ड स्वतन्त्र रूप से उसके पहले रचा जा चुका था, जो बाल-काण्ड की समाप्ति पर उसके आगे जोड़ लिया गया।

इतना ही नहीं, मै तो यह भी अनुमान करता हूँ कि अयोध्या-काण्ड समाप्त करके तुलसीदास ने बाल-काण्ड का अन्तिम भाग पहले लिखा और फिर बाल-काण्ड की प्रारम्भिक भूमिका लिखकर उसे पूरा किया। अयोध्या-काण्ड मे कवि की प्रतिभा का जैसा प्रकाश दिखाई पड़ता है, वैसा ही नहीं तो उससे थोड़ा ही क्षीण हम बाल-काण्ड मे राम और सीता के प्रथम दर्शन से लेकर अन्त तक पाते है। अयोध्या-काण्ड में कवि ने आदि से अन्त तक केवल करुण-रस का अविराम प्रवाह बढ़ाया है, काव्य के अन्य रसों की धाराएँ उसके हृदय में प्रबल वेग से उमड़ रही थीं और निकलने का मार्ग चाहती थीं। अतएव कवि के लिए यह स्वाभाविक था कि वह शृङ्गार और हास्य-रस के लिए भी मार्ग देता। और उसने राम का विवाह-प्रसंग लेकर उसके द्वारा अपनी स्वाभाविक सुरुचि और कवित्व-शक्ति का परिचय दिया भी है। इसके बाद तो वह कवि न रहकर भक्त और समाज-सुधारक बन गया है।

तुलसीदास की विचार-धारा में इतना बड़ा परिवर्तन कोई साधारण घटना नहीं है। वे कवि के रूप में हमारे सामने आते-आते भक्त और सुधारक का रूप धर लेते है। उस समय की उनकी मनोदशा की कल्पना भी हमें बड़ी ही मनोहर जान पड़ती है, जब वे जगत् के कल्याण का बीज बोने के लिए एक चतुर किसान की तरह खेत तैयार कर रहे थे। अयोध्या-काण्ड में कवि कहलाने की उनकी प्रबल इच्छा पद-पद पर झलक रही है; पर उसके उपरान्त ही उनकी वह यशोलिप्सा बुझ सी जाती है और वे लोक-हित की मूर्ति के निर्माण में लग जाते है।

६—अयोध्या-काण्ड के बाद बाल-काण्ड की रचना हुई है, इसके पक्ष में

एक :बल प्रमाण भी है। बाल-काण्ड के प्रारम्भ में तुलसीदास बार-बार जो 'भाषा' के सम्बन्ध में अपनी सफाई देते हैं और कहते हैं :

स्वान्तःसुखाय तुलसीरघुनाथगाथा
भाषा निबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।

उनके इस कथन में उस समय के बहुत से प्रश्न-कर्त्ताओं के इस प्रश्न का उत्तर भी है, जो पूछा करते थे कि संस्कृत में न लिखकर भाषा क्यों लिखते हो? इस पर तुलसीदास इससे अधिक सहज उत्तर क्या दे सकते थे कि मैं अपने लिए लिख रहा हूँ, दूसरों के लिए नहीं। इससे भाषा-सम्बन्धी एतराज़ करने की जगह ही नहीं रह जाती। भाषा के बारे में वे बार-बार कहते हैं :

भाषा भनिति मोरि मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहि खोरी।

× × ×

गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान।

× × ×

भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

क्या ये तुलसीदास से किये गए भाषा-सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं? और बाल-काण्ड के प्रारम्भ में जो उन्होंने निन्दकों, कुतर्कियों और मजाक उड़ाने वाले खलों का लम्बा वर्णन किया है, क्या वह अकारण है? उनको ध्यान से पढ़िए, तो मालूम होगा कि तुलसीदास केवल प्रसंगवश खलों की निन्दा में प्रवृत्त नहीं हुए थे बल्कि वे अपनी कविता पर किये गए आक्षेपों का उत्तर देने के लिए विवश थे।

बाल-काण्ड की भूमिका पढ़ते-पढ़ते यह धारणा दृढ होने लगती है कि बाल-काण्ड के पहले वे कोई काव्य-ग्रन्थ जरूर लिख चुके थे और जिस पर उनके विपक्षियों ने तरह-तरह के आक्षेप किये थे। तुलसीदास ने उन सबको चुन-चुनकर उत्तर दिये हैं। वह काव्य अयोध्या-काण्ड के सिवा और क्या हो सकता है?

शृङ्खला इस तरह मिलाइये—अयोध्या में बैठकर उन्होंने अयोध्या-कांड की रचना की। फिर उसे लेकर वे काशी आए। काशी में उसका पठन-पाठन जारी हुआ। उसकी सरस कविता पर लोग मुग्ध हुए, उसकी चर्चा हुई, उसे प्रसिद्धि मिली। भाषा-कविता का सम्मान बढ़ता देखकर संस्कृताभिमानी पंडित घबराए, उन्होंने उस पर आक्रमण किया, और तब तुलसीदास ने भी आक्रमणकारियों को विनय और नम्रता के सुन्दर परदे की आड़ से वाग्बाण मार-मारकर जर्जर कर दिया। विरोधियों के उपहास से उत्तेजित होकर ही

उनको यह आत्मश्लाघा करनी पड़ी थी :

खल उपहास होइ हित मोरा।
काक कहहि कलकंठ कठोरा ।।

और उसी वातावरण में उन्होंने अपने काव्य को धर्म-ग्रन्थ का रूप देने की ठानी और तब 'मानस' की सृष्टि हुई।

७--अन्तिम दलील मेरी यह है कि अयोध्या मे बैठकर सबसे पहले अयोध्या-कांड का प्रारम्भ करना एक राम-भक्त कवि के लिए बिलकुल स्वाभाविक था, और वैसा ही तुलसीदास ने किया भी। अयोध्या मे बाल-कांड और अरण्य-कांड की रचना करके वे फिर काशी आए और काशी मे रहकर उन्होंने किष्किधा-कांड की रचना की। उसका पहला सोरठा इस बात का प्रमाण है :

मुक्तिजन्म महि जानि, ग्यान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कस न।

चैत्र में उन्होंने अयोध्या मे 'मानस' का बाल-कांड प्रारम्भ किया था। सम्भवत: वर्षा ऋतु के आते-आते उन्होंने उसे समाप्त कर लिया होगा और फिर वे काशी आ गए। बाल-कांड को शीघ्र रचने की उनको आवश्यकता थी भी, क्योंकि उनको अपनी अयोध्या-कांड वाली कविता पर किये गए आक्षेपों का उत्तर भी देना था, जो बाल-कांड के प्रारम्भ में दिया गया है।

एक यह बात भी कही जाती है कि अयोध्या-कांड वहाँ पर समाप्त नही हुआ था, जहाँ इस समय समाप्त हुआ मिलता है, बल्कि वह अरण्य-कांड के इन छन्दों पर समाप्त हुआ था :।

कलिमल समन दमन दुख, राम सुजसु सुखमूल।
सादर सुनहि जे तिनहि पर, राम रहहि अनुकूल।।
कठिन काल मल कोस, धरम न ज्ञग्य न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहि भजहि ते चतुर नर।।

मुझे इसमें सत्य का अंश मालूम होता है। क्योंकि अयोध्या-कांड के अन्त का जो सोरठा है :

भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु, अवसि होइ भवरस विरति।।

इससे कांड की समाप्ति का बोध नहीं होता। इससे तो केवल भरत-चरित की समाप्ति जानी जाती है। अयोध्या-कांड की समाप्ति तो सचमुच अरण्य-

कांड के उक्त सोरठे पर मालूम होती है और अरण्य-कांड के प्रारम्भ का जो यह सोरठा है :

उमा राम गुन गूढ़ , पंडित मुनि पावहि विरति ।
पावहि मोह विमूढ़ , जे हरि विमुख न धरम रति ।।

यह अरण्य-कांड को अयोध्या-कांड से अलग करते समय उसके प्रारम्भ के दो श्लोकों के साथ रचकर मिलाया गया होगा । क्योंकि इसमें शिव और पार्वती का संवाद आ गया है, जो अयोध्या कांड भर में कहीं नहीं है । इसके आगे :

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई । मति अनुरूप अनूप सुहाई ।।

से लेकर 'रामहि भजहि ते चतुर नर' तक अरण्य-कांड था ।

सुन्दर और लङ्का-कांड वैसे जमकर नहीं लिखे गए, जैसे अयोध्या और और बाल-कांड लिखे गए थे । कवि की प्रतिभा उनमें थकी हुई सी जान पड़ती है, अथवा युद्ध तुलसीदास का विषय ही न था । उनमें बहुत ही थोड़े स्थानों पर कवि का चमत्कार दिखाई पड़ता है और वर्णन का एक बोझ सा उतारा गया है ।

उत्तर-कांड सबके अन्त का है, और वह अन्त ही में लिखा भी गया है । उत्तर-कांड में भक्त कवि फिर अपनी अन्तरात्मा के पास आ जाता है और अपनी पूरी प्रतिभा का उपयोग करता हुआ-सा दिखाई पड़ता है । यद्यपि यह कांड कविता की दृष्टि से साधारण है, पर भक्ति-सम्बन्धी विचारों के संकलन की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय है ।

'मानस' का शुद्ध पाठ

'रामचरितमानस' का जो स्वरूप इस समय प्राप्त है, वह तुलसीदास के समय में भी ऐसा ही था, यह कहना कठिन है । क्योंकि स्वयं तुलसीदास ने उसमें स्थान-स्थान पर काट-छाँट की होगी । वह उनकी मृत्यु से ४६ वर्ष पहले रचा गया था । इतने लम्बे समय में कवि ने उसमें काफी उलट-फेर किये होंगे । उसकी जितनी प्रतिलिपियाँ उनके जीवन-काल में और उनकी जानकारी में हुई होंगी, सबमें कुछ-न-कुछ शब्दों का परिवर्तन हुआ ही होगा । इससे जब तक उनके हाथ की अन्तिम संशोधित प्रति नहीं मिलती, तब तक किसी प्रति के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि मानस का शुद्ध पाठ यही है ।

तुलसीदास ने उत्तर-कांड के अन्त में 'मानस' की चौपाइयों की संख्या ५१०० बताई है :

सत पच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरे ।
दारुन अविद्या पच जनित विकार श्रीरघुबर हरे ।।

पंडित शिवलाल पाठक ने 'मानस-मयङ्क' में इसकी व्याख्या इस दोहे में इस प्रकार की है :

एकावन सत सिद्ध है, चौपाई तहँ चारु।
छन्द सोरठा दोहरा, दस ऋतु दस हज्जारु ॥

किन्तु इस समय 'रामचरितमानस' की किसी छपी हुई प्रति में ५१०० चौपाइयाँ नहीं मिलतीं। या तो हमारी गिनती में दोष है, या तुलसीदास ने अपने संशोधनों में जिन चौपाइयों को निकाल दिया था, उनकी पूर्ति उन्होंने नहीं की और वह कमी ज्यों-की-त्यों बनी रही। पर तुलसीदास के उक्त कथन से यह पता तो हमें चल ही गया कि 'मानस' की जिस प्रति में ५१०० चौपाइयाँ हों, वही शुद्ध है। इस ५१०० में क्षेपकों की रचना तुलसीदास ने नहीं की थी।

यहाँ 'मानस' की कुछ छपी हुई प्रतियों की छन्द-संख्या दी जा रही है।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित मानस की छन्द-संख्या इस प्रकार है :

कांड	कांडों के नाम		श्लोक	चौपाइयाँ	दोहे	सोरठे	अन्य छन्द
१	बाल-काड	....	७	१४८४½	३६१	३४	६०
२	अयोध्या-काड	...	३	१३०३	३१४	१३	१३
३	अरण्य-काड	...	२	२९७	७१	९	२९
४	किष्किन्धा-कांड	...	२	१५२½	३१	३	३
५	सुन्दर-कांड	...	३	२६३	६२	२	६
६	लंका-काड	...	३	५६०	१४८	९	६१
७	उत्तर-काड	...	७	५८७	२०६	१७	४२
		कुल	२७	४६४७	११९३	८७	२१४=६१६७

एक विस्तृत सूची स्व० पंडित महावीरप्रसादजी मालवीय ने स्वसम्पादित 'रामचरितमानस' में दी है। उसमें छन्दों की संख्या इस प्रकार है—

चौपाई	दोहे	सोरठे	छन्द कुल
४६५८	११७३	५५	२९१=६१७७

श्रीरामदास गौड़ ने ५१०० चौपाइयों का एक नया ब्यौरा तैयार किया है। वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :

"चौपाई का अर्थ ही है चार चरणों वाली। पिङ्गल के अनुसार तो सभी लौकिक पद्य चार-चार चरण के होते हैं। चौपाई ही में यह विशेषता नहीं है। अब देखना यह है कि मानसकार ने क्या माना है और रूढ़ि क्या है ?

अन्त्यानुप्रास की दृष्टि से देखिये तो दो-दो चरणों के ही तुक मिलते हैं, चार के नहीं। आदि से अन्त तक यही देखने में आता है। अयोध्या-कांड में आदि से अन्त तक आठ-आठ ऐसी द्विपदियाँ एक-एक समूह में रखी गई हैं। इसका व्यतिक्रम कहीं नहीं हुआ है। परन्तु और काण्डों में ऐसे किसी नियम का पालन नहीं है। लङ्का-काण्ड में स्तुति के दो डिल्लों के बीच में एक द्विपदी, अरण्य-काण्ड में गीध द्वारा स्तुति के पहले दो द्विपदियाँ, इसी तरह पाँच, सात, ग्यारह, तेरह, उन्नीस, उनतीस और सैंतीस तक (उत्तर १२१) द्विपदियाँ एक-एक समूह मे चार-चार चरणों की गिनती करने से एक-एक द्विपदी प्रत्येक समूह में छूट जायगी। अतः जहाँ समूह के भीतर द्विपदियों की सम संख्या है, वहाँ तो चार-चार चरणों की एक-एक चौपाई गिनी जानी चाहिए; परन्तु जहाँ विषम सख्या है, वहाँ दो-दो चरणों की, अर्थात् प्रत्येक द्विपदी, एक-एक चौपाई गिनी जानी चाहिए। इस मत का रूढ़ि से भी पोषण होता है। जायसी के 'पदमावत' में एक-एक समूह में नियम से सात-सात द्विपदियाँ है। पदमावतकार ने द्विपदी को ही चौपाई माना है। यह पोथी 'मानस' के कुछ पहले लिखी गई थी। 'मानस' में यह रूढ़ि और पिंगल का नियम दोनों ही बरते गए हैं। अतः हमने चौपाइयों की इस नियम के अनुसार गणना की तो भागवतदासादि वाली पोथी की गणना इस प्रकार आई :

बाल-काण्ड में	१५६८	चौपाइयाँ
अवध-काण्ड में	१३०४	चौपाइयाँ
अरण्य-काण्ड मे	३२९	चौपाइयाँ
किष्किन्धा-काण्ड में	१९५	चौपाइयाँ
सुन्दर-काण्ड में	३३७	चौपाइयाँ
लङ्का-काण्ड में	६८४	चौपाइयाँ
उत्तर-काण्ड मे	६८३	चौपाइयाँ
पूर्ण संख्या	५१००	चौपाइयाँ

जिन क्षेपक-रहित प्रतियों में चौपाइयों को यह संख्या आती हो उन्हें अवश्य अधिक शुद्ध समझना चाहिए।

'मानस' की जो प्रतियाँ शुद्ध कही जाती हैं, उनमें भी कहीं-कहीं अन्तर है। जैसे अरण्य-कांड में विराध-वध की किसी-किसी प्रति में एक ही चौपाई है। पर 'सभा' वाली प्रति में कई चौपाइयाँ है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि या तो स्वयं तुलसीदास ने या उनके बाद किसी भक्त ने विराव-वध की उन चौपाइयों को निकाल दिया, जिनमें विराध द्वारा सीता को उठा ले जाने

का वर्णन था। सीता के अग्नि-प्रवेश के पहले एक राक्षस द्वारा उनका अंग-स्पर्श भक्तों को अभीष्ट नहीं जान पड़ा होगा। और यह भी संभव है कि तुलसीदास ने स्वयं उन चौपाइयों को निकाल दिया हो, पर जिन प्रतियों में वे चौपाइयाँ पहले लिखी जा चुकी थीं, उनमें से उन्हें वे कैसे निकाल सकते थे? इससे दो प्रकार के पाठ पहले ही से चले आ रहे हैं—एक मूल प्रति के अनुसार, दूसरा संशोधित प्रति के अनुसार। यही कारण है कि प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों में भी पाठान्तर मिलता है

'रामचरितमानस' की प्राचीन प्रतियाँ

'रामचरितमानस' की जितनी प्राचीन प्रतियो का अभी तक पता लगा है, उनमें सबसे प्राचीन प्रति सं० १६६१ की है, जो अयोध्या में है। यह प्रति वासुदेव-घाट पर स्थित 'श्रावण-कुंज' नाम के एक मन्दिर में उसके महन्त श्रीजनककिशोरीशरणजी के अधिकार में है। उक्त मन्दिर मधुरअलीजी के स्थान के नाम से भी प्रसिद्ध है।

मैंने ता० १८ अक्तूबर, १६३५ को अयोध्या जाकर उक्त प्रति का निरीक्षण किया। उस समय उक्त महन्तजी मौजूद नहीं थे। पर मन्दिर के पुजारी गोविन्दप्रसादजी ने कृपा पूर्वक मुझे 'मानस' की उपर्युक्त प्रति देखने को दे दी। मैंने कई घण्टे लगातार बैठकर उसके बाल कांड को तो पूरा पढ़ डाला और शेष काण्डों को उलट-पुलटकर सरसरी तौर पर देख गया। इनमे केवल बाल-कांड ही प्राचीन है। शेष कांड पीछे से लिखकर पोथी पूरी कर ली गई है।

पोथी के ऊपर पहले पन्ने पर यह लिखा हुआ है:

श्रीमत जानकीरमण चरण कमल मकरदानुरागी श्रीमत श्री सीवलाल पाठकजी महाराज तस्या अनुग्रहीतदास रसोगी काशी के श्रीमत रामायण श्री तुलसी कीर्त सानन्द श्रीमत रघुवरसरन विकोरा (?) के श्री सीताराम-चर्णन की अनुराग (यहाँ एक इञ्च तक के अक्षर स्पष्ट पढ़े नही जाते) श्री बालकाण्ड श्री सीताराम पूर्णमस्तु (श्री सीताराम पूर्णमस्तु लिखकर एक लकीर से काट दिया गया है) श्री सं० १८८६ कातीक कृष्ण ५ रविवार श्री रघुवरसरन के पास रहै।

इसके सिवा और कोई लेख पहले पृष्ठ पर नहीं है। पहला पन्ना भीतर के अन्य पन्नों की अपेक्षा इतना अधिक मोटा है कि उसके मोटेपन का कारण जानने की इच्छा स्वभावतः उठ खड़ी होती है। मैंने उसे उठाकर धूप की तरफ करके देखा, तो एक ओर पन्ने के हाशिये पर एक पंक्ति में कुछ अक्षर और

झलकते हुए दिखाई पड़े। ध्यान देकर पढ़ने पर भी यद्यपि पूरी पंक्ति नहीं पढ़ी जा सकी, पर जो स्पष्ट पढ़ा जा सका, वह यह है—'रघुनाथ का मुनाय का लोभाय बस किया।' पन्ने की मोटाई को देखकर तो यह सहज ही में समझ में आ गया कि दो पन्ने चिपकाकर ऊपर के पन्ने को मोटा बना दिया गया है। पर धूप में झलकने वाले भीतर के अक्षरों को देखकर मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि प्राचीन पन्ने के ऊपर दूसरा नया पन्ना चढ़ाया गया है, और उस पर भी 'शिवलाल पाठक'-सम्बन्धी उपर्युक्त पंक्तियाँ लिख दी गई हैं।

चार पन्नों के उलटने पर पाँचवें पन्ने से आगे सारा बाल-कांड पहले चार पन्नों की अपेक्षा बहुत पुराने कागज पर और भिन्न कलम से लिखा हुआ मिलता है। पाँचवें पन्ने का पहला शब्द है – रीति। चौथे पन्ने की अन्तिम पंक्ति में 'उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहि खल' लिखकर पन्ने की पूरी लम्बाई तक जाने के पहले ही पंक्ति समाप्त कर दी गई है। पाँचवाँ पन्ना 'खल' के अगले शब्द 'रीति' से प्रारम्भ हुआ है। जान पड़ता है, प्राचीन प्रति के उपर्युक्त चार पन्ने नष्ट हो गए थे, उनके स्थान पर नये पन्ने लिखकर लगा दिये गए हैं। प्राचीन पन्नों का कागज भूरा, मटमैला-सा हो गया है और नवीन पन्नों का कागज हल्का पीलापन लिये हुए सफेद है। आकार दोनों का बराबर है। पन्नों की लम्बाई-चौड़ाई क्रमशः ६॥ इंच और ३॥ इंच के लगभग है। बीच में ९६ वाँ पन्ना भी उसी कागज पर और उसी कलम से लिखा हुआ मिलता है। जिस कागज पर और जिस कलम से आदि के चार पन्ने लिखे गए हैं। इस प्रकार पूरी प्रति में कुल पाँच पन्ने खण्डित हैं। मुझे पुजारी जी ने बताया कि ये पाँचों पन्ने तुलसीदास के एक बड़े प्रेमी श्री सीताप्रसाद के लिखे हुए हैं जो श्रावण-कुञ्ज के पड़ोस ही में रहते थे और जिन्होंने इस प्राचीन प्रति की रक्षा के लिए उसके पन्नों के किनारों पर पतले पतंगी कागज चिपका दिये हैं, जिससे सचमुच पन्नो के नुचने या फटने का भय कम हो गया है। उन्होंने अन्त के पन्ने की पीठ पर भी एक मोटा कागज चिपका दिया है और उस पर यह उल्लेख किया है कि उक्त प्रति भगवानदास की लिखी हुई है, जिन्होंने 'विनय-पत्रिका' लिखी थी, जो रामनगर (काशी)-निवासी एक चौधरी साहब के पास है। भगवानदास ने उस पन्ने की पीठ पर अपना नाम भी दिया है। पर कागज फटा जा रहा था, उसकी रक्षा के लिए पन्ने पर मोटा कागज चिपका दिया गया।

हाशियों पर जो पतंगी कागज चिपकाया गया है, वह भी सर्वत्र एक-सा नहीं है। ६७ पृष्ठों तक सफेद रंग का पतंगी कागज चिपकाया गया है, और उसके बाद बैंगनी कागज लगा है। ७७वें पृष्ठ पर यह कागज भी चुक गया

जान पड़ता है और ६८वे पृष्ठ से लाल रंग का कागज बढ़ाया गया है। लाल रंग का कागज भी आगे जाकर समाप्त हो जाता है और फिर सफेद पतंगी कागज लगाया गया है।

बाल-कांड के अन्तिम सोरठे का नं० २६२ दिया हुआ है। नम्बर के बाद यह पाठ है :

इति श्रीमद्रामचरितमानसे कलकलि कलुष विध्वसने प्रथमो सोपानः समाप्त ।

'ने प्रथमो सोपान समाप्त' इतना पंक्ति के बाहर दाहिनी ओर के हाशिये पर ऊपर की ओर जाकर समाप्त हुआ है। फिर पन्ने की अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है : 'सुभमस्तु सवत् १६६१ वैशाख सुदि ६ बुधे ।।'

अन्तिम पृष्ठ-संख्या १७७ है।

यह तो उक्त प्रति की बाहरी रूप-रेखा है। अब मूल पाठ में प्रवेश कीजिए तो प्रायः प्रत्येक पन्ने पर कुछ-न-कुछ संशोधन किया हुआ मिलेगा।

कहीं हरताल लगाकर पाठ शुद्ध किया गया है, कहीं स्याही से काटकर। जो पाठ लेखक की असावधानी से लिखने से छूट गया है, वह हाशिये पर लिख दिया गया है। हाशिये पर की कलम उसी लेखक की नहीं है, जिसने पूरी प्रति लिखी थी।

पृष्ठ ८० पर १५७ वें दोहे के बाद का पाठ ऐसा लिखा है :

फिरत विपिन आश्रम एक देखा।
तहँ बस भानु कर जानी।
आपन अति असमय अनुमानी।
गयउ न गृह मन बहुत गलानी।
मिला न राजहि नृप अभिमानी ।। रिस

इसके नीचे हाशिये पर यह लिखा है :

नृपति कपट मुनि वेषा ।।
जासु देस नृप लीन्ह छुडाई। समरसेन तजि गएउ पराई ।।
समय प्रताप २।

इसके पास ही किसी और कलम से लिखा है : 'यह दसखत श्री-तुलसीदास का है। राजपुर की पोथी मा मिलत है।' यह श्रीसीताप्रसादजी का लिखा हुआ कहा जाता है, जिन्होंने हाशिये पर कागज चढ़ाया था।

ऐसी ही एक छूट ४० वें पन्ने में भी हुई है। प्रचलित पाठ यह यह है :

केहि अवराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्य परम किन कहहू ।।
सुनत ऋषिन्ह के बचन भवानी। बोली गूढ मनोहर बानी ।।

कहत वचन मन अति सकुचाई । हसिहहु मुनि हमार जडताई ।।

इनमे 'किन कहहु' से लेकर 'कहत' तक का अंश छूट गया था। संशोधक ने पन्ने के बाये हाशिये पर 'किन कहहु' और 'कहत' लिखकर ऊपर-नीचे की दो चौपाइयाँ ठीक कर दी, पर बीच की चौपाई वह छोड़ ही गया। किसी ने 'किन कहत' और 'कहत' पर हरताल लगाकर फिर वही लिख दिया है। पर हरताल वाले ने भी बीच वाली चौपाई की कमी पर ध्यान नहीं दिया। किसी ने एक और ही कलम से छूटी हुई चौपाई पन्ने के नीचे की ओर हाशिये पर लिख दी है, पर इस समय उस पर पतंगी कागज चिपका हुआ है। कागज चिपकाने वाले ने भी उस चौपाई की आवश्यकता नहीं समझी। पर क्या तुलसीदास उस चौपाई की उपेक्षा कर सकते थे ? उस चौपाई के बिना तो कथा की लड़ी टूट जाती है। जान पड़ता है, या तो तुलसीदास ने उस पन्ने को देखा ही नहीं, या उन्होंने इस प्रति का संशोधन ही नहीं किया।

यद्यपि कई संशोधन हुए जान पड़ते है, पर अभी सशोधन की बहुत गुञ्जाइश है।

बीसवें पृष्ठ पर यह चौपाई है :

जेहि यह कथा मुनी नहि होई।
जनि आचज करै सुनि सोई।।

इसमे 'आचरज' का 'र' ही गायब है। इसी प्रकार १२९ वे पृष्ठ पर यह लिखा है :

पुनि नभ धनुमण्डल सम भयऊ।

इसमे स्पष्ट ही 'नभ' के स्थान पर 'धनु' होना चाहिए।

१५८ वे पृष्ठ के आगे वाले पन्ने पर ऊपर-ही-ऊपर हाशिये पर भिन्न कलम से यह लिखा है :

जाइ न बरनि मनोहर जोरी।
जो उपमा कछु कहौ सो थोरी।
राम सीय सुन्दर प्रति छाही।
जगमगात मनि खम्भन माही।।

इसके पास ही एक और ही कलम से हाशिये पर लिखा है :—

'यह दसखत गोस्वामी के है।'

१६७ वें पृष्ठ पर 'देखिहु रामहि नैन भरि, तजि इरिषा मद कोहू' पाठ दिया हुआ है। पर प्रचलित मानसों में 'कोहू' के स्थान पर 'मोहू' पाठ है, जो अधिक युक्ति-संगत जान पड़ता है।

पुस्तक मे बहुत से स्थानों पर दोहे और सोरठे के नम्बर ठीक नहीं दिये गए हैं। १२३ वें दोहे के बाद जो दोहा पड़ता है, उस पर नम्बर ही नहीं है। उसके आगे एक सोरठा है। उसका नम्बर १२४ दिया हुआ है। ४७ वें दोहे के बाद वाले दोहे पर भी नम्बर नहीं है। पर उसके आगे एक सोरठा है, उसका नम्बर ४८ दिया हुआ है।

१४६ वे के आगे वाले पृष्ठ के हाशिये पर भिन्न कलम से यह लिखा है :

सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसे।
सुरगुर संग पुरन्दर जैसे ॥

इसके ऊपर दूसरी कलम से पतले अक्षरों में लिखा है : 'ये दसखत तुलसीदास के अही। राजापुर की पोथी मा मिलत है।'

'सकै उठाइ सरासुर मेरू' के सरासुर के 'स' को किसी ने 'सु' बना दिया हैं। 'उ' की मात्रा गहरी काली स्याही से लगाई गई है, जो स्पष्ट दिखाई पड़ रही है। साथ ही उक्त प्रति के लेखक का 'उ' की मात्रा लगाने का जो ढंग है, उससे यह मात्रा मिलती भी नहीं। इससे मालूम होता है, इस प्रति के संशोधन में कइयों का हाथ लग चुका है।

पृष्ठ ९७ पर 'निज आयुध भुज चारी' पाठ है। जान पड़ता है, 'चारी' के स्थान पर 'धारी' पाठ था। किसी ने 'ध' की गरदन छीलकर उसे 'च' बनाया है। पर छीला जाना बहुत स्पष्ट नहीं है; कुछ भ्रम-सा होता है। इसमें तो शक नहीं कि 'चारी' की अपेक्षा 'धारी' पाठ अधिक सार्थक है। क्योंकि 'निज आयुध भुज चारी' से चारों भुजाओं के लिए चार आयुध होने का अर्थ निकलता है। पर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म मे शङ्ख और पद्म तो आयुध है नहीं। 'चारी' पाठ होने से अर्थ की संगति नहीं बैठती। और दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि तुलसीदास द्विभुज राम ही के उपासक थे। अतएव वे स्वयं 'भुजधारी' ही पाठ के पक्ष में होते। पर 'धारी' को छीलकर 'चारी' क्यों किया गया ? और किसने किया ? यह रहस्य समझ में नहीं आता। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि किसी ने जान-बूझकर 'ध' को छीलकर 'च' बनाया है। जिस 'ध' को 'च' बनाया हुआ बताया जाता है वह 'ध' उस प्रति के लेखक का हो ही नहीं सकता; क्योंकि वह तो दूसरे प्रकार का 'ध' लिखता है, जो 'आयुध' में बिलकुल पास ही है। 'आयुध' वाला 'ध' जितने स्थान मे लिखा हुआ है, 'चारी' के 'च' को 'ध' होने के लिए उतना स्थान नहीं है। अतएव यदि छीलना सही माना जाय, तो 'च' ही की कोई विकृति ठीक की गई होगी। अतएव किसी ने जान-बूझकर 'ध' का 'च' नहीं बनाया

है। और कोई वैरागी तो 'धारी' का 'चारी' बनाता ही क्यो ? किन्तु अगले पन्ने पर 'भयेउ प्रगट श्रीकन्ता' के सामने दाहिनी ओर हाशिये पर लिखा है— 'श्रीकान्ता के चारिभुजा' इसका अभिप्राय तो यही जान पड़ता है कि 'भुजचारी' को लेकर कभी विवाद उठा होगा और उसके समर्थन में 'श्रीकन्ता' को किसी ने प्रमाण रूप में उपस्थित किया होगा। उसी का संकेत हाशिये पर कर दिया गया है।

१२९ वें पृष्ठ से कलम कुछ पतली हो गई है और लिखावट भी बदली हुई सी लगती है।

मुझे उसमे कुछ अक्षरों के भी नये रूप देखने को मिले। कहीं-कहीं 'भ' 'ल' से मिलता-जुलता बनाया गया है। इससे कई स्थानों पर मुझे धोखा हुआ और मै 'नभ' को 'नल' पढ़ गया। 'र' और 'ह' की भी भिन्न-भिन्न सूरतें मिलीं। 'घ' भी दो प्रकार से लिखे हुए मिले। सारी पुस्तक मे 'रघुबीर' का 'घ' वैसा ही है, जैसा देवनागरी वर्णमाला मे इस समय वर्तमान है। पर उक्त प्रति में १२९ वें पन्ने के आगे जितने 'घ' अन्य शब्दों में आये है, प्रायः वे सभी अपनी खड़ी पाई से लटके हुए है, शिरो-रेखा से मिले हुए नही है। इससे मै यह परिणाम निकालता हूँ कि एक से अधिक व्यक्तियों ने सारी पुस्तक लिखी है।

आठवें पृष्ठ पर 'धीग धरमध्वज धधक धोरी' पाठ मिला। वर्तमान प्रचलित 'मानसो' मे यह 'धिग धरमध्वज धधक धोरी' है। मुझे 'धिग' की अपेक्षा 'धीग' अधिक सार्थक जान पड़ता है।

बारहवे पृष्ठ पर 'बदौ नाम राम रघुवर को' है। पर प्रचलित प्रतियों में 'बदौ राम नाम रघुबर को' पाठ मिलना है।

उक्त प्रति के प्रारम्भ में 'कृपासिधु नररूप हरि' ही पाठ है, 'कृपासिंधु नररूप हर' नहीं, जैसा मुन्शी शुकदेवलाल आदि ने माना है और अब भी काशी के पडित विजयानन्द त्रिपाठी आदि महानुभाव मान रहे है।

यही अयोध्या की प्रति का संक्षिप्त वर्णन है। इसमे तो संदेह ही नहीं, कि वह प्रति इस समय तक प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन है। पर उसके तुलसीदास द्वारा संशोधित होने मे मुझे सन्देह है, जब तक यह न स्वीकार कर लिया जाय कि तुलसीदास संशोधन करने मे काफी लापरवाही करते थे या वे स्वयं अशुद्ध लिखते रहे हों। पर ऐसे उद्भट विद्वान् और महाकवि के लिए ये दोनों शङ्काएँ व्यर्थ है।

हाशिये वाले सशोधन के अक्षरों को राजापुर की प्रति के अक्षरों से

मिलता हुआ पाकर यह अनुमान भिडाना कि अयोध्या वाली प्रति का संशोधन तुलसीदास का किया हुआ है, युक्तिपूर्ण नही है। क्योंकि राजापुर वाली प्रति तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई नहीं है, यह आगे प्रमाणित किया जायगा।

काशी के सरस्वती-भवन मे 'वाल्मीकि-रामायण' के उत्तर-कांड की एक प्रति सुरक्षित है, जो स० १६४१ की लिखी हुई है, और जिसके अन्त मे 'लि० तुलसीदासेन' लिखा हुआ भी है। उसे यदि सत्य माना जाय, तब तो अयोध्या की प्रति तुलसीदास के हाथ से संशोधित कही ही नहीं जा सकती, क्योंकि दोनों की लिखावट मे अन्तर स्पष्ट है।

अयोध्या वाली प्रति का सम्मान हमे केवल इसी दृष्टि से करना चाहिए कि वह तुलसीदास के जीवन-काल ही मे, उनके परलोक-वास से २० वर्ष पहले की लिखी हुई है और वही इस समय सबसे प्राचीन प्रति है। खेद है, कि हमने उसका उपयोग जैसा किया जाना चाहिए था, अभी तक नहीं किया।

'रामचरितमानस' की दूसरी प्रति, जो तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाती है, लखनऊ के पास मलीहाबाद मे है। वह मलीहाबाद स्टेशन से मील-सवा मील की दूरी पर मुंशीगंज मुहल्ले में एक मन्दिर के महन्त बाबा जनार्दनदास के अधिकार मे है। मै ता० २१ अक्तूबर, १९३५ को प्रात काल उक्त महन्तजी से मिला। उन्होंने तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाने वाली वह रामायण मुझे दिखलाई। दिखलाई क्यों? दिखलवाई। क्योंकि उक्त पोथी को वे स्नान किये बिना न छूते है, न किसी को छूने देते है। उनका पुत्र स्नान करके आया, तब उसने पोथी खोली और मेरी बगल मे बैठकर वह पन्ने उलटता गया और मै देखता गया।

मलीहाबाद की प्रति अवश्य प्राचीन है। उसकी लिखावट गहरी काली स्याही और मोटे कलम से है। कागज बहुत पुराना जान पड़ता है। पर न आदि मे, न अन्त मे कही उसके लिपिकार या लिखे जाने के संवत् का उल्लेख है। खेद है, मेरे पास उस समय राजापुर, अयोध्या और काशी की प्रतियों की लिखावट के फोटो नहीं थे, नहीं तो मै मिलान करके देखता कि उक्त पुस्तक की लिखावट किससे मिलती है। केवल स्मृति के आधार पर मै कोई ठीक निर्णय नहीं कर सका। उसमें कुछ संशोधन किया हुआ मुझे कहीं नहीं मिला। वह सातों कांड है। उसमे भी 'कृपासिन्धु नर रूप हरि' पाठ है।

उक्त प्रति के साथ बिना डॉडी का एक चश्मा भी रखा है, जिसे महंतजी ने तुलसीदास का चश्मा बताया। उसके बीचो-बीच, जहाँ वह नाक पर बैठता है, एक छेद है। उस छेद से एक तागा बँधा है, वह तागा माथे पर से होता

हुआ सिर पर जाकर चोटी से लपेट लिया जाता है। उसी के सहारे चश्मा दोनों आँखों के सामने लटकता रहता है। चश्मे के साथ एक माला भी है। उसे भी महन्त जी ने तुलसीदास की माला बतलाया।

उक्त महन्तजी के अधिकार मे 'मानस' की एक प्रति और है, जिसमे यह समय दिया हुआ है : "सवन् १७७६ समये चैत्र मासे शुक्ल पक्षे प्रतिपदाया तिथौ। लिखित द्वारिकादासेन वैष्णव केदारेश्वर समिपे।"

इस प्रति को मे हाथ मे लेकर देख सका। इसका पाठ कहीं-कहीं शुद्ध करके लिखा गया है। जैसे 'सत पच चौपाई मनोहर' के 'सत' को 'शत' लिखा है।

महंतजी के अधिकार मे वाल्मीकि रामायण, देवीभागवत, श्रीमद्भागवत, वेद, पुराण, उपनिषद्, ज्योतिष, व्याकरण और वैद्यक आदि की बहुत सी हस्तलिखित और प्राचीन पुस्तके है। खेद है वे न उनका उपयोग करते है, न कर सकते है और न शायद किसी को करने ही देगे। यद्यपि दीमकों ने उनकी स्वीकृति की प्रतीक्षा किये बिना ही कइयो का उपयोग कर डाला है।

'मानस' की एक प्राचीन प्रति सं० १७०४ की है, जिसका उल्लेख ना० प्र० सभा की १६०१ की खोज-रिपोर्ट मे है। मैंने इसे देखा है।

मानस के मूल पाठ को अशुद्ध करने मे उसके नकल करने वालों, टीकाकारों और सम्पादकों का भी हाथ है। तुलसीदास ने 'मानस' अवधी भाषा में लिखा है। उन्होंने अवधी की बोल-चाल, व्याकरण और मुहावरों का पूरा अनुसरण किया है। उन्होंने 'ष' के स्थान मे 'ख', 'य' के स्थान में 'ज', 'ज्ञ' के स्थान में 'ग्य', 'श' के स्थान में 'स', 'ण' के स्थान मे 'न' और 'ऋ' के स्थान में 'रि' लिखा है। जैसे बरखा, पौरुख, जोग, जग्य, जस, जोनि, ग्यान, बिग्यान, स्त्रुति, स्रवन, सिव, सोस, सिसु, दशरथ, कौसल्या, सुरेस, महेस, बान, प्रान, कारन, प्रन और तरनि आदि। मानस की प्राचीन प्रतियों मे ऐसा ही पाठ पाया जाता है। बाद के लिपिकारों ने तद्भव शब्दों को तत्सम कर दिया है और टीकाकारों और सम्पादकों ने उनकी रही-सही कमी भी पूरी कर दी। केवल पंडित शिवलाल पाठक ने 'मानस-मयंक' मे प्राचीनता की रक्षा की है। श्रीरामचरण-दास, शुकदेवलाल और बैजनाथ ने भी शब्दों का शुद्ध संस्कृत रूप दिया है। उन्होंने दसरथ को दशरथ, चरन को चरण, जग्य को यज्ञ, लखन को लषण और सीतल को शीतल लिखा है।

'मानस' का शुद्ध संस्करण छापने का पहला प्रयास खड्गविलास प्रेस के मालिक स्व० बाबू रामदीनसिंह ने किया था। उसके बाद काशी-नागरी-

प्रचारिणी-सभा ने अधिक-से-अधिक शुद्ध संस्करण निकाला। सभा ने उसमें समास-चिह्न तथा विराम आदि अपनी ओर से लगाकर 'मानस' का अर्थ समझने में सुविधा कर दी है।

पीछे से क्षेपक मिलाने वालों ने भी 'मानस' को विकृत करने में कम उद्योग नहीं किया है। तुलसीदास ने क्षेपकों की रचना नहीं की थी। केवल अयोध्या-कांड में एक प्रसंग ऐसा है जो अपने स्थान पर ठीक बैठता नहीं है और पीछे से मिलाया हुआ जान पड़ता है। पर उसकी रचना तुलसीदास ही की की हुई है, यह निर्विवाद मालूम होता है।

वह प्रसंग यह है—

"राम, लक्ष्मण और सीता मार्ग में चले जा रहे हैं। रास्ते के गाँव वाले उन्हें देखकर चकित होते हैं :

"जे तिन महँ वय बिरिधि सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥
सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सविषाद सकल पछिताही। रानी राय कीन्ह भल नाही॥

अभी गाँव वालों की बातें चल रही थीं कि आगे यह एक नया प्रसंग छिड़ जाता है :

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेजपुञ्ज लघु बयस सुहावा॥
कबि अलषित गति बेष बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥
दोहा—सजल नयन तन पुलकि निज, इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दड जिमि धरनितल, दसा न जाइ बखानि॥
राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रक जनु पारस पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरे तन कह सब कोऊ॥
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा॥
कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥

यह प्रसंग यहीं पर समाप्त हो जाता है और आगे गाँव वालों की बातें शुरू हो जाती हैं :

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे॥ इत्यादि।"

उक्त तापस के आ जाने से कथा-प्रवाह ही में नहीं विघ्न पड़ता, बल्कि अयोध्या-कांड की रचना का क्रम भी बिगड़ जाता है। पहले लिखा जा चुका है कि अयोध्या-कांड में आठ चौपाइयों पर एक दोहा और पच्चीस दोहों

पर एक छन्द देने का नियम आदि से अन्त तक निबाहा गया है। पर बीच में तापस की कथा आ जाने से इस स्थान पर २६वें दोहे पर छन्द पड़ गया है।

तापस कौन था ? बीच मे उसे क्यों लाकर खड़ा कर दिया गया ? और 'पियत नयन पुट रूप पियूखा' की दशा मे उसे वहीं क्यो छोड़ दिया गया ? इन प्रश्नों का उत्तर अब कौन दे सकता है ? तापस का प्रसंग 'सभा' वाली प्रति में भी है और राजापुर की प्रति मे भी है। पर श्रीरामचरणदासजी के संस्करण मे नहीं है। श्रीरामदास गौड़ ने भी स्वसम्पादित 'मानस' मे इस प्रसंग को नही रखा है। पता नहीं, तुलसीदास ने इसे रखा है या पीछे से किसी ने मिलाया है ? पर वहीं वह क्यो मिलाया गया ? आगे-पीछे उसके लिए और भी तो उपयुक्त स्थान थे।

राजापुर की प्रति

राजापुर में अयोध्या-कांड की जो हस्तलिखित प्रति रखी है, वह तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई बताई जाती है। पहले कहा जा चुका है कि राजापुर वाली प्रति की लिखावट 'वाल्मीकि-रामायण' की लिखावट से नहीं मिलती, जो तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई मानी जाती है। इससे वह तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई नहीं हो सकती। इसके सिवा कई स्थानों पर उसमे ऐसी त्रुटियाँ भी दिखाई पड़ती है जिनके आधार पर यह साहस के साथ कहा जा सकता है कि वह न तो तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई है, और न तुलसीदास ने उसे कभी पढा ही होगा। पढ़ा होता तो उन्होने उसकी त्रुटियाँ अवश्य दूर कर दी होतीं। राजापुर वाली प्रति मे जो त्रुटियाँ मिलती है, उनमें से कुछ ये है—

राजापुर की प्रति मे अयोध्या-कांड के २५६ वे दोहे के आगे का पाठ देखिए :

सकुचउँ तात कहत एक बाता।
भे प्रमोद परिपूरन गाता॥

अन्य प्रामाणिक प्रतियों मे यह पाठ मिलता है :

सकुचौं तात कहत एक बाता।
अरध तजहि बुध सरबस जाता॥
तुम्ह कानन गँवनहु दोउ भाई।
फेरिअहि लषन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता।
भे प्रमोद परिपूरन गाता॥

अब विज्ञ पाठक अनुमान कर सकते हैं कि बीच की चौपाइयों के बिना अर्थ की संगति नहीं बैठती और कथा की लड़ी भी टूट जाती है। जान पड़ता है कि राजापुर वाली प्रति किसी पुस्तक की नकल है जिसमें नकल करने वाले से 'बाता' और 'गाता' के धोखे में बीच की चौपाइयाँ छूट गई हैं।

ऐसी ही एक भूल २७९ वे दोहे के आगे भी है। उसमें यह पाठ है :

जाइ न बरनि मनोहरताई।
राम जनक मुनि आयसु पाई।।

पर प्रचलित रामायणों मे यह पाठ है :

जाइ न बरनि मनोहरताई।
जनु महि करति जनक पहुनाई।।
तब सब लोग नहाइ नहाई।
राम जनक मुनि आयसु पाई।।

अब आप देख सकते हैं कि यहाँ भी नकल करने वाला 'ताई' और 'पाई' का तुक मिला हुआ देखकर धोखे में बीच की दो चौपाइयाँ छोड़ गया है।

और देखिए, २९१ वे दोहे के आगे यह पाठ है :

करि प्रनाम तब राम सिधाये।
सील सनेह सुभाय सुहायै ।।

पर प्रचलित रामायणों मे यह पाठ है :

करि प्रनाम तब राम सिधाये।
रिषि धरि धीर जनक पहि आये।।
राम बचन गुरु नृपहि सुनाये।
सील सनेह सुभाय सुहाये।।

यहाँ भी 'सिधाये' और 'सुहाये' के धोखे मे लेखक का दृष्टि-दोष स्पष्ट है।

इन्हीं प्रमाणों के आधार पर निस्सन्देह कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने राजापुर वाली प्रति अपनी आँख से देखी भी नहीं। नहीं तो चौपाइयों की कमी उन्हें अवश्य खटकती और छूटी हुई चौपाइयों को वे कहीं-न-कहीं हाशिये पर लिख देते।

पर इसमे सन्देह नहीं कि राजापुर की प्रति भी बहुत पुरानी है और वह तुलसीदास के हाथ की न होने पर भी उनके समय की या उनके बाद थोड़े ही समय पीछे की अवश्य है। क्योकि उसका कागज भी बहुत पुराना है और

उसकी लिखावट भी पुरानी है।

मैंने कई वर्ष पहले अपने एक लेख में जनश्रुति के आधार पर यह सूचना दी थी कि राजापुर की प्रति किसी रघुबर तिवारी के हाथ की लिखी हुई है। इस पर मेरे माननीय मित्र रायबहादुर लाला सीताराम ने मेरे उक्त लेख के उत्तर में एक लेख 'माधुरी' में प्रकाशित कराया था। उससे मेरी शंका पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। मैं यहाँ उसका उद्धरण देता हूँ—

"आजकल रघुवर तिवारी का नाम सुनकर लोग चौंक पड़ेंगे; परन्तु रघुबर तिवारी के हाथ की वि० १७०४ (गोस्वामीजी के परम पद पाने से २४ ही वर्ष पीछे) की लिखी पोथी के ३ पृष्ठों का फोटो-चित्र 'मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दोस्तान' में दिया हुआ है, और उसके एक-एक पृष्ठ का अंग्रेजी रूपान्तर भी छपा है पहला पृष्ठ बाल-कांड का है,दूसरा किष्किन्धा और तीसरा लंका का। पहले में लेखक का नाम नहीं है। इससे वह अनुपयोगी समझकर छोड़ दिया जाता है। दूसरे और तीसरे पृष्ठों की नकल नीचे दी जाती है :

२. (म) सुभन परम पद पावई।
रघुवीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई।।
दोहा—भवभेषज रघुनाथ जसु, सुनहि जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहि त्रिसिरारि।।
सोरठा—नीलोत्पल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिय तासु गुन ग्राम, जासु नाम अघपग वधिक।।

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विसुद्ध संतोष सम्पादिनी नाम चतुर्थस्सोपानः समाप्तः। शुभमस्तु संवत् १७०४ समए पौष सूदि द्वादसि लिषीतं रघु तिवारी कास्यां।

३ (लंकाकांड का अन्त)

······दास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो।।
यह रावनारिचरित्र पावन रामपदरतिप्रद सदा।
कामादिहर बिज्ञानकर सुर सिद्धि मुनि गावहि मुदा।।
दोहा—समर विजय रघुपतिचरित, सुनहि जे सदा सुजान।
बिजय बिबेक विभूति नित, तिनहि देहि भगवान।।
यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु विचार।
श्री रघुनायक नाम तजि, नहि कछु आन अधार।।

इति श्री रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमल विराग संपादिनी

नाम षष्ठः सोपानः समाप्तः। शुभमस्तु सवत् १७०४ समए। माघ सुदि प्रतिपद लिषीतं रघु तिवारी कास्यां लोलार्क समीपे। श्रीरामो जयति। श्रीविश्वनाथाय नमः। श्रीविंदुमाधवाय नमः।

राजापुर की पोथी पर लेखक के हस्ताक्षर नहीं हैं। इस प्रति में प्रत्येक कांड के अंत में लेखक का नाम दिया हुआ है। कहीं 'रघु तिवारी है', कहीं 'रघु तीवारी'। दोनों के अक्षरों में आकाश-पाताल का अन्तर है।"

यह प्रति अब दुर्लभ है।

मानस-मधु

खोजने से संस्कृत-ग्रन्थों मे 'रामचरितमानस' के बहुत से दोहों, सोरठो, छन्दों और चौपाइयों के मूल मिल जायँगे। यह देखकर महान् आश्चर्य होता है कि तुलसीदास जी ने संस्कृत-ग्रन्थों का कैसा सूक्ष्म अध्ययन किया था। अब यह प्रश्न स्वभावतः सामने आता है कि क्या संस्कृत के सम्पूर्ण ग्रन्थ तुलसीदास को कंठस्थ थे? हम जितने ही गहरे जाते है, उतना ही उनके अद्वितीय रामायण की अद्भुत प्रतिभा देखकर चकित हो जाते है। संस्कृत नन्दन-कानन में विचरण करके तुलसीदास रूपी मधुप ने समस्त फूलों का रस लेकर जो मधु तैयार करके हिन्दू-जाति को दान किया है, उसकी तुलना संसार के किसी दान से नहीं की जा सकती। जैसे मधु अनेक शारीरिक व्याधियों को नाश करने में औषधियों को सहायता पहुँचाता है, वैसे ही 'रामचरितमानस' रूपी मधु अनेक मानसिक व्याधियों को नाश करने में सहायक होता है।

तुलसीदास ने 'मानस' में वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, श्रीमद्भागवत, प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक से अधिक सहायता ली है। इनके सिवा संस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रन्थों के श्लोकों को भी चुन-चुनकर उन्होंने उनका रूपान्तर करके 'मानस' में भर दिया है। कहीं-कहीं एक चौपाई के भाव किसी एक पुराण से लिये गए है तो उसके आगे की चौपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के है और उसके भी आगे की चौपाई में किसी नाटक या नीति-ग्रन्थ के भाव है। ऐसे स्थानों पर तो तुलसीदास के मस्तिष्क की महिमा देखते ही बनती है। मानो संस्कृत के दो-ढाई सौ ग्रन्थों के लाखो श्लोकों पर उनका एक सम्राट् की तरह अधिकार था, और वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वहीं बुला लेते थे।

यहाँ संस्कृत-ग्रन्थों से लेकर कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :

अध्यात्म-रामायण	रामचरितमानस
प्रातरुत्थाय सुस्नातः	प्रात काल उठिकै रघुनाथा।
पितरावभिवाद्य च।	मात पिता गुरु नावहिं माथा ॥
पौरकार्याणि सर्वाणि	आयसु माँगि करहिं पुर काजा।
करोति विनयान्वित ॥	देखि चरित हरषहिं मन राजा ॥
बन्धुभिस्सहितो नित्य	वेद पुरान सुनहिं मन लाई।
भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम्।	आपु कहहिं अनुजहिं समुझाई ॥
धर्मशास्त्ररहस्यानि	जेहि विधि सुखी होहि पुरलोगा।
शृणोति व्याकरोति च ॥	करहिं कृपानिधि सोइ संयोगा।
गोप्य यदत्यन्तमनन्यवाच्य	गूढौ तत्त्व न साधु दुरावहिं।
वदन्ति भक्तेषु महानुभावा।	आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥
भरणाद् भरतो नाम	विस्व भरन पोषनकर जोई।
लक्ष्मण लक्षणान्वितम्।	ताकर नाम भरत अस होई ॥
शत्रुघ्न शत्रुहन्तार	जाके सुमरिन ते रिपु नासा।
मेवगुरुरभाषत ॥	नाम शत्रुहन वेद प्रकासा ॥
यस्मिन्नलन्ते मुनयो	लक्षण धाम राम प्रिय,
विद्ययाऽज्ञानविप्लवे।	सकल जगत आधार।
तग गुरु प्राह रामेति	गुरु वसिष्ठ तेहि राखेउ,
रमणाद्राम इत्यपि ॥	लक्ष्मण नाम उदार ॥
	जो आनन्दसिन्धु सुख रासी।
	सीकरते त्रैलोक सुपासी ॥
	सो सुखधाम राम अस नामा।
	अखिल लोक दायक बिस्रामा ॥
क्षालयामि तव पादपंकजम्।	चरन कमल रज कहँ सब कहई।
नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ॥	मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
मानुषीकरणरेणुरस्ति ते	
पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥	
ततोऽपि मरण श्रेयो	नैहर जन्म भरब बरु जाई।
यत्सपत्न्याः पराभव.।	जियत न करब सवति सेवकाई ॥

अध्यात्म-रामायण—	रामचरितमानस—
ब्रूहि कं धनिक कुर्यां दरिद्रं ते प्रियकरम् । धनिन क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम् ।।	कहु केहि रकहि करौ नरेसू । कहु केहि नृपति निकारौ देसू ।।
०	०
तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् । राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ।।	परी न राजहि नीद निसि, हेतु जानु जगदीस । राम-राम रटि भोर किय, कहेउ न मरमु महीस ।।
०	०
अहोऽतिसफल जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः । राममेव सदान्वेति बलस्थमपि हृष्टधी. ।।	अहह धन्य लछिमन बड़ भागी । राम पदारविन्द अनुरागी ।।
०	०
आगमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुज । मा को धर्पयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा ।।	कह सीता धरि धीरज गाढा । आय गए प्रभु शठ रहु ठाढा ।। जिमि हरिबधुहिं छुद्र सस चाहा ।।
०	०
अवतीर्णाविहपरौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती । जगत्स्थितिलयोत्सर्ग लीलया कर्तुमुद्यतौ ।। स्वतन्त्रौ प्रेरकौसर्व हृदयस्थाविहेश्वरौ ।। नरनारायणौ लोके चरन्ताविति ते मति. ।।	की तुम तीन देव महँ कोई । नर नारायन की तुम दोई ।। जग कारन तारन भव, भजन धरनी भार । की तुम अखिल भुवनपति. लीन्ह मनुज अवतार ।।
०	०
उवाचाधोमुखी भूत्वा विधाय तृणमन्तरे।	तृन धरि ओट कहति बैदेही ।
०	०

अध्यात्म-रामायण	रामचरितमानस
अग्रे यास्याम्यहं पश्चात्	आगे राम लखन पुनि पाछे।
त्वमन्वेहि धनुर्धर ।	तापस बेष बिराजत आछे ॥
भ्रातृयोर्मध्यगा सीता	उभय बीच सिय सोहति कैसे।
मायेवात्मपरात्मनो ॥	ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ॥

० ० ०

श्रीमद्भागवत	
क्षणार्द्धेनापि तुलये	तात स्वर्ग अपवर्ग सुख,
न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।	धरिय तुला इक अंग ।
भगवत्संगिसंगस्य	तुलै न ताहि सकल मिलि,
मर्त्यानां किमुताशिष ॥	जो सुख लव सतसंग ॥

० ० ०

निशामुखेषु खद्योता-	
स्तमसा भान्ति न ग्रहा. ।	निसि तम घन खद्योत बिराजा।
यथा पापेन पाखण्डा	जनु दंभिन कर जुरा समाजा ॥
नहि वेदाः कलौ युगे ॥	
श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं	
मण्डूका व्यसृजन् गिर ।	दादुर धुनि चहुँओर सुहाई।
तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्	बेद पढ़ै जनु बटु समुदाई ॥
ब्राह्मणा नियमात्यये ।	

० ० ०

गिरयो वर्षधाराभि-	
र्हन्यमाना न विव्यथु ।	बुन्द अघात सहे गिरि कैसे।
अभिभूयमाना व्यसनै-	खल के बचन संत सहे जैसे ॥
र्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥	

० ० ०

लोकबन्धुषु मेघेषु	
विद्युतश्चलसौहृदा ।	दामिनि दमक रही घन माहीं।
स्थैर्यं न चक्रु. कामिन्यः	खल की प्रीति जथा थिर नाहीं ॥
पुरुषेषु गुणिष्विव ॥	

० ० ०

श्रीमद्भागवत	रामचरितमानस
मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन शिखण्डिन. । गृहेषु तप्ता निर्विण्णा· यथाऽऽच्युतजनागमे ॥	लछिमन देखहु मोरगन, नाचत बारिद पेखि । गृही विरति रत हर्षयुत, विष्णु भक्त कहँ देखि ॥
०	०
जलौघैः निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे । पाखण्डिनामसद् वादै- र्वेदमार्गा. कलौ यथा ॥	हरित भूमि तृन सकुल, समुझि परै नहि पथ । जिमि पाखड विवाद ते, लुप्त भए सद्ग्रथ ॥
०	०
शरदा नीरजोत्पत्या नीराणि प्रकृति ययु । भ्रष्टानामिव चेतासि पुनर्योगनिपेवया ॥	सरिता सर निर्मल जल सोहा । सत हृदय जस गत मद मोहा ॥
०	०
गाधवारिचरास्ताप- मविदन् शरदर्कजम् । यथा दरिद्र· कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रिय ॥	जल सकोच बिकल भये मीना । विविध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥
०	०
शनै शनैर्जहुः पङ्क स्थलान्याम च वीरुध. । यथाह ममता धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥	रस रस सोष सरित सर पानी । ममता त्याग करहि जिमि ज्ञानी ॥
०	०
सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम- सविद्युत्स्तनयित्नुभि· । अस्पष्टज्योतिराच्छन्न- ब्रह्मे व सगुणम्बभौ ॥	फूले कमल सोह सर कैसे । निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसे ॥
०	०

श्रीमद्भागवत	रामचरितमानस
वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे । वर्षरुद्धा यथा सिद्धा- स्स्वपिण्डान् काल आगते ॥	चले हर्ष तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि । जिमि हरि भक्ती पाइ जन, तजहि आश्रमी चारि ॥
०	०
न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ।	सूर कठिन करनी करहिं, कहि न जनावहि आप ।
०	०
स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृता. । उदिता स्तमितप्राया अल्पसत्वाल्पकायुष. ॥ असंस्कृता क्रियाहीना रजसा तमसावृता । प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिण ॥ तन्नाथास्ते जनपदा- स्तच्छीलाचारवादिन: । अन्योन्यतो राजभिश्च क्षय यास्यन्ति पीडिता: ॥ राजानश्च प्रजाभक्षा ।	द्विज श्रुतिबंचक भूप प्रजासन । कोउ नहि मान निगम अनुसासन ॥ वर्न धर्म नहि आस्रम चारी । श्रुति-विरोध-रत सब नर-नारी ॥
०	०
अनाढ्यतैवा साधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु । वित्तमेव कलौ नृणा जन्माचारगुणोदय: ॥	मिथ्यारंभ दंभ रत जोई । ता कहुँ सत कहै सब कोई । सोइ सयान जो परधनहारी । जो करु दंभ सो बड आचारी ।
०	०
पाण्डित्ये चापल वच: ।	पंडित सोइ जो गाल बजावा ।
०	०
शूद्रा. प्रतिगृहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविन ।	शूद्र करहि जप तप ब्रत दाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ।

श्रीमद्भागवत	रामचरितमानस
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा	
अधिरुह्योत्तमासनम् ॥	
०	०
नित्यमुद्विग्नमनसो	कलि बारहि बार दुकाल परै,
दुर्भिक्षकरपीडिता ।	बिनु अन्न दुखी बहु लोग मरै ।
निरन्ने भूतले राजन्-	नृप पापपरायन धर्म नही ;
अन्नावृष्टिभयातुरा ॥	करु दंड बिदंड प्रजा नितही ।
वासोऽन्नपानशयन-	तामस धर्म करहि नर,
व्यवायस्नानभूषणै ।	जप तप मख ब्रत दान ।
हीना पिशाचसंदर्गा	देव न बरषहि धरनि पर,
भविष्यन्ति कलौ प्रजा ॥	बए न जामहि धान ॥
०	०
कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे	ब्रह्मज्ञान बिनु नारि-नर,
विगृह्य त्यक्तसौहृदा ।	कहहि न दूसरि बात ।
त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान्	कौडी कारन मोहबस,
हनिष्यन्ति स्वकानपि ॥	करहि विप्र गुरु घात ॥
०	०
अव्रता वटवोऽशौचा	बहु धाम सँवारहि जोग जती;
भिक्षवश्च कुटुम्बिन ।	विषया हरि लीन गई बिरनी ।
तपस्विनो ग्रामवासा	तपसी धनवन्त दरिद्र गृही;
न्यासिनो ह्यर्थलोलुपा ॥	कलि कौतुक तात न जात कही ।
०	०
लावण्ये केश धारणम् ।	अबला कच भूषन भूरि छुधा;
ह्रस्वकाया महाहारा	धनहीन दुखी ममता बहुधा ।
भूर्यपत्या गतह्रिय ।	सुख चाहहि मूढ न धर्मरता;
शश्वत्कटुकभाषिण्य-	मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥
श्चौर्यमायोरुसाहसा ॥	
०	०
कलेर्दोषनिधे राज-	कलियुग मम युग आन नहि,
न्नस्ति ह्येको महान् गुण ।	जो नर कर बिस्वास ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य	गाइ रामगुन गन विमल,
मुक्तसग पर ब्रजेत् ॥	भव तरु विनहि प्रयास ॥
०	०

श्रीमद्भागवत

कृते यद्ध्यायतो विष्णु
त्रेताया यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां
कलौ तद्धरि कीर्तनात् ।।

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरो
स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् ।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां
शास्ता स्वपित्रो शिशुः ।।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां
तत्त्वं परं योगिनां ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो
रंगगतः साग्रजः ।।

रामचरितमानस

कृतयुग सब जोगी विज्ञानी,
करि हरिध्यान तरहिं भव प्रानी ।
त्रेता विविध यज्ञ नर करहीं;
प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं ।
द्वापर करि रघुपति पद पूजा,
नर भव तरहिं उपाय न दूजा ।
कलि केवल हरिगुनगन गाहा;
गावत नर पावहिं भव थाहा ।

कलियुग जोग जग्य नहिं ज्ञाना;
एक अधार रामगुन गाना ।
सब भरोस तजि जो भज रामहिं;
प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं ।
सो भव तरु कछु ससय नाहीं,
नाम प्रताप प्रकट कलि माहीं ।
रंगभूमि आये दोउ भाई,
अस सुधि सब पुरबासिन्ह पाई ।
जिन्ह के रही भावना जैसी ।
हरि मूरति देखी तिन्ह तैसी ।
देखहिं भूप महा रनधीरा ।
मनहुँ बीररस धरे सरीरा ।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी ।
मनहुँ भयानक मूरति भारी ।
रहे असुर छल छोनिप बेखा ।
तिन्ह प्रभु प्रकट काल सम देखा ।
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई ।
नर भूषन लोचन सुखदाई ।
नारि बिलोकहिं हरषि हिय,
निज-निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत शृङ्गार धरि,
मूरति परम अनूप ।।

रामचरितमानस

बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा।
बहु मुख, कर,पद,लोचन, सीसा।
जनक जाति अवलोकहि कैसे।
सजग सगे प्रिय लागहि जैसे।
सहित बिदेह बिलोकहि रानी।
सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी।
जोगिन्ह परम तत्त्व मय भासा;
सत सुद्ध मन सहज प्रकासा।
हरि-भगतन देखे दोउ भ्राता,
इष्टदेव इव सब सुखदाता।
रामहि चितव भाव जेहि सीया
सो सनेह सुख नहि कथनीया।
उर अनुभवति न कहि सक कोऊ।
कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ ?
जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ,
तेहि तस देखेउ कोसलराऊ।"

० ० ०

प्रसन्नराघव (नाटक)

कामातुरस्यवचसामिव सविधानै— रभ्यर्थित प्रकृतिचारु मनः सतीनाम्।	डगइ न शभु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे॥
० ०	०
अलमिति क्षीरकण्ठे कठोरकोपतया।	नाथ करिय बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिय न कोहू॥
० ०	०
आः किमुच्यते क्षीरकण्ठ इति। बिषकण्ठः खल्वसौ।	कालकूट मुख पय मुख नाही॥
० ०	०
अयि देव्याकर्ण्य तावत्यत् संदिष्टं देवेन देव्याः- हिमांशुश्चण्डांशु- र्नवजलधरो दावदहनः।	कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहँ सकल भयउ विपरीता॥ नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥

प्रसन्नराघव (नाटक)

सरिद्वीचीवान: कुपित-
फणिनि श्वासपवन ।
नवा मल्ली भल्ली
कुवलयवन कुन्तगहन.
मम त्वद्विश्लेपात्
सुमुखि विपरीत जगदिदम् ।।
अपि च—
कास्याख्यायव्यतिकरमिम
मुक्तदु.खो भवेय
को जानीते निभृतमुभयो-
रावयो स्नेहसारम् ।
जानात्येक शशधरमुखि
प्रेमतत्त्व मनो मे
त्वामेवैतत् चिरमनुगत
तत् प्रिये कि करोमि ।।

रामचरितमानस

कुबलय बिपिन कुन्त बन सरिसा ।
बारिद तपत तेल जनु बरिसा ।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा ।
उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ।
कहेहु ते कछु दुख घटि नहि होई ।
काहि कहउँ यह जान न कोई ।।
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा ।
जानत प्रिया एक मन मोरा ।।
सो मन रहत सदा तोहि पाँही ।
जानु प्रीति रस एतनेहि माँही ।।

० ० ०

रावण

मा जीवय नयनामृतेन—
मदोदरीमपि विमुञ्चति राज्यमेत-
दप्युन्मदं तव पदाब्जतले करोति ।

कह रावन, सुनु सुमुखि सयानी !
मदोदरी आदि सब रानी ।
तव अनुचरी करौं पन मोरा ।
एक बार बिलोकु मम ओरा ।

० ० ०

यदि खद्योतभासापिसमुन्मीलात
पद्मिनी ।

× × कहति बैदेही ।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा ।
कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ?

० ० ०

आ पापे ! यावत् किलतपन-
खद्योतयोस्तावदंतरं रामरावणयो ।
तदिय हन्यसे ।
(इति खड्गमुत्पाटयति ।

आपुहि सुनि खद्योत सम,
रामहि भानु समान ।
परुप बचन सुनि काढि असि,
बोला अति खिसियान ।।

० • •

प्रसन्नराघव (नाटक)	रामचरितमानस
रावण	
तदिदानीमपि दशकंठभुजाश्लेष-	सीता, तैं मम कृत अपमाना;
भेषजमनुजानीहि ।	कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना ।
	नाहित सपदि मानु मम बानी;
	सुमुखि होत न तु जीवन हानी ।
० ०	०
रघुपतिभुजदंडा-	स्याम सरोज दाम सम सुन्दर ।
दुत्पलश्यामकांते–	प्रभु भुज करिकर सम दसकंधर ।
दशमुख भवदीयान्	सो भुज कंठ कि तव असि घोरा ।
निष्कृपाद्वा कृपाणात् ।	सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा ।
० ०	०
चन्द्रहास हर मे परितापं ।	चन्द्रहास हर मम परितापं ।
रामचन्द्रविरहानलजातम् ।	रघुपति बिरह अनल संजातं ।
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्णं ।	सीतल निसित बहसि बर धारा ।
धारया वहसि शीतलमंभः ।	कह सीता हरु मम दुख भारा ।
० ०	०
कमठपृष्ठकठोरमिदं धनु-	कहँ धनु कुलिसहुँ चाहि कठोरा,
र्मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दन ।	कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा ।
कथमधिज्यमनेन विधीयताम्	अहह तात दारुन हठ ठानी,
अहह तात पणस्तव दारुणः ॥	समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ।
० ०	०
हनुमन्नाटक	
आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतयः	दीप दीप के भूपति नाना,
सर्वे समभ्यागताः	आये सुनि हम जो पन ठाना ।
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः	कुँवरि मनोहरि बिजय बड़ि,
कीर्तेश्च लाभः परः ।	कीरति अति कमनीय ।
नाकृष्टं न च टंकितं न नमितं	पावनहारु बिरंचि जनु,
नोत्थापितं स्थानतः	रचेउ न धनु दमनीय ॥
केनापीदमहो महद्धनुरिदं	कहहु काहि यह लाभ न भावा,
निर्वीरमुर्वीतलम् ॥	काहु न संकर चाप चढ़ावा ।

हनुमन्नाटक

देव श्रीरघुनाथ किम्बहुतया
दासोऽस्मि ते लक्ष्मण ।
मेर्वादीनपि भूधरान् न गणये
जीर्ण पिनाक कियान् ।।
तन्मामादिश पश्य पश्य च बल
भृत्यस्य यत् कौतुकम् ।
प्रोद्धर्तुं प्रतिनामितु प्रचलितु
नेतु निहन्तु क्षम ।

शृणुत जनककल्पा क्षत्रिया शुल्कमेत,
दशवदनभुजाना कुण्ठिता यत्र शक्ति ।
नमयतु धनुरैश यस्तदारोपणेन,
त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दाराः ।।

रामचरितमानस

रहा चढाउब तोरब भाई,
तिल भर भूमि न सकेउ छुडाई ।
अब कोउ जनि माखै भट मानी,
बीर बिहीन मही मै जानी ।

सुनहु भानुकुल पङ्कज भानू,
कहौं स्वभाव न कछु अभिमानू ।
जो राउर अनुसासन पाऊँ,
कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ ।
काचे घट जिमि डारौ फोरी,
सकौ मेरु मूलक इव तोरी ।
तव प्रताप महिमा भगवाना,
का बापुरो पिनाक पुराना ।
नाथ जानि अस आयसु होऊ,
कौतुक करौ बिलोकिय सोऊ ।
कमलनाल जिमि चाप चढावौ,
सत जोजन प्रमान लै धावौ ।

बोले बन्दी बिरद बर,
सुनहु सकल महिपाल ।
प्रन बिदेह कर कहहि हम,
भुजा उठाइ बिसाल ।।
नृपभुजबल बिधु शिव धनु राहू ।
गरुअ कठोर बिदित सब काहू ।
रावन बान महा भट भारे,
देखि सरासन गवहि सिधारे ।
सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा,
राजसमाज आज जेहि तोरा ।
त्रिभुवनजय समेत बैदेही,
बिनहि बिचार बरिहि हठि तेही ।

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
लक्ष्मण रामे सज्य धनुर्कुर्वति सति पृथ्वादीनि भुवनान्यधो यास्यन्ति इति आशङ्कया आह— 'पृथ्वि स्थिरा भव भुजङ्गम धानयैना त्वं कूर्मराज तदिद द्वितय दधीथाः। दिक्कुञ्जरा. कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षा, राम: करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥	लखन लखेउ रघुवस-मनि, ताकेउ हर कोदण्ड। पुलकि गात बोले बचन, चरन चापि ब्रह्मण्ड॥ दिसि कुजरहु कमठ अहि कोला, धरहु धरनि धरि धीर न डोला।
त्रुट्यद् भीमधनु:कठोरनिनद स्तत्राकरोद्विस्मयं, त्रस्यद्वाजिरवेरमार्गगमनं शम्भो.शिर.कम्पनम्। दिग्दन्तिस्खलनं कुलाद्रिचलन सप्तार्णवोन्मेलनम्, वैदेही मदन मदान्धदमन त्रैलोक्यसम्मोहनम् ॥	भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले। चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले। सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे बिकल सकल बिचारही। कोदण्ड भजेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥
यद्बभञ्ज जनकात्मजाकृते राघव. पशुपतेर्महद्धनुः। तद्धनुर्गुणरोषितस्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनि: ॥	तेहि अवसर सुनि सिव धनु भगा, आये भृगुकुल कमल पतङ्गा।
चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभित स्तूणीद्वय पृष्ठतो- भस्मस्निग्धपवित्रलाञ्छितमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्। मौञ्ज्या मेखलया नियंत्रितमधो वासश्च माञ्जिष्ठकम्। पाणौ कार्मुकसाक्षसूत्रवलय दण्डोऽपर: पैप्पल: ॥	गौर सरीर भूति भलि भ्राजा, भाल बिसाल त्रिपुण्ड बिराजा। वृषभ कन्ध उर बाहु बिसाला, चारु जनेउ माल मृगछाला। कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे, धनु सर कर कुठार कल काँधे॥

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
अय कण्ठः कुठारस्ते कुरु राम यथोचितम्। निहन्तुं हन्त गोविप्रान्न शूरा रघुवंशजा ।।	राम कहा रिसि तजिय मुनीमा कर कुठार आगे यह सीसा । जेहि रिसि जाइ करिय सोइ स्वामी, जानि मोहि आपन अनुगामी। सुर महिसुर हरिजन अरु गाई, हमरे कुल इन पर न सुराई ।
० ०	०
भो ब्रह्मन् भवता सम न घटते सग्रामवार्तापि नः । सर्वे हीनबला वय बलवता यूय स्थिता मूर्धनि । यस्मादेकगुण शरासनमिद सुव्यक्तमुर्वीभुजाम् । अस्माक भवता यतो नवगुण यज्ञोपवीत बलम् ।।	हमहि तुमहि सरवरि कस नाथा, कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा। देव एक गुन धनुष हमारे, नवगुन परम पुनीत तुम्हारे ।
० ०	०
सद्यः पुरी परिसरेषु शिरीषमृद्वी, गत्वा जवात्रिचतुराणि पदानि सीता । गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा, रामाश्रुण कृतवती प्रथमावतारम् ।	पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दये मग मे डग द्वै । झलकी भरि भाल कनी जल की, पटु सूखि गये मधुराधर वै । फिरि बूझति है चलनोऽब कितो प्रिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै । तिय की लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै ।। (कवितावली)
० ०	०
पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना, कुवलयदलनील. कोऽयमार्ये तवेऽति । स्मितविकसितगण्ड व्रीडविभ्रान्तनेत्रम्, मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता ।।	सीय समीप ग्राम तिय जाही, पूछति अति सनेह सकुचाही । कोटि मनोज लजावनि हारे. सुमुखि कहहु को अहहि तुम्हारे । सुनि सनेहमय मजुल बानी, सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी।

हनुमन्नाटक **रामचरितमानस**

बहुरि बदन बिधु अचल ढाँकी,
पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि,
निज पति कह्यो तिनहि सिय सयननि।

० ० ०

पदकमलरजोभिर्मुक्तपाषाणदेह-
मलभत यदहल्या गौतमो धर्मपत्नीम्।
त्वयि चरति विशीर्णग्रावविन्ध्याद्रिपादे,
कति कति भवितारस्तापसा दारवन्त ॥

बिन्ध के वासी उदासी तपो -
व्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीयतरी तुलसी सो कथा
सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे !
ह्वै है सिला सब चन्द्रमुखी
परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायकजू
करुना करि कानन को पगु धारे॥
(कवितावली)

० ० ०

उपलतनुरहल्या गौतमस्यैव शापात्।
इयमपिमुनिपत्नी शापता कापि वा स्यात्।
चरणनलिनसगानुग्रहं ते भजन्ती।
भवतु चिरमिय न श्रीमती पोतपुत्री।

चरन कमल रज कहँ सब कहई।
मानुस करनि मूरि कछु अहई॥
छुवति सिला भइ नारि सुहाई।
पाहन ते न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनिघरनी ह्वै जाई।
बाट परै मोरि नाव उडाई॥

० ० ०

तातस्त्व निजतेजसैव गमित
स्वर्ग व्रज स्वस्ति ते।
ब्रूमस्त्वेकमिमा वधूहृतिकथा
तातान्तिके मा कृथा।
रामोऽहं यदि तद्दिनै. कतिपयै-
र्व्रीडानमत्कन्धरः।
सार्धं बन्धुजनेन सेन्द्रविजयी
वक्ता स्वयं रावण.॥

जल भरि नयन कहा रघुराई,
तात कर्म निज ते गति पाई।
तनु तजि तात जाहु मम धामा,
देउँ काह तुम पूरन कामा।
सीता हरन तात जनि,
कहेउ पिता सन जाय।
जो मै राम तो कुलसहित,
कहिहि दसानन जाय।

० ० ०

हनुमन्नाटक

पापेनाकृष्यमाणा रजनिचरवरेणा-
म्बरेण व्रजन्ती ।
किष्किन्धाद्रौ मुमोच प्रचुरमणिगणौ
र्भूषणान्यर्पितानि ।
हा राम प्राणनाथेत्यहह जहि रिपु
लक्ष्मणेनालपन्ती ।।
यानीमानीति तानि क्षिपनिरघुपुर
कामरामाजनेय ।।

रामचरितमानस

गगनपथ देखी मैं जाना
परबस परी बहुत बिलखाता ।
राम राम हा राम पुकारी,
मम दिसि देखि दीन्ह पट डारी ।
माँगा राम तुरत सो दीन्हा,
पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ।।

० ० ०

शाखामृगस्य शाखाया
शाखा गन्तुं पराक्रम ।
यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोऽधि
प्रभावोऽय प्रभो तव ।

साखामृग की अनि मनुसाई ।
साखा ते साखा पर जाई ।।
लाँघि सिन्धु हाटकपुर जारा ।
निसिचरगन बधि नगर उजारा ।।
सो सब तव प्रताप रघुराई ।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ।।

० ० ०

नृपतिमुकुटरत्न त्वत्प्रयाणप्रसङ्गिनम् ।
प्लवगबलनिमज्जद् भूधराक्रान्तदेह ।
लिखति दशनटंकैरुत्पतद्भि पतद्भि,
जरठकमठभर्तुः खर्परे सर्पराजः ।।

महि सक न भार अपार अहिपति
बार-बार बिमोहई ।
गहि दसन पुनि-पुनि कमठ पृष्ठ
कठोर सो किमि सोहई ।
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति
जानि परम सुहावनी ।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज
सो लिखत अबिचल पावनी ।।

० ० ०

या विभूतिर्दशग्रीवे
शिरश्छेदेऽपि शंकरात् ।
दर्शनात् रामदेवस्य
सा विभूतिर्विभीषणे ।।

जो सम्पति सिव रावनहि,
दीन्ह दिये दस माथ ।
सो सम्पदा बिभीषनहि,
सकुचि दीन्हि रघुनाथ ।।

० ० ०

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
यो युष्माकमदीदहत्पुरमिद	
योऽदीदलत्काननम् ।	रावन नगर अल्प कपि दहई ।
योऽक्षं वीरममीमरद् गिरिदरी-	सुनि अस बचन सत्य को कहई ।।
र्योऽबीभरद्राक्षसैः ।	जो अति सुभट सराहेउ रावन ।
सोऽस्माकं कटके कदाचिदपिनो	सो सुग्रीव केर लघु धावन ।।
वीरेषु सम्भाव्यते,	चलै बहुत सो बीर न होई ।
दूतत्वेन इतस्ततः प्रतिदिनं	पठवा खबरि लेन हम सोई ।।
संप्रेष्यते साम्प्रतम् ।।	

० ० ०

राम· स्त्रीविरहेण हारितवपुः	
तच्चिन्तया लक्ष्मण· ।	तव प्रभु नारिबिरह बलहीना ।
सुग्रीवोङ्गदशल्यभेदकतया	अनुज तासु दुख दुखी मलीना ।।
निर्मू ल कूलद्रुमः ।।	तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ ।
गण्यः कस्यविभीषणः स च रिपो.	बन्धु हमार भीरु अति सोऊ ।।
कारुण्यदैन्यातिथिः ।	सिल्प कर्म जानत नल नीला ।
लङ्कातङ्कविटङ्कपावकपटु.	है कपि एक महाबलसीला ।।
वध्यो ममैकः कपिः ।	आवा प्रथम नगर जेहिं जारा ।

० ० ०

रे रे रावण दीन हीन कुमते,	
रामोऽपि किं मानुषः ।	राम मनुज कस रे सठ बंगा ।
किं गङ्गाऽपि नदीगजः सुरगजो,	धन्वी काम नदी पुनि गंगा ।।
ऽप्युच्चैश्रवा. किं हय. ।	सेनसहित तव मान मथि,
किं रम्भाप्यबला कृत किमु युग,	बन उजारि पुर जारि ।
कामोऽपि धन्वी न किम् ।	कस रे सठ हनुमान कपि,
त्रैलोक्य प्रकट प्रभाव विभव·,	गयउ जो तव सुत मारि ।।
किं रे हनूमान् कपिः ।।	

० ० ०

रे रे रावण रावणा· कति बहू-	कहु रावन रावन जग केते ।
न्येतान्वयं शुश्रुम ।	मैं निज स्रवन सुने सुन तेते ।।
प्रागेकं किल कार्तवीर्यनृपते-	बलि जीतन यक गयउ पताला ।
र्दोर्दण्डपिण्डीकृतम् ।	राखा बाँधि सिसुन हयसाला ।।

हनुमन्नाटक

एक नर्तनदापितान्नकवल
दैतेन्द्रदासीगणैः-
रन्यवक्तुमपि भयामह इति
त्व तेषु कोऽन्योऽथवा ॥

रामचरितमानस

एक बहोरि सहसभुज देखा।
धाइ धरा जनु जन्तु बिसेखा ॥
एक कहत मोहि सकुच अति,
रहा बालि की काँख।
इन महँ रावन तैं कवन,
सत्य कहहु तजि माँख ॥

० ० ०

रामस्तिष्ठतु लक्ष्मणेन धनुषा
रेखाकृता लङ्घिता।
तच्चारेण च लङ्घितो जलनिधि
र्दग्धा हतोऽक्ष· पुरी ॥

राम अनुज धनुरेख खँचाई।
सो नहि लाँघेउ अस मनुसाई ॥
कौतुक सिन्धु लाँघि तव लंका।
आयउ कपि केहरी असका।
रखवारे हति विपिन उजारा।
देखत तुमहि अछय जिन मारा ॥

० ० ०

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे।
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह हर ममाङ्क पावक पावकत्वम्।
सुललितफलभागा त्व हि कर्मैकसाक्षी ॥

जो मन क्रम बच मम उर माही।
तजि रघुबीर आन गति नाही ॥
तो कृसानु सबकी गति जाना।
मो कहँ होउ श्रीखण्ड समाना ॥

० ० ०

गीता

चतुर्विधा भजन्ते मा
जना सुकृतिनोर्जुन।
उदारा· सर्व एवैते
ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥

रामभक्त जग चारि प्रकारा।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा।

० ० ०

यदा यदा हि धर्मस्य
ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य
तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूना
विनाशाय च दुष्कृताम्।

जब-जब होइ धर्म कै हानी।
बाढहि असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब हरि धरि विविध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

गीता	रामचरितमानस
धर्मसस्थापनार्थाय	
सम्भवामि युगे युगे ॥	
०	०
या निशा सर्वभूताना	एहि जग जामिनी जागहि जोगी ।
तस्या जागर्ति सयमी ।	परमारथी प्रपच वियोगी ॥
०	०
सभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।	सभावित कहँ अपजस लाहू ।
	मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥
०	०
ईश्वर. सर्वभूताना हृद्देशोऽर्जुन तिष्ठति ।	उमा दारुपयोषित की नाई ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥	सबहि नचावत राम गुसाई ॥
०	०
तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी	निन्दा अस्तुति उभय सम,
संतुष्टो येन केनचित् ।	ममता मम पद कज ।
अनिकेत: स्थिरमति-	ते सज्जन मम प्रानप्रिय,
र्भक्तिमान् मे प्रियो नर ॥	गुनमन्दिर सुखपुञ्ज ॥
०	०
मनुष्याणा सहस्रेषु	नरसहस्र महँ सुनहु पुरारी ।
कश्चिद्यतति सिद्धये ।	कोउ इक होय धर्मव्रतधारी ॥
यततामपि सिद्धाना	धर्मसील कोटिन महँ कोई ।
कश्चिन्मा वेत्ति तत्त्वत ॥	विषय विमुख विरागरत होई
	कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई ।
	सम्यक्ज्ञान सुकृति कोउ लहई ॥
	ज्ञानवन्त कोटिन महँ कोई ।
	जीवन्मुक्त सुकृति कोइ होई ॥
	तिन सहसन महँ सब सुखदानी ।
	दुर्लभ ब्रह्मनिरत विज्ञानी ॥
०	०
अगस्त्य रामायण	
सर्वेषा हृदये ह्यासदेष एव मनोरथ ।	सबके उर अभिलाषु अस,
स्वजीवने सुदयया तव शंकर बुद्धिमान् ।	कहहिं मनाइ महेस ।
युवराजपदं राजा रामचन्द्राय यच्छतु ॥	आपु अछत जुवराज पद,
	रामहिं देहि नरेस ॥
०	०

अगस्त्य रामायण	रामचरितमानस
यो जन. स्वच्छहृदय स	निरमल मन जन सो मोहि पावा ।
मां प्राप्नोति नापर· ।	मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
मह्यं कपट दंभानि	
न रोचन्ते कपीश्वर ॥	

० ० ०

अग्निवेश रामायण	
एतेषा गणना नवद्वयमहा-	श्रम मैं स्रवन सुना दसकन्धर ।
पद्मावधिर्वर्णिता ।	पद्म अठारह जूथप बन्दर ॥

० ० ०

आनन्द रामायण	
पर्वतश्रेण्यो राजन्	भुवन चारिदास भूधर भारी ।
भुवनानि चतुर्दश ॥	सुकृत मेघ बरपहि सुख बारी ।
तेषु चोत्तमकर्माणि	रिधि सिधि सपनि नदी सुहाई ।
मेघा भूत्वा स्थले-स्थले ।	उमगि अवध अंबुधि कहँ आई ।
पूर्णानन्द पयोवृष्टि	मनिगन पुर नर-नारि सुजानी ।
कुर्वन्ति वसुधातले ॥	सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती ।
ऋद्धय. सिद्धयश्चापि	
समस्तसुखसम्पदः ।	
नद्यो भूत्वा त्वयोध्याब्धि	
मिलन्त्यवधवासिन ॥	
नरा नार्यश्च सम्पूर्णाः	
सदा सुकृतकारिणः ।	
बहुमूल्यानि रत्नानि	
पवित्राणि पराणि च ।	

० ० ०

सीतारामप्रेमपीयूषपूर्ण	सिय राम प्रेम पियूष पूरन
जन्म स्यान्नो केकयीनन्दनस्य ।	होत जनम न भरत को ।
चेत्कः कुर्याद् दुर्गमान् वै मुनीना	मुनि मन अगम यम नियम सम
योगान् राजन् भारतेऽस्मिन् पवित्रे ॥	दम विषम व्रत आचरन को ॥
दारिद्रयदम्भदाहाना	दुख दाह दारिद दभ दूषन
दु.खदूषणयोस्तथा ।	सुजस मिस अपहरत को ।

आनन्द रामायण	रामचरितमानस
कीर्तिव्याजेन को नाशं कुर्यात्कलियुगे हठात् ॥ शठान्नो कोऽपि राजेन्द्र कः कुर्याद्रामसम्मुखे ।	कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

०　　०　　०

उत्तररामचरित	
लौकिकानां हि साधूना- मर्थवागनुवर्तते । ऋषीणां पुनराद्याना वाचमर्थोऽनुधावति ॥	राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत दातार । फल अनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार ॥

०　　०　　०

कुमार सम्भव	
शाम्येत्प्रत्युपकारेण नोपकारेण दुर्जनः ।	बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहि पै नव नीच ॥

०　　०　　०

गर्ग संहिता	
दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टश्च पटहाः स्त्रिय. । ताडिता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम् ॥	ढोल गँवार सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ।

०　　०　　०

गालव संहिता	
मित्रस्य दु खेन जना दु.खिता नो भवन्ति ये । तेषा दर्शनमात्रेण पातकं बहुलं भवेत् ॥	जे न मित्र दुख होहि दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ।

०　　०　　०

चम्पू रामायण	
एव निशम्य कुपितः पिशिताशनेन्द्र. प्राणानमुष्य हरतेति भटानवादीत् । आजन्म शुद्धमतिरत्र विभीषणस्तं दूतो न वध्य इति शास्त्रगिरा रुरोध ॥	सुनि कपि वचन बहुत खिसियाना । बेगि न हरहु मूढ कर प्राना । सुनत निसाचर मारन धाए । सचिवन्ह सहित विभीषन आये । नाइ सीस करि विनय बहूता । नीति बिरोध न मारिय दूता ।

०　　०　　०

चाणक्य-नीति

परोक्षे कार्यहन्तारं
प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत् तादृशं मित्र
विषकुम्भं पयोमुखम् ।

रामचरितमानस

आगे कह मृदु बचन बनाई ।
पाछे अनहित मन कुटिलाई ।
जाकर चित अहि गति सम भाई ।
अस कुमित्र परिहरे भलाई ।

० ० ०

देवी भागवत

उपविष्टं तदा रामं
सानुज दु खमानसम् ।
पप्रच्छ नारद. प्रीत्या
कुशलं मुनिसत्तम. ।

नाना विधि बिनती करि
प्रभु प्रसन्न जिय-जानि ।
नारद बोले बचन तब
जोरि सरोरुह पानि ।।

० ० ०

पंचतंत्र

उद्यमेन बिना राजन्
न सिद्धयन्ति मनोरथा. ।
कातरा इति जल्पन्ति
यद्भाव्यं तद्भविष्यति ।।

कायर मन कहँ एक अधारा ।
दैव-दैव आलसी पुकारा ।

० ० ०

पद्म पुराण

यत्र-यत्र ययौ काक
शरणार्थी स वायस ।
तत्र-तत्र तदस्त्रं तु
प्रविवेश भयावहम् ।।

जिमि-जिमि भाजत सक्रसुत,
व्याकुल अति दुख-दीन ।
तिमि-तिमि धावत राम सर,
पाछे परम प्रबीन ।।

० ० ०

पराशर-संहिता

न व्रतेनोपवासैश्च
धर्मेण विविधेन च ।
नारी स्वर्गमवाप्नोति
केवल पतिपूजनात् ।

बिनु स्रम नारि परम गति लहई ।
पतिब्रत धर्म छाँड़ि छल गहई ।

० ० ०

भट्टिकाव्य	रामचरितमानस
ज्ञात्वा मासमतिक्रातं	इहाँ बिचारहिं कपि मन माही।
व्यथामवलम्बिरे।	बीती अवधि काज कछु नाही।
अकृत्वा नृपतेः कार्य	सब मिलि कहहि परसपर बाता।
पूजा लप्स्यामहे कथम्॥	बिनु सुधि लये करब का भ्राता।

o o o

प्रस्ताव-रत्नाकर

अविधेया भृत्यजना शठानि	सेवक नठ नृप कृपिन कुनारी।
मित्राण्यदायकः स्वामी।	कपटी मित्र सूल सम चारी।
अविनयवती भार्या	
मस्तक शूलानि चत्वारि॥	

o o o

वशिष्ठ रामायण

ये धारयन्ति गुरुपादरज स्वशीर्षे।	जे गुरु चरन रेनु सिर धरही।
ते कौ विभूतिमखिलां वशयन्ति नूनम्॥	ते जनु सकल बिभव बस करही।

o o o

ब्रह्म रामायण

मुक्तेर्जन्मधरा काशी	मुक्ति जनम महि जानि,
ज्ञानखान्यघनाशिनी।	ग्यानखानि अघहानिकर।
सोम. शंभुर्वसत्यत्र	जहँ बस शंभु भवानि,
सदा सेव्या जनैरियम्॥	सो कासी सेइय कस न॥

o o o

ब्रह्मवैवर्तपुराण

इन्द्रोपेन्द्रविरंच्याद्यै	जासु कृपा अज सिव सनकादी।
र्यत्कृपालंध्यते सुरैः।	चहत सकल परमारथवादी।

o o o

वाल्मीकि रामायण

क्व ते रामेरा ससर्ग.	नर-बानरहि सग कहु कैसे।
कथं जानासि लक्ष्मणम्।	कही कथा भइ सगति जैसे।
वानराणां नराणां च	
कथमासीत्समागमः॥	

o o o

विष्णु पुराण	रामचरितमानस
ऊहुरुन्मार्गगामीनि	छुद्र नदी भरि चलीं तोराई।
निम्नगाम्भासि सर्वत. ।	जस थोरेहु धन खल इतराई।
मनासि दुर्विनीतानां	
प्राप्य लक्ष्मी नवामिव ॥	

० ० ०

भर्तृहरि शतक	
कान्ताकटाक्षविशिषा न लुनन्ति यस्य	नारि नयन सर जाहि न लागा।
चित्तं न निर्दहृति कोपकृशानुताप।	घोर क्रोध तम निसि जो जागा।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशैं--	लोभ पास जेहि गर न बँधाया।
लोंकत्रय जयति कृत्स्नमिद स धीर ॥	सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥

० ० ०

भोज प्रबन्ध	
सर्वस्य द्वे सुमतिकुमती संपदापत्तिहेतू।	सुमति कुमति सबके उर रहहीं।
	नाथ पुरान निगम अस कहही ॥

० ० ०

मातृका-विलास	
जानीयात्संगरे भृत्यान्	धीरजु धरम मित्र अरु नारी।
बाधवान् व्यसनागमे।	आपतकाल परखियहि चारी।
भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु	
युद्धे शूर धने शुचिम् ॥	

० ० ०

याज्ञवल्क्य रामायण	
कोमल वचन श्रुत्वा	सुनि मृदु वचन कुमति अति जरई।
कुमतिर्ज्वलिता सती।	मनहुँ अनल आहुति घृत परई।
अब्रवीत् केकयी तेऽच	करहु कहै किन कोटि उपाया।
माया नैव चलिष्यति ॥	इहाँ न लागिहि राउरि माया।
दीयतामथवा कृत्वा	देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं।
नकारमयशो नृप।	मोहि न बहुत प्रपच सोहाहीं।
गृह्यतां शीघ्रमेवाऽत्र	रामु साधु तुम्ह साधु सयाने।
प्रपचा नैव मे प्रिया. ॥	राम मातु भलि सब पहचाने।

याज्ञवल्क्य रामायण

स्वभावसरलो रामो
रामेमाता भवानपि ।
मया परिचिताः सर्वे
स्वभावसरला जनाः ।
विचारित राममात्रा
यथा मम हित तथा ।
प्रदास्यामि फल तस्यै
सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

रामचरितमानस

जस कौसिला मोर भल ताका ।
तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ।

० ० ०

रघुवंश

त कर्णमूलमागत्य
रामे श्रीर्न्यस्ततामिति ।
कैकेयीशकयेवाह
पलितच्छद्मना जरा ॥

सुवन समीप भए सित केसा ।
मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ।
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू ।
जीवन जनम लाभ किन लेहू ।

० ० ०

शुक्रनीति

शास्त्रं सुचिन्तितमथोपरिचिन्तनीय—
माराधितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः ।
क्रोड़े कृतापि युवती परिक्षरणीया
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम् ।

शास्त्र सुचिन्तित पुनि-पुनि देखिय ।
भूप सुसेवित पुनि-पुनि लेखिय ।
राखिय नारि जदपि उर माही ।
जुबती सास्त्र नृपति बस नाही ।

० ० ०

सुभाषितत्रिशती

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः
संगात्सुतो लालनात् ।
पुत्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनया-
च्छीलं खलोपासनात् ।
ह्रीमद्यादनवेक्षणादपि कृषि.
स्नेहः प्रवासाश्रया—
न्मैत्रीचाप्रणयात्समृद्धिरनया
त्यागात् प्रमादाद्धनम् ॥

संग ते जती कुमन्त्र से राजा ।
मान ते ग्यान पान ते लाजा ।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी ।
नासहिं बेगि नीति अस धुनी ।

० ० ०

हितोपदेश

सुवेप पुरुप दृष्ट्वा
भ्रातर यदि वा सुतम् ।
योनि क्लिद्यति नारीणा
सत्य-सत्य हि नारद ॥

रामचरितमानस

भ्राता पिता पुत्र उरगारी ।
पुरुप मनोहर निरखत नारी ।
होइ बिकल सक मनहि न रोकी ।
जिमि रविमनि द्रव रविहि बिलोकी ।

° ° °

प्राचीन श्लोक

ये रामभक्तिममला सुविहाय रम्या
ज्ञाने रता· प्रतिदिन परिक्लिष्ट मार्गे ।
आरान्महेन्द्रसुरभी परिहृत्य मूर्खा
अर्क भजन्ति सुभगे सुखदुग्ध हेतुम् ।

ज अस भगति जानि परिहरही ।
केवल ज्ञान हेतु स्रम करही ।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी ।
खोजतु आकु फिरहि पय लागी ॥

° ° •

पद्म पुराण

कुल पवित्र जननी कृतार्थं
वसुन्धरा भागवती च धन्या ।
स्वर्गे स्थिता ये पितरोऽपि धन्या
येषा कुले वैष्णवनामधेयम् ॥

सो कुल धन्य उमा सुनु
जगत् पूज्य सुपुनीत ।
श्री रघुवीर परायन
जेहि नर उपज विनीत ।

° ° •

सुभाषित-रत्न-भांडागार

सज्जनस्य हृदय नवनीत
यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम् ।
अन्यदेहविलसत्परितापात्
सज्जनो द्रवति नो नवनीतम् ॥

सत हृदय नवनीत समाना ।
कहा कविन पे कहइन जाना ॥
निज परिताप दहै नवनीता ।
पर-दुख द्रवहि सुसंत पुनीता ॥

° ° •

श्रुत्वा सागरबन्धन दशशिरा:
सर्वैर्मुखैरेकदा ।
तूर्णं पृच्छति वार्तिकान् सचकितो
भीत्यापर सम्भ्रमात् ॥
बद्ध. सत्यमपानिधिर्जलनिधि.
कीलालधिस्तोयधि. ।
पाथोधिर्जलधि: पयोधिरुदधि
वीरान्निधिर्वारिधि· ॥

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि,
जलधि सिंधुवारीस ।
सत्य तोयनिधि कपति,
उदधि पयोधि नदीस ॥

• ° •

हनुमन्नाटक

शक शशाक जगुरंकमेके
पक कुरग प्रतिबिबितागम् ।
धूमं च भूमंडलयुद्धताग्ने—
वियोगजातस्य मम प्रियाया ॥

रामचरितमानस

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई ।
ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाईं ॥
मारेहु राहु ससिहि कह कोई ।
उर महँ परि स्यामता सोई ॥
कोउ कह जब विधि रति मुख कीन्ह ।
सारभाग ससिकर हरि लीन्ह ॥

• ० ०

ब्रह्मणा रतिमुख चिकीर्षता
सगृहीतममृत विधोस्तदा ।
तेन छिद्रमभवद्धतद्यथा
दृश्यते गगन बिम्बनीलता ।

छिद्र सो प्रगट इदु उर माही ।
तेहि मग देखिय नभ परिछाही ।
वह प्रभु गरल बंधु ससि केरा ।
अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ॥
बिष संजुत कर निकर पसारी ।
जारत बिरहबंत नर-नारी ॥

• • •

कठबल्ली

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णं ।
यो वेत्ति सर्व न हि तस्य वेत्ता
तमाहुराद्यं पुरुष पुराणम् ॥

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिनु बानी वक्ता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥

• ० •

शिव पुराण

मित ददाति हि पिता
पितं भ्राता मितं सुतः ।
अपि तस्य तु दातारं
भर्तारं या न सेवते ॥

मातु पिता भ्राता हितकारी ।
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमितदानि भर्ता बैदेही ।
अधम सो नारि जो सेव न तेही ।

० ० ०

वाल्मीकि रामायण

स्थित्वा मुनिसमूहेषु
जानकी राम लक्ष्मणा. ।

मुनि समूह महँ बैठे सनमुख सबकी ओर ।
सरद इन्दुतन चितवत मानहुँ निकर चकोर

वाल्मीकि रामायण रामचरितमानस

तान् सर्वाश्च निरीक्षन्ते
चकोरा शरदेन्दुवत् ।।

० ० ०

गरुड़ पुराण

वर हि नरके वासो	बर भल बास नरक कर ताता ।
न तु दुश्चरिते गृहे ।	दुष्ट संग जनि देइ विधाता ।।
नरकात् क्षीयते पाप	
कुगृहान्न निवर्तते ।।	

० ० ०

इनके सिवा संस्कृत के और जिन ग्रन्थों के बिंब-प्रतिबिंब भाव 'मानस' मे मिलते है, यहाँ स्थानाभाव से उनके उदाहरण न देकर केवल नाम दिये जाते है—

अग्नि-पुराण, अद्भुत-रामायण, अभिज्ञान-शकुन्तला, आनन्द-वृन्दावन, कथा-सरित्सागर, कामन्दकीय-नीति-सार, किरातार्जुनीय, गीतगोविन्द, चाणक्य-नीति, नलचम्पू, नारद-पंचरत्न, नैषध, पराशर-स्मृति, पुरुष-सूक्त, वाराह-पुराण, वशिष्ठ संहिता, ब्रह्माण्ड-पुराण, बाल-रामायण, विदग्ध-मुख-मण्डन, मत्स्य-पुराण, महानिर्वाणतत्त्व, महावीर-चरित, महिम्न-स्तोत्र, याज्ञवल्क्य-स्मृति, रुद्रयामल, वामन-पुराण, शिव-पुराण, शिशुपाल-वध, स्कन्द-पुराण, श्रुत-बोध, हरिवंश-पुराण, हारीत-स्मृति इत्यादि ।

मानस का माधुर्य

'रामचरितमानस' आदि से अन्त तक माधुर्य से ओत-प्रोत है । हर एक प्रकार की सुरुचि रखने वालो के लिए उसमें यथेष्ट सामग्री है । एक लम्बे मार्ग मे कोई स्थान ऐसा नही है, जहा पथिक को दूर तक शान्ति की छाया न मिले, प्यास से व्याकुल होना पड़े । रास्ते भर सर्वत्र मधुर सोते प्रवाहित है, सद्विचारो की शीतल छाया वर्तमान है । 'मानस' को बार-बार पढ़ने से भी जी नहीं ऊबता । जिस प्रकार हम चन्द्रमा को लाखो बरसो से देखते आ रहे है । पर जब उसे देखते है, तभी वह नवीन लगता है और कभी बासी नही लगता । इसी प्रकार 'मानस' को चाहे जितनी बार पढ़िये, उससे जी नहीं उचटता । उसका कारण यह है कि तुलसीदास ने जो कुछ लिखा है, वह उसमे हमारे नित्य-नैमित्तिक जीवन का प्रतिबिम्ब है । इससे हम उसे अपना समझकर पढ़ते है और बार-बार उसका रस लेकर भी तृप्त नही होते ।

तुलसीदास ने 'मानस' मे जिस विषय को लिया है, उसे इतनी सुन्दरता से सजा दिया है कि उसे पढ़कर मन आनन्द में निमग्न हो जाता है। यहाँ कुछ ऐसे प्रसग दिये जाते है, जिनसे तुलसीदास के वर्णन-चातुर्य का आनन्द लिया जा सकता है।

बाल-कांड मे शिवजी की बारात का वर्णन तुलसीदास ने बड़े सरस ढंग से किया है। शृङ्गार-रस के साथ हास्य-रस रहने से उसकी सरसता बढ़ जाती है। शिव की बरात के साथ-साथ परस्पर हास-परिहास भी होता चल रहा है, उस प्रसंग का वर्णन देखिए :

दो०—लगे सवाँरन सकल सुर, बाहन बिबिध बिमान।
होहि सगुन मगल सुखद, करहि अपछरा गान॥
सिवहि सभुगन करहि सिगारा। जटा मुकुट अहिमौर सँवारा।
कुण्डल ककन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला।
ससि ललाट सुन्दर सिर गगा। नयन तीनि उपवीत भुजंगा।
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला।
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढि बाजहि बाजा।
देखि सिवहि सुरतिय मुसुकाही। बर लायक दुलहिन जग नाही।
बिस्नु बिरचि आदि सुरव्राता। चढि-चढि बाहन चले बराता।
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहि बरात दूलहु अनुरूपा।
दो०—बिस्नु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग-बिलग होइ चलहु सब, निज-निज सहित समाज॥
बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करइहउ पर पुर जाई।
बिस्नु बचन सुनि सुर मुसुकाही। हरि के ब्यग बचन नहि जाही।
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृङ्गिहि प्रेरि सकल गन टेरे।
सिव अनुसासन सुनि सब आये। प्रभु पद-जलज सीस तिन्ह नाये।
नाना बाहन नाना बेखा। बिहँसे सिव समाज निज देखा।
कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू।
विपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनखीना।

एक और प्रसंग देखिए—

चन्द्रमा उदय हुआ था। राम ने उसे देखा। देखते ही सीता के मुख का स्मरण हो आया। अब दो चन्द्रमा एक साथ उदय हो आये, एक आकाश मे, दूसरा मन में। राम दोनों की तुलना करके कहते है :

प्राची दिसि सखि उयेउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा।

बहुरि बिचार कीन्ह मन माही। सीय वदन सम हिमकर नाहीं।
दो०—जनम सिन्धु पुनि बन्धु बिषु. दिन मलीन सकलंकु।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द बापुरो रंकु॥
घटइ-बढइ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई।
कोक सोकप्रद पंकज-द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।

सीता-स्वयंवर का एक प्रसंग लीजिये—

रामचन्द्र सीता-स्वयंवर के अवसर पर धनुष-यज्ञशाला मे आये, तब उन्हे देखकर दर्शकों मे जिस प्रकार के भाव उदित हुए, तुलसीदास ने उनका वर्णन बड़े ही कौशल से किया है। उनमें नवों रसो की आभा आ गई है :

राजकुँअर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये।
गुनसागर नागर बरबीरा। सुन्दर स्यामल गौर सरीरा।
राज-समाज बिराजत रूरे। उडुगन महँ जनु जुग बिधु पूरे।
जिन्हकै रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।
देखहि भूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रस धरे सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी।
रहे असुर छल छोनिप बेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई।
दो०—नारि बिलोकहि हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सृङ्गार धरि. मूरति परम अनूप॥
बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा। बहुमुख कर पग लोचन सीसा।
जनक जाति अवलोकहि कैसे। सजन सगे प्रिय लागहि जैसे।
सहित बिदेह बिलोकहि रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी।
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा।
हरिभगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता।
रामहि चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहि कथनीया।
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ।

राम का वर्णन करके तुलसीदास सीता की ओर मुड़ते है। सीता के सौन्दर्य की तुलना वे किससे करे? देवताओं की स्त्रियों में किसी को वैसी सुन्दरी न पाकर वे एक रूपक बाँधते है। देखिये, रूपक कितना सुन्दर है :

सिय सोभा नहि जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी।
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी।
सिय बरनिअ तेहि उपमा देई। कुकबि कहाइ अजस को लेई।

जौ पटतरिअ तीय महँ सीया। जग अस जुअति कहाँ कमनीया।
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।
बिष बारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही।
जौ छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई।
सोभा रजु मदरु सिगारू। मथइ पानिपकज निज मारू।
दो०—यहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहि सीय सम तूल।।

राम रङ्गमञ्च पर बैठे हैं। उस समय की उनकी शोभा की तुलना तुलसीदास ने सूर्योदय से की है:

दो०—उदित उदय गिरि मञ्च पर, रघुबर बाल पतग।
बिकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन-भृङ्ग।।
नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लकाने।
भये बिसोक कोक मुनि देवा। बरषहि सुमन जनावहि सेवा।

राम, लक्ष्मण और सीता वन को जा रहे थे तब रास्ते म उन्हें गाँव वाले मिलते जाते थे। उनके मन मे इन पथिकों को देखकर जो कौतूहल होता था, उसका ठीक-ठीक चित्र सामने खड़ा कर देने मे तुलसीदास ने जो क्षमता दिखलाई है, वह अद्वितीय है, अनुपम है। देखिये :

सुनत तीरबासी नर-नारी। धाये निज-निज काज बिसारी।
लषन राम सिय सुन्दरताई। देखि करहि निज भाग्य बड़ाई।
अति लालसा सबहि मन माही। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं।
जे तिन्ह महँ वयवृद्ध सयाने। तिन्ह करि जुगुति राम पहिचाने।
सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई।
सुनि सबिषाद सकल पछिताही। रानी राय कीन्ह भल नाही।

× × ×

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे।
राम लषन सिय रूप निहारी। होहि सनेह बिकल नर-नारी।

× × ×

पथिक अनेक मिलहि मगु जाता। कहहि सप्रेम देखि दोउ भ्राता।
राम लषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे।
मारग चलहु पयादेहि पाये। ज्योतिष झूठ हमारेहि भाये।
अगमु पथु गिरि कानन भारी। तेहि महुँ साथ नारि सुकुमारी।

× × ×

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहि जो आयसु होई।
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुमहिं सिरुनाई।
दो०—एहि बिधि पूछहि प्रेम बस, पुलक गात जल नैन।
कृपासिन्धु फेरहि तिन्हहि, कहि विनीत मृदु बैन॥

× × ×

सीता लषन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई।
सुनि सब बाल-बृद्ध नर-नारी। चलहि तुरत गृह-काज बिसारी।
राम-लषन-सिय-रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी।
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा।
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रकन्ह सुर मनि ढेरी।
एकन्ह एक बोलि सिख देही। लोचन-लाहु लेहु छन एही।
रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहि सँग लागे।
एक नयन मग छबि उर आनी। होहि सिथिल तन मन बर बानी।
दो०—एक देखि बटछाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइय छिनुक स्रमु गवनब अबहि कि प्रात॥
एक कलस भरि आनहि पानी। अँचइय नाथ कहहि मृदु बानी।
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपालु सुसील बिसेखी।
जानी स्रमित सीय मन माही। घरिक बिलम्बु कीन्ह बट छाही।
मुदित नारि-नर देखहि सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा।
बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी।
राम-लषन-सिय सुन्दरताई। सब चितवहि चित मन मति लाई।
थके नारि-नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी-मृग देखि दियासे।
सीय समीप ग्राम-तिय जाही। पूछत अति सनेह सकुचाही।
बार-बार सब लागहि पाये। कहहि बचन मृदु सरस सुभाये।
राजकुमारि बिनय हम करही। तिय सुभाय कछु पूछत डरही।
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गँवारी।
राजकुँअर दोउ सहज सलोने। इन्ह ते लहि दुति मरकत सोने।
दो०—स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुखमा अयन।
सरद सर्बरी नाथ मुखु, सरद सरोरुह नयन॥
कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन महुँ मुसुकानी।
तिन्हहिं बिलोकि बिलोकत धरनी। दुहुँ सँकोच सकुचति बर बरनी।

सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लषन लघु देवर मोरे।
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पियतन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि।
भईं मुदित सब ग्राम-बधूटी। रंकन्ह रायरासि जनु लूटी।
पारबती सम पतिप्रिय होहू। देवि न हम पर छाँडबि छोहू।
पुनि-पुनि बिनय करिय कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिय बहोरी।
दरसन देब जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पियासी।
मधुर बचन कहि-कहि परितोषी। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी।
तबहि लषन रघुबर रुख जानी। पूछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी।
सुनत नारि-नर भये दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी।
मिटा मोदु मन भये मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने।
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा।
दो० -लषन जानकी सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिये लाइ मन साथ॥
फिरत नारि-नर अति पछिताहीं। दैवहि दोषु देहि मन माहीं।
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं।
निपट निरकुस निठुर निसकू। जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू।
रूख कलपतरु सागरु खारा। तेहि पठये बन राजकुमारा।
जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू।
ए बिचरहि मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना।
ए महि परहि डासि कुसपाता। सुभग सेज कत सृजन बिधाता।
तरु बर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवलधामु रचि-रचि स्रमु कीन्हा।
दो०—जौं ए मुनि पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किये करतार॥
जौं ए कंद-मूल-फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं।
एक कहहि ए सहज सुहाये। आपु प्रगट भये बिधि न बनाये।
जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। स्रवन नयन मन गोचर बरनी।
देखहु खोजि भुवन दसचारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी।
इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोगु बनावइ लागा।
कीन्ह बहुत स्रम एक न आये। तेहि इरिषा बन आनि दुराये।
एक कहहि हम बहुत न जानहि। आपुहि परम धन्य करि मानहिं।

तुलसीदास में एक यह बड़ी विशेषता पाई जाती है कि जब वे किसी वस्तु का वर्णन करने लगते हैं तब उसे सर्वाङ्गपूर्ण करते हैं। भरत राम को मनाने के लिए चित्रकूट गए हैं। यह समाचार सुनकर जनक भी आये हैं। रामचन्द्र उन्हें आगे बढ़कर मिलते हैं और फिर सबको लेकर अपने आश्रम की ओर जाते हैं। तुलसीदास उस दृश्य का ऐसा वर्णन करते हैं·

दो०—आस्रम सागर सातरस, पूरन पावन पाथ।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिये जात रघुनाथ ॥

बोरति-ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद-नारे।
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भगा।
बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।
केवट बुध बिद्या बडि नावा। सकहि न खेइ एक नहि आवा।
वनचर कोल किरात बेचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे।
आस्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अबुधि अकुलाई।

· रावण सीता को जब हर ले गया, तब का वर्णन सुनिए—

राम और लक्ष्मण हरिण को मारकर आश्रम में आते हैं और सीता को कुटी में न पाकर बिकल होते हैं। उस समय का वर्णन तुलसीदास के अद्भुत कवि-कौशल का एक प्रमाण हो गया है :

अनुज समेत गये प्रभु तहवाँ। गोदावरि-तट आस्रमु जहवाँ।
आस्रमु देखि जानकी-हीना। भये बिकल जस प्राकृत दीना।
हा गुन-खानि जानकी सीता। रूप सील व्रत नेमु पुनीता।
लछिमन समझाये बहु भाँती। पूछन चले लता-तरु-पाँती।
हे खग-मृग हे मधुकर-स्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनयनी।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप-निकर कोकिला प्रबीना।
कुन्द कली दाडिम सुदामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी।
बरुनपास मनोजधनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरषाही। नेकु न सक सकुच मन माही।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।

'मानस' में तुलसीदास ने बसन्त, वर्षा और शरद इन तीन ऋतुओं का वर्णन बड़े ही सुन्दर रूप से किया है। एक-एक वरण पर उन्होंने उपदेशों की जो झड़ी लगा दी है, वह सद्गुण रूपी शस्य के लिए बड़ी ही उपयोगी है :

दो०—लछिमन देखहु मोरगन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरतिरत हरष जस, बिस्नु भगत कहुँ देखि ॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।
दामिनि दमकि रही घन माही। खल कै प्रीति जथा थिरु नाही।
बरसहि जलद भूमि नियराये। जथा नवहि बुध बिद्या पाये।
बुन्द-अघात सहहि गिरि कैसे। खल के बचन संत सहै जैसे।
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई।
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी।
सिमिटि-सिमिटि जल भरहि तलावा। जिमि सद्गुन सज्जन पहँ आवा।
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होहि अचल जिमि जिव हरि पाई।
दो०—हरित भूमि तृन संकुलित, समुझि परहि नहि पंथ।
जिमि पाखण्ड विवाद ते, गुप्त होहि सद्ग्रन्थ॥
दादुर-धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढहि जनु बटु समुदाई।
नव पल्लव भये बिटपु अनेका। साधक मन जस मिले बिबेका।
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।
खोजत कतहुँ मिलइ नहि धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी।
ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै सम्पति जैसी।
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन कर मिला समाजा।
महा बृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि स्वतन्त्र भये बिगरहि नारी।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहि मोह मद माना।
देखियत चक्रवाक खग नाही। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराही।
ऊसर बरषइ तिनु नहि जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा।
बिबिध जन्तु संकुल महिभ्राजा। प्रजा बाढ जिमि पाइ सुराजा।
जहँ-तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रियगन उपजे ग्याना।
दो०—कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ-तहँ मेघ बिलाहि।
जिमि कपूत के ऊपजे, कुल सद्धर्म नसाहि॥
कबहुँ दिवस महुँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग॥
बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई।
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुढाई।
उदित अगस्त पन्थ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखइ संतोषा।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। सन्त हृदय जस गत मद मोहा।
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहि जिमि ग्यानी।
जानि सरद रितु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये।

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी।
जल संकोच बिकल भइ मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना।
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा।
कहुँ-कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ इक पाव भगति जसि मोरी।
दो०—चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगती पाइ स्रम, तजहिं आस्रमी चारि॥
सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।
फूलै कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा।
गुजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग-रव नानारूपा।
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमी दुरजन पर संपति देखी।
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही।
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातकु टरई।
देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई।
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा।
दो०—भूमि जीव संकुल रहे, गये सरद रितु पाइ।
सद्गुरु मिले जाहिं जिमि, संसय भ्रमु समुदाइ॥

रावण से युद्ध करने के लिए जब राम रण-भूमि में गए, तब न उनके पास रथ था और न पैर में जूते थे। यह देखकर विभीषण को चिन्ता हुई और उसने राम पर अपनी मनोव्यथा प्रकट भी की। राम के मुख से तुलसी-दास ने जो उत्तर दिलाया है, वह प्रत्येक मनुष्य के लिए जीवन-साफल्य का एक गुर है :

रावन रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयेउ अधीरा।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा।
नाथ न रथ नहि तनु पदत्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम मम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। येहि सम बिजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताके।

दो०—महा अजय ससार रिपु, जीति सकई सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ, सुनहु सखा मतिधीर ।।

मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है? इस तत्त्व को समझाने के लिए 'मानस' में बहुत से मनोहर प्रसंग हैं। साधारण श्रेणी के मनुष्यों को वेदान्त का विषय नीरस-सा लगता है। पर तुलसीदास की वर्णन-शैली ऐसी आकर्षक है कि नीरस-से-नीरस स्वभाव वाला मनुष्य भी उसमें रस लेने लगता है:

मम माया संभव परिवारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा।
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब तें अधिक मनुज मोहि भाये।
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी।
तिन्ह महँ प्रिय विरक्त पुनि ग्यानि। ग्यानिहुँ ते अति प्रिय बिग्यानि।
तिन्ह तें पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।
पुनि-पुनि सत्य कहउँ तोहि पाही। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाही।
भगति हीन बिरचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।
भगतिवन्त अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी।
दो०—सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहि न लाग।
स्रुति पुरान कह नीति असि, सावधान सुनु काग ।।

× × ×

राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाई राम प्रभुताई।
जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति।
प्रीति बिना नहिं भगति दृढाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई।
सो०—बिन गुरु होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं वेद पुरान सुख कि लहहि हरि भगति बिनु ।।
कोउ विश्राम कि पाव तात सहज सतोष बिनु।
चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि-पचि मरिय ।।
बिनु संतोष न काम नसाही। काम अछत सुख सपनेहुँ नाही।
राम भजन बिनु मिटहि कि कामा। थल-विहीन तरु कबहुँ कि जामा।
बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ।
श्रद्धा बिना धरमु नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई।
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ ससारा।
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं।
निज सुख बिनु मन होइ कि धीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा।

कवनिउ सिद्धि कि बिनु विस्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा।
दो०—बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहि न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुं, जीव न लह बिस्राम॥

× × ×

'मानस' में नम्रता और विनय की प्रशंसा स्थान-स्थान पर मिलती है। इसका प्रभाव रामायण के प्रेमी जनों पर सर्वत्र पड़ा हुआ और पड़ता हुआ दिखाई पड़ता है :

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी।
धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धरमु न टरई।
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्यरत मति सोइ पाकी।
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जनम द्विज भगति अभङ्गा।
दो०—सो कुल धन्य उमा सुनु, जगतपूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन, जेहि नर उपज बिनीत॥

मानस की सूक्तियाँ

युक्तप्रांत और बिहार में 'मानस' इतना लोक-प्रिय काव्य है कि उसकी बहुत सी चौपाइयाँ और दोहे कहावतों में स्थान पा चुके हैं। शिक्षित और अशिक्षित, नागरिक और ग्रामीण सभी श्रेणियों के लोग बिना किसी प्रयास के उनका उपयोग साधारण बोल-चाल में भी किया करते हैं। यहाँ इस प्रकार की कुछ चुनी हुई चौपाइयाँ और दोहे दिये जाते है :

बन्दौ सन्त असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्रान हरि लेही। मिलत एक दारुन दुख देही।
परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई।
काहु न कोउ दुख सुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।
सुमति कुमति सबके उर रहही। नाथ पुरान निगम अस कहही।
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिय भल जानी।
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धर्म जाइ सिर पातक भारू।
अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहि पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन॥
बिनु सतोष न काम नसाही। काम अछत सुख सपनेहु नाही।
राम भजन बिन मिटहि कि कामा। थल-बिहीन तरु कबहुँ कि जामा।
बिनु बिज्ञान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिन पावइ।

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गन्ध कि पावइ कोई।
बिनु तप तेज कि कर बिसतारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा।
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं।
निज सुख बिन मन होइ कि धीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा।
कवनिउँ सिद्धि कि बिन बिस्वासा। बिन हरि भजन कि भव भयनासा।

बिन बिस्वास भक्ति नहि, तेहि बिन द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिस्राम॥

परद्रोही कि होइ निहसङ्का। कामी पुनि कि रहइ अकलङ्का।
भव कि परहिं परमातम बिंदक। सुखी कि होहि कबहुँ परनिंदक।
राज कि रहइ नीति बिनु जाने। अघ कि रहइ हरि चरित बखाने।
पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई।
धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धरम न टरई।
धन्य घरी सोइ जब सतसङ्गा। धन्य जनम हरि भक्ति अभङ्गा।
कबि कोबिद गावहि अस नीति। खल सन कलह न भल नहिं प्रीती।
उदासीन नित रहिय गुसाईं। खल परिहरिय स्वान की नाईं।

फूलइ फरइ न बेत, जदपि सुधा बरसहि जलद।
मूरख हृदय न चेत, जौ गुरु मिलहि बिरंचि सत॥

बायस पालिय अति अनुरागा। होइ निरामिष कबहुँ कि कागा।
संत सहहि दुख परहित लागी। पर दुख हेत असंत अभागी।
साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू।
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। बंदनीय जेहि जग जस पावा।
खल सन इव पर बंधन करई। खाल कढाइ बिपति सहि मरई।
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई।
मुनिगन निकट बिहँग मृग जाही। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं।
हित अनहित पसु पच्छी जाना। मानुष तन गुन ज्ञान निधाना।

काटै पै कदली फरै, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेसु सुनु, डाँटे पै नव नीच॥

नहिं कोउ अस जनमा जग माही। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू।
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुये करै का सधा तड़ागा।
का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने।
दुइ कि होहिं इक संग भुवाला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।
कर्म प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।
आरत कहहि बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊँ।
जल पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भल।
बिलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत ही॥
कसे कनक मनि पारखि पाये। पुरुष परखिये समय सुभाये।
प्रभु अपने नीचहुँ आदरही। अगिनि धूम गिरि तृन सिर धरही।
सुनु जननी सोइ सुत बडभागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी।
तनय मातु पितु पोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।
धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके।
दो०—गुरु श्रुति-सम्मत धर्मफल, पाइय बिनहि कलेस।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस॥
सहज सुहृद गुरु स्वामिसिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होय हित हानि॥
सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन सुभगति बिभिचारी।
लोभी जस चह चारु गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी।
राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा।
विद्या बिनु बिबेक उपजाये। स्रम फल पढे किये अरु पाये।
संग ते जती कुमन्त्र ते राजा। मान ते ज्ञान पान तें लाजा।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहि बेगि नीति अस सुनी।
नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अकुश धनु उरग बिलाई।
परहित बस जिनके मन माही। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाही।
दो०—सचिव बैद गुरु तीनि जौ, प्रिय बोलहि भय आस।
राज धर्म तन तीन कर, होइ बेगही नास॥
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देहि बिधाता।
कादर मन कर एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा।
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपिन सन सुन्दर नीती।
ममता रत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन विरति बखानी।
क्रोधहिं सम कामहिं हरि कथा। ऊसर बीज बये फल जथा।
कौल काम बस कृपिन बिमूढा। अति दरिद्र अजसी अति गूढा।
सदा रोग बस सतत क्रोधी। बिष्णु बिमुख श्रुति संत बिरोधी।

तन पोषक निन्दक अघ खानी। जीवत शव सम चौदह प्रानी।
दो० - राकापति षोडश उवहि, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, रबि बिन राति न जाय।।
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे।
प्रिय बानी जे सुनहि जे कहही। ऐसे नर निकाय जग अहही।
बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहि जे कहहि ते नर जग थोरे।
अति सघर्षन करै जो कोई। अनल प्रगट चन्दन ते होई।
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्हि कै करनी।
सत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन पै कहइ न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहि सो संत पुनीता।
नहिं दरिद्र सम दुख जग माही। सत मिलन सम सुख कछु नाही।

अन्य भाषाओं में रामचरितमानस के अनुवाद

'रामचरितमानस' की लोक-प्रियता हिन्दी-प्रान्तों ही तक सीमित नहीं है, उसके अनुवाद भारत की अन्य भाषाओं में भी, कहीं गद्य में और कहीं पद्य में, हो गए हैं। यहाँ कुछ अनुवादों के संक्षिप्त परिचय दिये जाते हैं—

१—संस्कृत अनुवाद

इटावा के पंडित सेवाराम के पास इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति है। इसके दो कांड, सुन्दर और अरण्य, छप भी चुके हैं। इसका छपा हुआ सुन्दर-कांड मैंने देखा है। यह 'संस्कृतप्राकृताभ्यां समन्वितम् सुन्दरकांड' उन्नाम प्रदेशान्तर्गत तारग्राम वास्तव्य पं० बलभद्रप्रसाद शुक्ल बी० एस-सी०, असिस्टेंट मास्टर, इटावा तथा च पंडित रामनरायण मुंसरिम, मुंसिफी इटावा ने नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से सं० १९६८ में सुन्दर-कांड और १९६९ में अरण्य-कांड प्रकाशित कराया है। सम्पादकों का दावा है कि यह वही 'राम-चरितमानस' है, जिसकी रचना शिवजी ने की थी और जिसे उन्होंने पार्वती को सुनाया था। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :

जामवन्त के बचन सुहाये। सुनि हनुमान हृदय अति भाये।
सस्कृत—ततो जाम्बवतो वाचा शुभा हृदयहारिणी।
श्रुत्वा हनुमतश्चित्ते बभूवानन्दकारिका।।
सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, कहहिं बचन भय आस।
राज देह अरु धर्म कर, होहि बेगही नास।।
सस्कृत—मंत्री वैद्यो गुरुश्चैते चाटुकारादराद्यपि।
राष्ट्रविग्रह धर्माणामाशुनाशस्तदा भवेत्।।

मेरे हृदय प्रीति अस होई। की तुम हरिदासन महँ कोई।

सस्कृत—अवश्य हरिभक्तेषु त्व कोपि इति निश्चितम् ।

त्वयि प्रीतिर्मम हृदि प्रतीतिरिति जायते ॥

इस 'संस्कृत रामचरितमानस' के सम्बन्ध मे विज्ञवर पण्डित खड्गजीत मिश्र ने दिसम्बर, १९१२ की 'सरस्वती' में एक छोटा सा नोट लिखा था उसमें उनका कथन यह है—

'पंडित सेवाराम की कृपा से मैंने इस हस्तलिखित 'अपूर्व रत्न' के दर्शन किये हैं। वह सर्गो मे विभाजित है। प्रत्येक सर्ग के अन्त मे यह लिखा है "इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये सकल कलुष विध्वसने उमामहेश्वरसवाद- काण्डे—सर्ग।" प्रत्येक सर्ग के अन्त में कुछ शब्द मिटे से मालूम पड़ते हैं। ध्यान देकर देखने से विदित होता है कि उन मिटे हुए शब्दों का अन्तिम शब्द 'कृते' है। 'कृते' के पहले के चार अक्षर नहीं पढ़े जाते। इसका कारण समझ में नहीं आता कि प्रत्येक सर्ग के अन्त मे ग्रन्थकर्ता का नाम क्यों मिट अथवा मिटा दिया गया है।—यह (मानस) आधुनिक मालूम पड़ता है।'

२—उड़िया-अनुवाद

मेरे मित्र पंडित लोचनप्रसाद पांडेय (विलासपुर) के 'माधुरी' (वर्ष २, खंण्ड १, तुलसी सं० ३००, वि० सं० १९८०) मे प्रकाशित एक लेख से ज्ञात होता है कि उड़िया में 'रामचरितमानस' के चार अनुवाद हैं। पहला अनुवाद गोविन्दसाव नामक एक तेली ने किया था। उसने अपने अनुवाद का नाम 'गोविन्द-रामायण' रखा है। अनुवाद के विषय में वह लिखता है :

तुलसीदासकर ए रामायण-सार।

अर्थ देखि लेखह गोविन्दशाहु छार॥

यह अनुवाद उसने सं० १९२० के आस-पास किया था। यहाँ उसके अनुवाद का कुछ अंश मूल के साथ दिया जाता है :

मूल—नीति निपुन सोइ परम सयाना।

श्रुति सिद्धान्त ठीक सोइ जाना॥

सोइ कवि-कोविद सोइ नर धीरा।

जो छल छाँडि भजै रघुबीरा॥

उडिया—नीति रे निपुण सेहि परम चतुर।

निगम सिद्धान्ते दक्ष सेहि भाग्यधर॥

सेहिटि कवि कोबिद सेहि नर धीर।

छल त्यागि करे जेहू भजे रघुबीर ।।

शेष तीन अनुवाद खरियार के राजा वीर विक्रमसिंह, बाबू रामप्रसाद बोहिदार, बी० ए०, बी० एल०, बी० टी० और पंडित स्वप्नेश्वरदास ने किये हैं।

रायबहादुर कविवर राधानाथरायजी ने तुलसीदास के वर्षा और शरद्वर्णन का अनुवाद उड़िया में किया है। उसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं :

मूल—बुद अघात सहै गिरि कैसे।
खल के बचन सन्त सहै जैसे ।।
अनुवाद—सहति धारापात शइलगण।
खल बचन यथा यथा सहे सुजन ।।

३—बंगला-अनुवाद

पहला अनुवाद पुरुलिया (बंगाल) के वकील श्रीमदनमोहन चौधरी, बी० एल० ने 'पयार' और 'त्रिपदी' छन्दों में किया है। दूसरा अनुवाद 'तुलसी-चरितामृत' नाम से प्रकाशित हुआ था। श्रीसतीशचन्द्रदास गुप्त ने अभी हाल ही में एक और अनुवाद किया है, जो कलकत्ता के 'खादी-प्रतिष्ठान' से प्रकाशित हुआ है। बँगला-अनुवादों मे मूल के शब्दों की रक्षा बड़ी सावधानी से की गई है। यहाँ 'तुलसी-चरितामृत' से मूल के साथ अनुवाद की कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं :

मूल—कोटि मनोज लजावनहारे।
सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ।।
अनुवाद—जार रूप हेरि लज्जा पाय कोटि मार।
सुमुखि बलना तिनि के हन तोमार ।।
मूल—सहज सुभाव सुभग सुनु गोरे।
नाम लखन लघु देवर मोरे ।।
अनुवाद—सरल स्वभाव गौर तनु सुशोभन।
कनिष्ठ देवर मोर नाम श्रीलक्ष्मण ।।
मूल—बहुरि बदन विधु अचल ढाँकी।
पिय तन चितै भौह करि बाँकी ।।
खंजन मंजु तिरीछे नैननि।
निज पति कहेउ तिनहिं सिय सैननि ।।
अनुवाद—अंचल ढाँकिया पुनः सुधाकरानने।
भ्रू बक्र करिया चान प्रियतम पाने।

मजुल खजन ऑखि करि वक्राकार।
इंगिते कहेनि रामे पति आपनार ॥

४—गुजराती-अनुवाद

सस्तुं साहित्य-वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद के संचालक भिक्षु अखंडानन्द ने पंडित छोटालाल चन्द्रशंकर शास्त्री से 'रामचरितमानस' की टीका कराकर प्रकाशित की है। टीका के साथ तुलसीदास का जीवन-वृत्तान्त भी दिया गया है। टीका का परिचय आगे दिया जाता है :

मूल—सब विधि सोचिय पर अपकारी।
निज तनु पोषक निर्दय भारी ॥

टीका - जे बीजानों अपकार करतो होय तथा पोताना शरीरनो पोषक अने अतिशय निर्दय होय, तेनो सर्व प्रकार शोक करवो जोइये।

कई वर्ष पूर्व, महात्मा गांधी ने वर्धा में मुझे बताया था कि गुजराती मे 'रामचरितमानस' की एक और टीका प्रकाशित हुई है। उसकी वे प्रशंसा भी कर रहे थे, पर वह मेरे देखने मे नहीं आई।

५—अंग्रेज़ी-अनुवाद

यह अनुवाद श्री एफ० एस० ग्राउस, (B. C. S., M. A. Oxon, C I E., Fellow of the Calcutta University) ने अंग्रेज़ी गद्य में किया है। इसका छठा संस्करण इलाहाबाद के बुकसेलर श्रीरामनारायन-लाल ने सन् १९२२ में प्रकाशित किया था। इसमे एक-एक शब्द का अनुवाद करके कवि के भावों को स्पष्टता से व्यक्त करने का सफल प्रयत्न किया गया है। इसमे मूल नहीं दिया गया है। केवल दोहे का नम्बर देकर चौपाइयों का पुञ्ज अलग करके टीका की गई है।

मूल—मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेक ॥

अनुवाद—ए चीफ शुड बी लाइक दि माउथ, विच अलोन (सेज़ तुलसी) डज़ आल दि ईटिंग एण्ड ड्रिंकिंग, एण्ड यट स्पोर्ट्स एण्ड नरिशेज़ टू ए नाइसटी ईच सेपरेट मेम्बर ऑव दि बॉडी।

रामचरितमानस की टीकाएँ

'रामचरितमानस' पर अब तक बीसों टीकाएँ हो चुकी है। फिर भी मानस-भक्तों को अभी तृप्ति नहीं हुई है। इस समय भी कुछ टीकाएँ लिखी जा रही है और कुछ छपने पर है। यहाँ कुछ मुख्य-मुख्य प्राचीन टीकाओं के संक्षिप्त परिचय उदाहरणों के साथ दिये जा रहे है —

१. ज्ञानी संतसिंह (पंजाबी; श्रीदरबार साहब, अमृतसर) की टीका।

मानस-भाव-प्रकाश—

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करो सु मम उर धाम, सदा छीरसागर सयन॥

अर्थ—इन्दीवर सम जिनका रुचिर रूप अरु रक्त कमलों सम दृग है। अरु खीर निधि में जिनका सयन है। सो मेरे रिदै विषे बसो तत्त्व यह अपणा बिश्राम करके मेरे रिदै को भी पयनिधिवत् उज्ज्वल अरु गंभीर करो।

यह टीका संवत् १८८८ में लिखी गई।

२. श्रीबैजनाथजी कूर्मवंशी की टीका।

ध्वज कुलिश अंकुश कज युत बन फिरत कटक किन लहे।
पद कज द्वन्द मुकुन्द राम रमेश नित्य भजामहे॥

अर्थ—जिन पायँन में ध्वजा चिह्न जाके ध्यानते बिजय मिलती है। पुनः कुलिश बज्र-चिह्न है जाके ध्यान ते कमलपत्रवत् भवजल नहीं छुइ जात। ऐसे-ऐसे प्रभाव है जिनमें ते अरतालिस चिह्न दोऊ पाँयन में है तिन चिह्नन-युत पद कंजबन में फिरत समय काँटा काँकरन लह्यउ उन पाँवन को स्पर्श पाइ कृतार्थ भये।

यह टीका मुंशी नवलकिशोर, लखनऊ के छापेखाने मे, जनवरी १८९० ई० में छपी थी।

३. पंडित शिवलाल पाठक की टीका।

श्रीमन्मानस-अभिप्राय-दीपक (पद्य)—

धर्म सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछूँदरि केरी॥

टीका—मरन नेह क्लेदन धरम, उर कैकयि जल जानि।
दुर्गधहि उत्सर्प तजि, सुत इत रानि सयानि॥

यह टीका केवल बाल-कांड और अवध-कांड पर है। इस टीका की टीका श्रीयुक्त इन्द्रदेवनारायण ने गद्य मे की है।

४. श्री देवतीर्थ (काष्ठजिह्वा)स्वामी की टीका।

मानस-परिचर्या—

बंदौ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।

टीका—पदुम में चारि गुन है, रुचि, बास, रस, रंग, ये सब गुन पराग में है। संका। चरन रज की बड़ाई कौने हेतु से बहुत कही। समाधान। चरन में अंगुष्ठ सेषनाग है अंगुरी दिग्गज है, पृष्ठ कूर्म है, एड़ी बराह है, तरवा सगुन ब्रह्म हैं, रज सत्ता स्वरूप है, एहि हेतु से रज की बड़ाई कही।

५. श्रीमन्महाराज द्विजराज काशिराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह बहादुर, जी० सी० एस० आई० की टीका।

मानस-परिचर्या-परिशिष्ट—

चौपाई वही जो ऊपर ४ नं० मे दी हुई है।

टीका—रुचि का वहाँ कौन प्रयोजन बाजे चीज में गन्ध है जैसे चोआ परन्तु रुचि नाहीं, बाजे चीज मे रुचि है, गध नाहीं, जैसे सोना बाजे चीज में सुगंध रुचि सरस है पै रंग नाहीं, जैसे सिखरन रज मे चारो।

६. परमहंस प्रशंसमान हंसवंशावतंस श्रीजानकीरमणचरण सरोरुह-राजहंस श्रीसीतारामाय हरिहरप्रसादजी की टीका।

मानस-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश—

चौपाई वही जो ऊपर ४ नं० मे दी हुई है।

टीका—सुन्दर रुचि करिकै सुन्दर बासना करिकै सुन्दर सरस अनुराग करिकै गुरु पद्म पराग को बन्दत हौ।

न० ४, ५, ६ के तीनों टीकाकारों की टीकाएँ एक ही जिल्द मे 'रामायण-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश' नाम से सं० १९५५ मे खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर से प्रकाशित हुई थीं।

७. मुन्शी शुकदेवलाल (मैनपुरी-निवासी) की टीका।

मानस-हंस-भूषण—

कादर मन कहँ एक अधारा।
दैव-दैव आलसी पुकारा॥

टीका—और दैव-दैव-दैव यह जो आलसी पुकार है सो तो असमर्थ जीवों के मन को एक यही अधार है।

यह टीका कलि-संवत् ४९७० में लिखी गई और नवल-किशोर प्रेस लखनऊ से सं० १९१२ में प्रकाशित हुई।

मेरे देखने मे जितने 'मानस' आये, उनमे केवल उक्त मुन्शी जी न बाल-कांड के प्रारम्भ मे 'नर हर' पाठ रखा है।

८. महन्त श्रीरामचरणदास जी (अयोध्या-निवासी) की टीका।

निज भ्रम नहि समुझहिं अज्ञानी।
प्रभु पर मोह धरहि जड प्रानी॥

टीका—हे भरद्वाज मुनि, श्रीमहादेव जी बोलते भये है पार्वती सुनु यहै तेरो कहना अनुचित भयो है जो तुम कहेहु कि राम आन है ऐसो तौ ते कहहि जे प्राणी अज्ञानी है जे अपनो भ्रम नही समझते है अस अपनो मोह प्रभु विषे

रोपण करते है यह कहते है कि जो राम परमेश्वर परब्रह्म होते तौ जानकी जी को क्यों ढूंढ़ते फिरते तहाँ प्रभु की चित्र-विचित्र लीला वे जड़ प्राणी कहा जानै है।

यह टीका नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुई है। इसमें तुलसीदास की जीवनी भी दी हुई है, जो बैजनाथ जी कुरमी की बनाई हुई पद्य मे है, पर इसमे उनका नाम नहीं दिया है।

९. पंडित रामेश्वर भट्ट की टीका।

पीयूष-धारा—यह टीका आगरा-निवासी स्वर्गीय पंडित रामेश्वर भट्ट ने सं० १९५६ मे समाप्त की। इसका सं० १९८१ का सातवाँ संस्करण मेरे सामने है। इसमे मूल के तद्‌भव शब्दों को तत्सम कर दिया गया है और बीच-बीच में क्षेपक भी जोड़ दिये गए है।

मुनि सुसीलता अपनी करनी। सुरपति सभा जाइ सब बरनी।
सुनि सबके मन अचरज आवा। मुनिहि प्रससि हरिहि सिर नावा।

टीका—और मुनि की सुशीलता और अपनी करनी इन्द्र की सभा में जाकर वर्णन करी। यह सुन सबके मन में आश्चर्य हुआ, सबने मुनि की प्रशंसा कर प्रभु को दण्डवत् करी।

१०. श्रीरामप्रसाद शरण (कनक-भवन, अयोध्या) की टीका।

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ मन्द मति कारन कागा।

टीका—जानकी जी के चरण मे चोंच मारकर भागा। ऐसा क्यों किया ? उस पर कहते है कि मूढ़ अर्थात् अज्ञानी है—बुद्धि-हीन है। इसी से सब पक्षियों में अधम जो काक है वही शरीर धारण किया। पक्षी जब तक उड़ते रहते है तब तक उनका पग सिमटा रहता है। जब कहीं बैठ जाते है तब पग से कुछ कार्य कर सकते है। कोई ऐसा भी अर्थ करते है कि श्रीजानकी जी को चरण और चोंच मारकर भागा।

११. पंडित विनायकराव (जबलपुर) की टीका।

यह टीका जबलपुर के स्वर्गीय पंडित विनायकराव ने सं० १९७१ में लिखी थी। यह टीका कथा बाँचने वाले पंडितों के बड़े काम की है, क्योंकि प्रत्येक प्रसंग पर हिन्दी के अन्य कवियों के छन्द और गान इसमें दिये हुए है। इसमें भी संस्कृत शब्दों के शुद्ध रूप दिये गए है। यह टीका 'मानस' के सातों कांडों पर है। प्रत्येक कांड के अन्त में एक विस्तृत 'पुरौनी' दी गई है, जिसमें कांड भर की शङ्काओं का समाधान तथा अनेक ज्ञातव्य बातों का समावेश भी कर दिया गया है :

परवश सखिन लखी जब सीता।
भयउ गहरु सब कहहि सभीता।।
पुनि आउब इहि बिरियाँ काली।
अस कहि मन बिहँसी इक आली।।

टीका—जब सखियों ने देखा कि सीताजी तो दूसरे के आधीन हो रही है (अर्थात् रामचन्द जी के प्रेम में पग गई हैं), तब तो सब-की-सब डर के मारे कह उठीं कि देरी हो गई है। (इतने ही में) एक सखी यह कहकर कि 'पुनि आउब इहि बिरियाँ काली' **मन-ही-मन मुसकराने लगी।**

सूचना—'पुनि आउब इहि बिरियाँ काली' **इन शब्दों के विषय में गोस्वामी जी आगे लिखते है कि** 'गूढ गिरा सुनि सिय सकुचानी' **इससे स्पष्ट है कि इसमें बहुत गूढ़ भाव भरा हुआ है सो यों कि—**

(१) 'इसी समय कल फिर आवेंगी' अर्थात् आज विशेष प्रेम के कारण बहुत देरी हो चुकी है सो जल्दी घर चलो कल फिर आवेंगी।

(२) आज तुमने पूजा के हेतु यहाँ आकर इतनी देरी लगाई है सो 'कल फिर इसी समय आ सकोगी' क्या ? अर्थात् माताजी कल न आने देवेंगी।

(३) राजकुमारों को यहाँ एकान्त में देख लेने का सुअवसर आज ही मिला है 'कल फिर क्या ऐसा समय आवेगा' अर्थात् नहीं आवेगा, कारण धनुष-यज्ञ हो चुकेगा।

(४) सखी यह दर्शाती है कि अब चलो घर चलें कल यही समय फिर आवेगा। अर्थात् कल इसी समय धनुज्ञ-यज्ञ होगा। वहाँ सब राजाओं के साथ ये राजपुत्र भी आवेंगे तब उन्हें फिर देख लेना।

१२ स्व० बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०, की टीका।

करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरद छवि, करन मधुप इव पान।।

टीका—रामचन्द्रजी वार्तालाप लक्ष्मणजी से कर रहे है, पर मन सीताजी के रूप पर लुभाया हुआ है। जैसे भँवरा कमल के ऊपर बैठकर उसके मकरन्द (फूल के रस) को पीता है, और पीते समय चुप रहता है, फिर थोड़ी देर में उसी के आस-पास गूँजता है, वैसे ही यहाँ सीताजी के मुखकमल के छवि (कान्ति) रूपी मकरन्द को रामचन्द्र का मनरूपी भँवर पान कर रहा है। भँवर फूल का रस पीते समय उस फूल को तकलीफ देना नहीं चाहता, इसलिए बारम्बार उड़-उड़कर गूँजने लगता है। यहाँ भी रामचन्द्र उस मुख छवि को एकदम नहीं निहारते, बीच-बीच में लक्ष्मणजी से बातचीत करने

लग जाते हैं।

यह टीका इंडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुई है।

१३. पंडित महावीरप्रसाद मालवीय की टीका।

सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहि, भजिय महामाया पतिहिं॥

टीका—देवता, मनुष्य और मुनियों में कोई ऐसा नहीं है कि जिसको बलवती माया मोहित न करती हो। ऐसा मन में विचारकर विशाल माया-धीश का भजन करना चाहिए।

यह टीका सं० १६८२ में बेलवेडिर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुई थी।

१४. श्री जनकसुताशरण शीतलासहाय सावन्त की टीका।

मानस-पीयूष—

गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहन सीला।

टीका—दनुज=दैत्य, असुर, दनु से उत्पन्न। दनु दक्ष प्रजापति की कन्या का नाम है जो कश्यप ऋषि को ब्याही गई। इसके ४० पुत्र हुए, जो सब दानव कहलाते हैं। इन सबके पुत्र-पौत्रादिक भी दानव कहलाते हैं।

सीला=परिपूर्ण; 'शील' का अर्थ स्वभाव भी लोगों ने किया है।

अर्थ—हे गिरिजे! सुनो, श्रीरामचन्द्रजी की लीला देवताओं का हित और दैत्यों को विशेष मोहित करने वाली है।

नोट—इस चौपाई की जोड़ की चौपाइयाँ अयोध्या, अरण्य और उत्तर कांडों में भी हैं:

नर तन धरेउ सन्त सुरकाजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा।
राम देख सुन चरित तुम्हारे। जड मोहहि बुध होहि सुखारे॥
उमा राम गुन गूढ, पंडित मुनि पावहि बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ, जे हरि बिमुख न धरम रति॥
असि रघुपति लीला उरगारी। दनज बिमोहन जन सुखकारी।

नोट—'सुरहित दनुज बिमोहन शीला।'—देवताओं को हितकारिणी और दैत्यों को अहितकारिणी है। तात्पर्य यह है कि दैवी सात्विक बुद्धि वाले सज्जनों में इससे भक्ति, वैराग्य, विवेक की वृद्धि होती है। उनका लोक-परलोक दोनों बनता है। और राजस और तामस वृत्ति वालों में मोह की विशेष वृद्धि होती है। ये शास्त्रों में सुनते हुए भी मूढ़ बन जाते हैं। ईश्वर को प्राकृत नर ही कहने लगते हैं।

ये दो विरोधी बातें एक ही वस्तु से कैसे? जैसे स्वाती जल तो वही

होता है पर उसका बूंद पृथक्-पृथक् वस्तुओं में पड़ने से पृथक्-पृथक् गुण उत्पन्न करता है। देखिये सीप में पड़ने से वह मोती बन जाता है, वही केले में पड़ने से कपूर, बाँस में बंसलोचन, गोकर्ण में गोलोचन बन जाता है और सर्प में उसी से विष की वृद्धि होती है।

पुनः देखिये श्रीकृष्ण के जिस अद्भुत रूप को अर्जुन देखकर उनकी शरण गया उसी को दुर्योधन ने देखकर नट का खेल कहा। इत्यादि।

नोट—श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि शिवजी यह कहकर पार्वती जी को सावधान कर रहे हैं कि देखो फिर लीला में मोहित न हो जाना। इसी प्रकार जब अरण्य-कांड मे पहुँचे तब भी सावधान किया है, क्योंकि वहाँ तो वही लीला वर्णन होगी कि जिससे उसे सती तन मे मोह हुआ था।

अलंकार—रामलीला तो वही एक और उससे दो विरुद्ध कार्य होते है—देवताओं का हित और दैत्यों का मोहित होना अर्थात् अनहित। अतएव प्रथम व्याघात अलंकार हुआ।

'मानस' की टीकाओं में यही टीका सबसे बड़ी है। इसमें एक-एक शब्द पर बहुत बारीकी से विचार किया गया है। इसका मूल्य भी सभवत ३५) के लगभग है।

यह टीका सात-आठ वर्षों के लगातार परिश्रम से तुलसी-सं० ३११ (वि० सं० १९९१) में सम्पूर्ण हुई।

इन टीकाओं के सिवा पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ 'मानस' की बहुत सी अन्य टीकाएँ भी मिलती हैं।

रामचरितमानस का भूगोल

इस विषय पर सं० १८६० के श्रावण मास की 'माधुरी' में सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ स्वर्गीय श्री हीरालाल ने एक लेख लिखकर अच्छा प्रकाश डाला है। उसका सारांश यहाँ दिया जाता है—

"रामायण में भौगोलिक नाम ५० से अधिक नहीं है। कुछ नाम बार-बार आते हैं। अवध या उसके पर्यायवाची अवधपुर, अवधपुरी, अयोध्या, कोशल, कोशला, कोशलपुर, कोशलपुरी, रामपुर, रामपुरी या दशरथपुर, ये नाम १०० से अधिक बार आए है। अकेले अयोध्या-कांड में अवध का नाम ५४ बार आया है। सुरसरि और उसके पर्यायवाची सुरसरिता, देवसरि, देव-धुनी विबुध-नदी और गंग या गंगा का नाम ५० बार से अधिक मिलता है। ३५ बार लंका, २६ बार हिम-गिरि, २३ बार प्रयाग, १८ बार चित्रकूट, १६ बार सरयू,

११ बार यमुना, १० बार कैलाश, ८ बार मिथिला, ७ बार काशी और त्रिवेणी, ६ बार दंडक और पंचवटी, पाँच बार शृङ्गवेरपुर या सिंगरौर, ४ बार मंदाकिनी, विंध्याचल और गोदावरी, ३ बार तमसा, गोमती, प्रवर्षण-गिरि, त्रिकूट-गिरि और अशोक वन और २ बार से कम कर्मनाशा, मेकल-सुता, सई, नील-गिरि, सेतुबंध और सुबेल के नाम नहीं आए। प्रसंगानुसार नंदि-ग्राम, बदरी-वन, नैमिष, केकय-देश, मग, मरु-देश, मालव, उज्जैन, सोन-नद, मानस, पंपा-सरोवर, ऋष्यमूक, रामेश्वर आदि का नाम भी कम-से-कम एक बार तो आ ही गया है। कहीं-कहीं पौराणिक भूगोल के नाम भी आ गए हैं; सुमेरु, सरस्वती, सप्तदीप, भोगवती, अमरावती, मंदर, मैनाक आदि। कई स्थलों में राजों आदि के नाम भौगोलिक नामो पर से बतलाये गए है; जैसे अवधेश, अवधपति, कोशलेश कोशलाधीश। लंका-कांड में तो कोशलाधीश की भरमार है। इसी प्रकार जनक के नाम मिथिलेश, तिरहुति-राउ, विदेह और उनकी लड़की का नाम मैथिली, वैदेही आदि से कई स्थलों मे सूचित किया गया है। रावण के लिए लंका-पति, लंकेश आदि का प्रयोग किया गया है।

राम-वनवास के सम्बन्ध में जितने भौगोलिक नाम चाहिएँ, उतने तो नहीं है, फिर भी कुछ मुख्य-मुख्य स्थानों के नाम आ ही गए है। अवध के निकटस्थ स्थानों के नाम कुछ विशेष हैं; परन्तु ज्यों-ज्यों वहाँ से फासला बढ़ता है, त्यों-त्यों स्थलों के नाम न्यून होते गए हैं। राम-प्रवास के तीन अड्डे मुख्य है; चित्रकूट, पंचवटी और प्रवर्षण-गिरि। पहले अड्डे तक तो सई-सरीखी सड़ी नदी पार करने का भी उल्लेख है।

चित्रकूट के आगे बहुत ही बड़े भौगोलिक स्थलों का नाम कहीं-कहीं आ गया है; नहीं तो मुनियों के आश्रम से राम-भ्रमण के पते का इङ्गित भर किया गया है। दूसरे अड्डे से लंका पहुँचने तक बहुत ही कम नाम लिखे गए है।

यद्यपि बाल-कांड में राम-विवाह तक का वर्णन है, तथापि उसमें प्रायः सभी स्थानों का नाम आ गए है; क्योंकि आदि में तुलसीदास ने कथा-प्रसंग से रामायण का सार ही वर्णन कर दिया है।

सबसे मुख्य स्थान अयोध्या है; जहाँ राम का जन्म हुआ। अयोध्या इसी नाम से अब भी वर्तमान है, यद्यपि उसका विस्तार बहुत छोटा हो गया है और वहाँ अब कोई ऐसे चिह्न विद्यमान नहीं है, जो राम के समय के हों। जन्म-स्थान पर एक चबूतरा बना है।

रामायण से अवध शब्द का बहुत उपयोग किया गया है। अयोध्या शब्द

केवल उत्तर-कांड में एक बार ही उपयोग मे लाया गया है। किष्किधा-कांड को छोड़कर कोई कांड ऐसा नहीं, जिसमें अवध का नाम किसी रूप में न आया हो। किष्किधा-कांड में भी 'कोशलेश' शब्द आया है: जो राम की जन्म-भूमि का स्मरण कराता है। राम का विवाह मिथिला मे हुआ, इसलिए उसका जिक्र बाल-कांड में कई बार मिथिला, विदेहपुर, जनकपुर और तिरहुत के रूप में किया गया है। इनकी स्थिति नैपाल की तराई मे बतलाई जाती है। लोग वहाँ तीर्थ-यात्रा को जाया करते है।

बाल-कांड में जिन दो-चार देशों के नाम आए है, वे गुण-अवगुण दिखलाने के लिए लिखे गए है, न कि भौगोलिक सम्बन्ध से, यथा—'कासी-मग सुरसरि कर्मनासा; मरु मालव, महिदेव गवासा।' अयोध्या-कांड मे भी 'कर्मनास जल सुरसरि परई, तेहि को कहउ, सीस न धरई।' जैसे गंगा तारने वाली और कर्मनाशा नदी कर्म का नाश करने वाली है, वैसे ही काशी मोक्ष देती है। और, 'मगहर मरै, सो गदहा होई।' यदि मग का अर्थ मगध है, तो वह भी कुदेश का सूचक है। कर्मनाशा नदी कैमोर पर्वत से निकलकर चौसा के पास गङ्गा में मिली है। राजपूताने का मरुस्थल और उसी से लगा हुआ मालवा देश, ये ऊसर और उपजाऊ की सीमा दिखाते हैं। ऐसी ही उपमाओं के प्रसंग में नर्मदा और सोन का नाम आ गया है। तुलसीदास लिखते है—राम-कथा शिव को 'मेकलशैल-सुता-सी' प्रिय है। अयोध्या-कांड में बड़ी नदियों के सम्बन्ध से 'मेकल-सुता' का नाम लिखा गया है—'सुरसरि, सरस्वति, दिनकर-कन्या; मेकल-सुता, गोदावरि धन्या। सब सर, सिन्धु, नदी, नद नाना, मंदाकिनी कर करहिं बखाना।' ऐसे ही सरयू की प्रशंसा में सोन का नाम आ गया है—'राम, भक्ति-सुरसरि तहिं जाई; मिली सुकीरिति-सरजु सुहाई। सानुज राम-समर यश पावन; मिलेउ महानद सोन सुहावन।' नर्मदा और सोन, दोनों अमरकंटक से निकली है, और एक खम्भात की खाड़ी मे तथा दूसरी गङ्गा में जा मिली है। सोन पुरुषवाची महानद कहलाता है। वह नर्मदा से विवाह करना चाहता है; परन्तु नर्मदा की अप्रसन्नता हो जाने से सम्बन्ध न हो सका। रामावतार का हेतु-वर्णन करते समय 'तीरथबर नैमिष बिख्याता' का नाम भी आ गया है: जहाँ स्वायंभुव मनु तप करने के लिए 'पहुँचे जाइ धेनु-मति तीरा।' नैमिषारण्य, अवध में, सीतापुर से बीस मील, गोमती के बाएँ किनारे पर है। अब इसको नीमखार या नेमसार कहते है। रामावतार-वर्णन के सिलसिले ही में प्रतापभानु का जिक्र आता है। वह केकय-देश का राजा था। केकय-देश काश्मीर राज्य में है। उसका वर्तमान नाम कक्का है।

अयोध्या के उत्तरीय अंचलस्थ चार और स्थानों के नाम आते हैं—हिम-गिरि, कैलास, बदरी-वन और मानसरोवर। हिम-गिरि, हिमाचल, हिमवंत, गिरीश, गिरिपति आदि हिमालय के नाम हैं। उसका जिक्र पार्वती के पिता के रूप में अनेक बार किया गया है। कैलास या शिव-शैल इसी पर्वत की एक चोटी है, और बदरी-वन वर्तमान बदरीनाथ है। मानसरोवर हिमालय श्रेणी ही में प्रख्यात झील है। मालवा की प्रख्यात उज्जयिनी का नाम कागभुशुंड के भ्रमण में, न कि राम-चरित के सम्बन्ध में आया है। इन स्थानों का निबटारा होने से अब केवल वे ही स्थान बच रहते हैं जो राम-वनवास के समय राम के मार्ग में पड़े, या प्रवास के सम्बन्ध से उनकी चर्चा उठी।

राम अवध से चित्रकूट तक जिस मार्ग से गए, उसके विषय में मतभेद नहीं है। अवध से चलकर 'तमसा-तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ।' तमसा या टौंस एक छोटी सी नदी है; जो अयोध्या के पश्चिम से निकलकर बलिया के पास गङ्गा में मिली है। दूसरा मुकाम गङ्गा के किनारे शृङ्गवेरपुर (वर्तमान सिंगरौर) में हुआ। तीसरा मुकाम एक वट-वृक्ष के नीचे, और चौथा मुकाम तीर्थराज प्रयाग में हुआ। वहाँ से चलकर पाँचवाँ मुक़ाम शायद यमुना के किनारे और छठा वाल्मीकि के आश्रम में हुआ। परन्तु वहाँ ठहरने का कुछ पता नहीं लगता। वाल्मीकि ने उन्हें चित्रकूट में वास करने का उपदेश दिया। यदि आश्रम में रात-भर ठहर गए होंगे, तो वह सातवें मुक़ाम में चित्रकूट पहुँचे होंगे।

राम ने पहले मंदाकिनी में स्नान किया; जो एक छोटी सी नदी है, और चित्रकूट के तले पयोष्णी से मिल गई है। चित्रकूट बाँदा जिले में, प्रयाग (इलाहाबाद) से ७१ मील दूर है। इस प्रकार यदि चित्रकूट में सातवाँ मुकाम हुआ हो, तो प्रायः २०-२५ मील नित्य चलना पड़ा होगा। चित्रकूट में भरत आकर मिले। वह ६ मुकाम करके वहाँ पहुँचे। उनका प्रथम दिवस तमसा-तट पर, और दूसरे दिन गोमती के तीर पर निवास हुआ। तीसरे दिन सई नदी के किनारे डेरा पड़ा। यह नदी गोमती और गंगा के बीच में पड़ती है, और जौनपुर के निकट गोमती में मिल गई है। चौथे दिन गंगा के किनारे शृंगवेरपुर में ठहरे। पाँचवें दिन प्रयाग में प्रवेश किया, और त्रिवेणी में स्नान करके भरद्वाज के अतिथि बने। वहाँ से चलकर छठा मुकाम किसी अज्ञात जगह में हुआ। फिर सातवाँ मुकाम यमुना के किनारे हुआ। इसके पीछे आठवाँ और नवाँ मुकाम बीच में करके दसवें में चित्रकूट पहुँचना ज्ञात होता है। जान पड़ता है, लौटने पर भरत बड़ी फुर्ती से गए। चार ही मुकाम में

अयोध्या पहुँच गए और निकटस्थ नंदिग्राम में रहना निश्चित किया। रामायण में चित्रकूट को कामद और राम-गिरि कहा है। वहीं अगस्त्य का आश्रम था। वहाँ भी राम कुछ दिन ठहरे थे। चित्रकूट और रामटेक के बीच के स्थानों के नाम रामायण में नहीं मिलते। केवल कुछ थोड़े से आश्रमों के नाम लिखे है। यथा चित्रकूट से कूच करके वह अत्रि के आश्रम को गए, और वहाँ से शरभग ऋषि के आश्रम को। पश्चात् सुतीक्ष्ण के और फिर अगस्त्य के आश्रम में पहुँचे। इन सबका जिक्र अरण्य-कांड मे है। चित्रकूट को छोड़ने पर राम ने अरण्य मे प्रवेश किया था। विन्ध्याचल से गोदावरी नदी तक दंडक-वन का विस्तार था।

ऊपर लिख आये हैं कि अगस्त्याश्रम का सदर-स्थान रामटेक था। वह चित्रकूट से तीन सौ मील से अधिक दूर है। इस विस्तीर्ण स्थल में जान पड़ता है। दो ही मुनियों के मुख्य आश्रम थे—अत्रि और शरभंग के। रामटेक से पंचवटी भी ३०० मील दूर पड़ती है। इसके बीच मे किसी बड़े मुनि का आश्रम नहीं था। यहाँ पर सघन जंगल अब तक है। यहाँ के निवासी विशेषकर गोंड है; जो लगभग पचास वर्ष पूर्व तक किसी जगह बिलकुल नंगे रहते थे। अगस्त्याश्रम को छोड़कर राम पंचवटी ही में रमे। कई लोग नासिक को पंचवटी बतलाते है। परन्तु यह भ्रम है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि पंचवटी बस्तर-रजवाड़े के दक्षिणी छोर पर, गोदावरी के किनारे है। उस गाँव का नाम अभी तक पर्णशाला चला आता है। जिस स्थान से सीता-हरण हुआ था, वहाँ पर एक पत्थर है; जिसमे सीताजी के दो छोटे-छोटे पैर और रावण का एक बड़ा भारी पैर बना है।

सीता-हरण होने के पश्चात् पम्पा-सरोवर का नाम आता है। यह स्थान भी पंचवटी से ३०० मील से कम दूर नही है। पम्पा-सरोवर निजाम के राज्य मे, दक्षिण के छोर पर, अनगुण्डी-गाँव के निकट है। वहाँ तुङ्गभद्रा का किनारा है। उस पार विजयनगर की उजाड़ बस्ती है। वहीं पर प्रवर्षण गिरि है, जहाँ एक चट्टान पर राम का मन्दिर बना है। पम्पा से लगा हुआ ऋष्यमूक पर्वत है। ये सब स्थान किष्किन्धा में है। यहाँ पर राम ने अपनी सेना सजाई फिर चलकर समुद्र के किनारे सेतु बाँधा और रामेश्वर की स्थापना की। यहीं चार धामों में दक्षिण का धाम 'रामेश्वरम्' है। रामेश्वरम् से १२ मील पर धनुष्कोटि है। अब वहाँ से लंका को रेल बन गई है। जान पड़ता है, राम के सेतु ही की सीध मे यह बनाई गई है। इस मार्ग से समुद्र केवल ४० ही मील पड़ता है। राम की सेना सुबेल पर्वत पर ठहरी थी। इस पर्वत का पता कहीं

नहीं लगता। न रावण की राजधानी का पता है। अलबत्ता अशोक-वन 'नुबराएलिया' मे बतलाया जाता है। यदि यह राजधानी के निकट था, तो राम की सेना को 'जैफना' के पास उतरकर स्थल-मार्ग से, वहाँ पहुँचने को २०० मील के ऊपर चलना पड़ा होगा। इस स्थान के निकट 'पिडुरू-तला-गला' नामक लंका का सबसे ऊँचा पर्वत है। उसकी ऊँचाई मदरास के नीलि-गिरि के बराबर है। इसके निकट दो और बड़ी चोटियाँ है। शायद इसी पर्वत-श्रेणी का प्राचीन नाम त्रिकूट रहा हो। लंका की स्थिति त्रिकूट-गिरि पर बतलाई गई है। फौजों के छिपाने के लिए तो शायद विरला ही स्थान इससे अच्छा और सुभीते का निकलेगा। क्या आश्चर्य, जो यह दुर्गम स्थान दुर्ग के काम मे लाया जाता रहा हो।

रामायण में सिंहल की राजधानी लंका बतलाई गई है। परन्तु लंका नाम का कोई नगर नहीं है। इस सिंहल-द्वीप मे 'पोलन-नरुआ' नामक प्राचीन पुर है, जो पौलस्त्य-नगर का अपभ्रंश जान पड़ता है। यदि पोलन-नरुआ राजधानी रही हो, तो सुबेल-पर्वत निकट ही रहा होगा। तीन-चार मील पर एक पर्वत-श्रेणी है, जिसका सिरा जैफना और पोलन-नरुआ के बीच पड़ता है। यह मर्म-सूचक गिरितल्ला-नामक झील के पास है। बहुत करके इसी के निकटस्थ गिरि का प्राचीन नाम सुबेल रहा होगा, जिस पर राम की सेना जाकर ठहरी थी। समुद्र-तट से यहाँ तक पहुँचने के लिए राम-सेना को प्रायः पौने दो सौ मील चलना पड़ा होगा। यदि समुद्र-तट राजधानी से इतनी दूर न होता, तो कदा-चित् रावण के पहरुये सेतु बाँधने में बहुत सी बाधाएँ डालते। वे लोग अपनी राजधानी ही मे सोते रह गए और इधर राम की सेना सुबेल पर आ धमकी। यथार्थ बात चाहे जो हो, वर्तमान समय में लका में पोलन-नरुआ के सिवा ऐसा कोई दूसरा स्थान नहीं दीख पड़ता, जो रावण की राजधानी होने का दावा कर सके।"

महर्षि वाल्मीकि का आश्रम कहाँ था? इस विषय मे भी बड़ा मतभेद चला आता है। रामायण के सुप्रसिद्ध पंडित श्रीअवधवासी लाला सीताराम ने उक्त आश्रम के सम्बन्ध में विशेष रूप से खोज की है। उनके एक लेख का सारांश यह है:

"वाल्मीकि रामायण के अनुसार महर्षि वाल्मीकि श्रीरघुनाथजी से चित्र-कूट में मिले थे। इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि वे चित्रकूट के आस-पास दो-चार कोस पर कहीं रहते हों और महाराज दशरथ के साथ मेल-व्यवहार होने के कारण श्रीरघुनाथजी का आगमन सुनकर मिलने के लिए

चले गए हों। जिस पहाड़ी पर वाल्मीकि का आश्रम बतलाया जाता है उसको भौंरी या लालापुर की पहाड़ी कहते है और गुरौली घाट, जिससे श्रीरामचन्द्रजी का यमुना-पार करना बतलाया जाता है, और चित्रकूट के बीच मे है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी रामायण के अयोध्या-कांड मे इसी स्थान पर वाल्मीकि का आश्रम माना है, जहाँ सीता और लक्ष्मण समेत :

देखत बन सर सैल सुहाये। बालमीकि आश्रम प्रभु आये।
राम दीख मुनि वास सुहावन। सुन्दर गिरि कानन जल पावन।

बिठूर मे वन और सर तो हो सकते है पर सैल का वहाँ क्या, वहाँ से दस-बीस कोस इधर-उधर भी अत्यन्ताभाव है। यही वाल्मीकिजी से श्रीरघु-नाथजी ने कहा था :

अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदवेगु न पावइ कोई।
अस जिय जानि कहिअ सुइ ठाऊँ। सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ।
तहँ रुचि रुचिर परन तृनशाला। बासु करउँ कछु काल कृपाला।

इसके उत्तर मे वाल्मीकिजी ने कहा :

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू।

दूसरा वाल्मीकि का आश्रम बिठूर में माना जाता है। 'रघुवंश' मे भी शत्रुघ्नजी का मथुरा जाते हुए इसी आश्रम मे ठहरना ठीक जँचता है। परन्तु हमारे मित्र पण्डित हरिहरदत्त शास्त्री ने इसकी जाँच की है। शास्त्री जी लिखते है :

"लवकुशोत्पत्ति-स्थान कानपुर से पश्चिम सात कोस बी० बी० सी० आई० रेलवे के स्टेशन चौबेपुर से तीन मील उत्तर मौजा बेलारुद्र मे है। यह स्थान बिठूर से ६ मील पश्चिम मे है, जहाँ पर वाल्मीकि मुनि का स्थान, सीता जी का निवास-स्थान और वाल्मीकीय रामायण-प्रणयन-स्थान युक्त वाल्मीकि-कुण्ड है। यहाँ से दक्षिण एक मील तमसा और उत्तर एक मील गङ्गाजी है। जो वाल्मीकीय के उत्तर-कांड मे रामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से सीताजी के परि-त्याग का स्थान बतलाया था।

तीसरा वाल्मीकि-स्थान केवल संस्कृत पढ़ने वाले नहीं जानते। वह गङ्गा-तट पर बनारस-राज मे है। उसकी भी मैने जाँच कराई और एक नक्शा भी भी बना है। इसको भी वाल्मीकि का आश्रम गोस्वामी तुलसीदासजी ने माना है। यद्यपि रामायण के अयोध्या-कांड मे, जैसा ऊपर लिखा गया, वाल्मीकि का आश्रम प्रयाग से चित्रकूट की राह मे है और वहाँ पहाड़ी के ऊपर आश्रम बताया जाता है और इस आश्रम के आस-पास पहाड़ी का नाम नहीं है। इसका

वर्णन लिखने से पहले 'कवितावली' से इस विषय के कवित्त उद्धृत किये जाते हैं :

> जहाँ बाल्मीकि भये ब्याध ते मुनीन्द्र साधु
> मरा मरा जपे सिख सुनि ऋषि सात की।
> सीय को निवास लवकुश को जनम थल
> तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की।।
> विटप महीप सुरसरित समीप सोहै
> सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी।
> बारीपुर डीवपुर बीच बिलसत भूमि
> अंकित जौ जानकी चरण जलजात की।।

इस स्थान को आजकल सीतामढ़ी कहते हैं और यह बनारस-राज्य में गंगाजी के उत्तर तट पर है। यहाँ से बारीपुर एक मील पूर्व और दीग (दिगपुर) तीन मील दक्खिन है। सीतामढ़ी इलाहाबाद से बनारस को जो छोटी लैन (B. N. W.) जाती है, उस रेलवे के भीटी स्टेशन से छः मील पर है। सड़क कच्ची है परन्तु सूखे दिनों में इक्का जा सकता है।

वाल्मीकि का चौथा स्थान फैजाबाद के जिले में तमसा (मड़हा) के तट पर है।

अब बताइये कौन सा स्थान ठीक माना जाय ? सम्भव है कि वाल्मीकिजी रमते योगी की भाँति अपना स्थान बदलते रहे हों, परन्तु यह असम्भव है कि लव-कुश का जन्म बिठूर में भी हुआ हो और सीतामढ़ी में भी।"

कवितावली

तुलसीदास के ग्रन्थों में 'रामचरितमानस' के बाद 'कवितावली' को एक प्रमुख स्थान दिया जाता है। केवल इसीलिए नहीं कि इसमें नवों रसों में उच्चकोटि की कविता है, बल्कि इसलिए भी कि इससे तुलसीदास की जीवनी और तत्कालीन अन्य घटनाओं पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। 'कवितावली' में हम तुलसीदास की दीन-दशा का जितना ही गहरा अध्ययन करते हैं, उतना ही उनका गौरव बढ़ता जाता है। राम के लिए 'रामचरितमानस' जितना आवश्यक है, उतना ही तुलसीदास के लिए यह 'कवितावली' है।

'कवितावली' सात कांडों में विभक्त है। इसके प्रत्येक कांड की छन्द-संख्या इस प्रकार है :

बाल-कांड	२२
अयोध्या-कांड	२८
अरण्य-कांड	१
किष्किधा-कांड	१
सुन्दर-कांड	३२
लंका-कांड	५८
उत्तर-कांड (हनुमान-बाहुक-सहित)	२२७
	३६६

इसके अरण्य और किष्किन्धा-कांड मे एक ही छन्द है। जान पड़ता है, इनके अन्य छन्दों के भाव तुलसीदास ने 'मानस' मे ले लिये और उन्हें 'कविता-वली' मे से निकाल दिया।

'कविताधली' मे तुलसीदास की छात्रावस्था से लेकर उनके जीवन के अन्त समय तक की रचनाएँ, जो समय-समय पर होती रही, संगृहीत है। इससे इसमे तुलसीदास की कवित्व-शक्ति के विकास का एक मनोरजक इतिहास भी सन्नि-विष्ट है। जो रचनाएँ तुलसीदास के प्रारम्भिक दिनों की हैं, उनमे शब्दाडम्बर खूब है। पर जैसे-जैसे कवि का अनुभव बढ़ता गया, कवित्व-शक्ति विकसित होती गई, वैसे-वैसे अर्थ-गाम्भीर्य बढ़ता गया है। पहले के छन्द समस्या-पूर्ति की तरह लिखे गए जान पड़ते है, इसमे उनमे तोड़े-मरोड़े शब्दों मे भावों को फँसाने का प्रयास किया गया दिखाई पड़ता है। पर आगे के छन्दों में कवि की शब्द-संकीर्णता जाती रही थी और वह धारा-प्रवाह की भाँति मन के भावो को इच्छित शब्दों मे प्रकट करने मे समर्थ हो चुका था। उत्तर-कांड का अधिकांश कवि की जीवनी से सम्बन्ध रखता है।

यह नहीं कहा जा सकता कि 'कवितावली' का सम्पादन तुलसीदास ने स्वयं किया था या उनके बाद किसी अन्य ने किया, पर यह निश्चय जान पड़ता है कि 'कवितावली' में जितने छन्द इस समय उपलब्ध है, सब तुलसीदास ही के रचे हुए है।

यहाँ 'कवितावली' के कुछ छन्द उदाहरण के तौर पर दिये जाते है—

राम के धनुष तोड़ने का वर्णन तुलसीदास ने कैसे जोरदार शब्दों में किया है :

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्ब पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, विकल दिग्पाल चराचर।।

दिग्गयन्द लरखरत, परत दसकठ मुक्खभर।
सुर विमान हिमभानु, भानु सघटित परस्पर॥
चौके बिरंचि सकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यो।
ब्रह्माड खड कियो चड धुनि, जबहिं राम सिव-धनु दल्यो॥

राम के साथ सीता विवाह-मंडप मे बैठी है। राम का प्रतिबिम्ब सीता के कंकण मे जड़े हुए नग में पड़ रहा है। सीता उसे ध्यान से देख रही है। उस दृश्य का वर्णन तुलसीदास ने बड़ी सरसता से किया है :

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माही।
गावति गीत सबै मिलि सुदर, वेद जुवा जुरि बिप्र पढाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कङ्कन के नग की परछाही।
याते सबै सुधि भूल गई, कर टेकि रही पल टारति नाही॥

राम वन को जा रहे है। सीता और लक्ष्मण साथ है। कोमलांगिनी सीता दो ही कदम चलने पर थक जाती है और पूछने लगती है—अभी और कितना चलना है ? पर्णकुटी कहाँ बनाओगे ? सीता की आतुरता देखकर राम की आँखों से आँसू चू पड़ते है। कवि ने यहाँ बड़ा ही कौशल दिखलाया है। वह राम के मुख से कुछ उत्तर दिलवाता, तो उसमें वह रस नहीं आता जो राम के आँसुओं मे आया है :

पुर ते निकसी रघबीर बधू, धरि धीर दये मग मे डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पटु सूखि गये मधुराधर वै॥
फिरि बूझति है 'चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै'।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै॥

हनुमान ने लंका में आग लगा दी। उसके वर्णन मे तुलसीदास ने लंका-निवासियों की जो व्याकुलता प्रकट की है, वह उनकी बहुज्ञता का एक सुन्दर प्रमाण है :

जहाँ तहाँ बबक बिलोकि बबकारी देत
"जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात,मात,भ्रात. भगिनी, भामिनी,भाभी,
ढाट ढोट छोहरा अभागे भोरे भागि रे॥
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो,
छेरि छोरो, सोवै सो जगावो जागि-जागि रे।"
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहै,
"बार-बार कह्यो पिय कपि सो न लागि रे"॥

रानी अकुलानी सब डाढत परानी जाहि,
सकै ना बिलोकि बेष केसरीकुमार को।
मीजि मीजि हाथ, धनि माथ दसमाथ तिय,
तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को ।।
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढो तैं न काढो,
जिय की परी सँभार, सहन भँडार को।
खीझति मँदोवै सबिपाद देखि मेघनाद,
"बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को" ।।

हाट, बाट, कोट, ओट, अट्टिन, अगार, पौरि,
खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्ही अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोउ काहू,
व्याकुल जहाँ सो तहाँ लोग चले भागि है ।।
बालधी फिरावै बार-बार झहरावै झरैं,
बूँदिया सी, लङ्क पघिलाइ पाग-पागि है।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"चित्रहू के कपि सो निसाचर न लागि है" ।।

"लागि-लागि आगि" भागि-भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारही।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम धुन्ध अंध,
कहैं बारे बूढे 'बारि-बारि' बार-बार ही ।।
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारही।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
"तात तात ! तौंसियत, झौंसियत झारही" ।।

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिये।
अध ऊर्द्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिये ।।
मूँदे आँखि हीय मे, उघारे आँखि आगे ठाढो,
धाइ जाइ जहाँ-तहाँ और कोऊ को किये ?
'लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि-जाहि रोकिये' ।।

एक करै धौज, एक कहै काढो सौज,
एक औजि पानी पी कै कहै 'बनत न आवनो'।
एक परे गाढ़े, एक डाढत ही काढे, एक
देखत है ठाढे, कहै 'पावक भयावनो'॥
तुलसी कहत एक 'नीके हाथ लाये कपि,
अजहूँ न छाँड़ै बाल गाल को बजावनो'।
'धाम्रो रे, बुझाम्रो रे कि बावरे हौं रावरे, या
औरै आगि लागी, न बुझावै सिधु सावनो'॥

हनुमान के युद्ध का वर्णन तुलसीदास ने बड़े वीरता-व्यञ्जक शब्दों मे किया है :

कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सो बाजि, मर्दि गजराज करक्खत॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि भट,'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥

युद्ध की भीषणता का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने वीभत्स रस को कैसा सचित्र कर दिया है :

लोथिन सो लोहू के प्रबाह चले जहाँ-तहाँ,
मानहु गिरिन गेरु झरना झरत है।
सोनित सरित घोर, कुञ्जर करारे भोर,
कूल ते समूल बाजि बिटप परत है॥
सुभट सरीर नीरचारी भारी-भारी तहाँ,
सूरनि उछाह, कूर कादर डरत है।
फेकरि-फेकरि फेरु फारि-फारि पेट खात,
काक कक बालक कोलाहल करत है॥
ओझरी की झोरी काँधे, आँतिन की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कंमडलु, खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुङ्ग झुण्ड-झुण्ड बनी तापसी-सी,
तीर-तीर बैठी सो समरसरि खोरि कै॥
सोनित सो सानि-सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि-घोरि कै।

तुलसी बैताल भूत साथ लिये भूतनाथ,
हेरि-हेरि हँसत है हाथ-हाथ जोरि कै ।।

अपने विषय मे तुलसीदास राम से कहते है :

छार ते सँवारि कै पहार हू ते भारो कियो,
गारो भयो पंच मे पुनीत पच्छ पाइकै ।
हौं तो जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै-कै,
पेट भरौ राम रावरोई गुन गाइकै ।।
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज !
मेरी ओर हेरिकै न बैठिए रिसाइकै ।
पालिकै कृपालु व्याल-बाल को न मारिए,
औ काटिए न, नाथ ! विषहू को रूख लाइकै ।।
जाति के, सुजाति के, कुजाति के, पेटागि-बस,
खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो ।
मानस बचन काय किये पाप सति भाय,
राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो ।।
रामनाम को प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप,
तुलसी से जग मानियत महामुनी सो ।
अतिही अभागो अनुरागत न रामपद,
मूढ एतो बडो अचरज देखि सुनी सो ।।
जायो कुल मगन, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को ।
बारे तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को ।।
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को ।
नाम, राम ! रावरो सयानो किधौ बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन ते तनक को ।।

अपनी बाहु-वेदना से व्यथित होकर तुलसीदास हनुमानजी को उलाहना देते है :

आपने ही पाप ते त्रिताप ते, कि साप ते,
बढी है बाहु-बेदन, कही न सहि जाति है ।

औषध अनेक जन्त्र-मन्त्र-टोटकादि किये,
बादि भए देवता, मनाए अधिकाति है ।।
करतार, भरतार, हरतार, कर्म, काल,
को है जग-जाल जो न मानत इताति है ।
चेरो तेरो तुलसी 'तू मेरो' कह्यो रामदूत,
ढील तेरी, बीर, मोहि पीर ते पिराति है ।।

राम के कर की विशेषता बतलाने के लिए तुलसीदास ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में यह रूपक बांधा है :

कनककुधर केदार बीज सुन्दर सुरमुनिवर ।
सीचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर ।।
तीरथपति अंकुर सरूप यच्छेस रच्छ तेहि ।
मरकतमय साखा सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि ।।
कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस ।
कह तुलसिदास रघुबसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस ।।

तुलसीदास के नीति के ये वचन अनुभव के प्राण से अनुप्राणित हो रहे हैं :

जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै ।
जाय सो जती कहाय विषय वासना न छंडै ।।
जाय धनिक बिनु दान जाय निर्धन बिनु धर्महि ।
जाय सो पंडित पढि पुरान जो रत न सुकर्महि ।
सुत जाय मातु-पितु भक्ति बिनु सो जाइ जेहि पति न हित ।
सब जाय दास तुलसी कहै जौ न राम-पद नेह नित ।।
को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहि कीन्हों ?
को न लोभ दृढ फन्द बांधि त्रासन करि दीन्हों ?
कौन हृदय नहि लाग कठिन अति नारि नयनसर ?
लोचनजुत नहि अन्ध भयो श्री पाय कौन नर ?
सुर नाग लोक महि मण्डलहु को जु मोह कीन्हो जय न ?
कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राम राम राजिवनयन ।।

अपने समय के मिथ्याडम्बर वाले भक्तों का सच्चा चित्र तुलसीदास ने इन शब्दों मे खींचा है :

भेष सुबनाइ सुचि बचन कहै चुवाइ
आइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की ।

कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह
मुख.कहियत गति राम ही के नाम की ॥
प्रगटै उपासना दुरावै दुरवासनाहि
मानस निवासभूमि लोभ मोह काम की ।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे
तुलसी से भगत भगति चहै राम की ॥

आजकल भी ऐसे भक्तों की कमी नहीं है।

प्रह्लाद के प्रेम का वर्णन तुलसीदास ने बडी ही भावुकता से किया है

आरतपाल कृपालु जो राम, जेहि सुमिरे तेहि को तहँ ठाढे ।
नाम प्रताप महा महिमा, यकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढे ॥
सेवक एक ते एक अनेक भये तुलसी तिहूँ ताप न डाढे ।
प्रेम बदौ प्रहलादहि को जिन पाहन ते परमेश्वर काढे ॥
काढि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल विलोकि न भागे ।
'राम कहाँ' 'सब ठांउ हैं' 'खंभ में' ? 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे ॥
बैरी बिदारि भये विकराल कहे प्रहलादहि के अनुरागे ।
प्रीति प्रतीति बडी तुलसी तबते सब पाहन पूजन लागे ॥
अन्तर्जामिहु ते बड बाहरजामि है राम, जे नाम लिये ते ।
धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तें ॥
आपनि बूझि कहै तुलसी,कहिबे की न बावरि बात बिये तें ।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिये तें ॥

शब्दालङ्कार की शोभा इस छन्द से देखिये :

भूतनाथ भय हरन, भीम भय भवन भूमिधर ।
भानुमन्त भगवन्त, भूति भूषन भुजगवर ॥
भव्य भाव वल्लभ, भवेस भवभार विभंजन ।
भूरि भोग भैरव कुजोग गञ्जन जन रञ्जन ॥
भारती बदन, बिषअदन सिव ससि पतग पावक नयन ।
कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्रसदन मर्दनमयन ॥

गीतावली

'गीतावली' तुलसीदास के स्फुट गीतों का संग्रह है । इसका एक नाम 'पदावली' भी है । यह भी 'मानस' की तरह सात कांडों में विभाजित है । कांड के अनुसार सम्पूर्ण पदों की संख्या इस प्रकार है—

बाल-कांड	१०८
अयोध्या-कांड	८९
अरण्य-कांड	१७
किष्किधा-कांड	२
सुन्दर-कांड	५१
लङ्का-कांड	२३
उत्तर-कांड	३८
	३२८

'गीतावली' की कविता बड़ी ही ललित है। कथा की दृष्टि से इसकी रचना 'वाल्मीकि रामायण' के आधार पर हुई है। इससे कहीं-कहीं 'मानस' और इसकी कथा में अन्तर आ गया है।

इसकी भाषा मँजी हुई और भाव-प्रवण है। तुलसीदास ने इसमें बड़ा ही अद्भुत कवि-कौशल दिखलाया है। इसमे राम के वन जाने पर कौशल्या की मनोदशा का बड़ा ही करुण वर्णन है, जो 'मानस' मे नहीं है। सीता के वनवास की कथा भी इसमें दी गई है, जो 'मानस' में नहीं है।

'गीतावली' के गीत गाने के लिए रचे गए हैं। इससे स्वर और लय को अधिक मधुर बनाने वाले शब्दों के सहयोग से तुलसीदास ने प्रत्येक पद में रस भरकर वर्षा की है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते है —

राम के रूप-वर्णन मे उत्प्रेक्षा का आनन्द लीजिये

प्रातकाल रघुबीर बदन छबि चितै चतुर चित मेरे।
होहि बिबेक बिलोचन निर्मल सुफल सुसीतल तेरे।।
भाल बिसाल बिकट भृकुटी बिच तिलक रेख रुचि राजै।
मनहुँ मदन तम तकि मरकत धनु जुगुल कलक सर साजै।।
रुचिर पलक लोचन जग तारक स्याम अरुन सित कोये।
जनु अलि नलिन कोस महँ बधुक सुमन सेज सजि सोये।।
बिलुलित ललित कपोलनि पर कच मेचक कुटिल सुहाये।
मनो बिधु महँ बनरुह बिलोकि अलि बिपुल सकौतुक आये।।
सोभित स्रवन कनक कुण्डल कल लम्बित बिबि भुजमूले।
मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग उरग इन्दु प्रतिकूले।।
अधर अरुन तर दसन-पाँति बर मधुर मनोहर हासा।
मनहुँ सोन सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कृत बासा।।

चारु चिबुक सुक तुण्ड बिनिंदक सुभग सुउन्नत नासा।
तुलसिदास छबिधाम राममख सुखद समन भवत्रासा।।

शब्दालंकार से जगमगाते हुए इस मधुर गीत को पढ़िये :

देख सखि आजु रघुनाथ सोभा बनी।
नील नीरद बरन बपुष, भुवनाभरन,
पीत अम्बर धरन हरन दुति दामिनी।।
सरजु मज्जन किये, संग सज्जन लिये,
हेतु जन पर हिये, कृपा कोमल घनी।
सजनि आवत भवन, मत गजवर गवन,
लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसलधनी।।
सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल,
करनि बिवरत चतुर सरस सुषमा जनी।
ललित अहि सिसु निकर मनहुँ ससि सन समर,
लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी।।
भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन, पलक
चारु भ्रू नासिका सुभग सुक आननी।
चिबुक सुन्दर, अधर अरुन, द्विज दुति सुघर,
बचन गम्भीर, मृदुहास भव भाननी।।
स्रवन कुण्डल, बिमल गण्ड मंडित चपल,
कलित कल कांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी।
जुगल कंचन मकर मनहुँ बिधुकर मधुर,
पियत पहिचानि करि सिंधुकीरति भनी।।
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुबिसाल, चहुँ पास बनि गजमनी।
स्याम नव जलद पर निरखि दिनकर कला,
कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन अनी।
मन्दिरनि पर खरी नारि आनँद भरी,
निरखि बरषहिं बिपुल कुसुम कुङ्कुम कनी।
दास तुलसी राम परम करुनाधाम,
काम सत कोटि मद हरत छबि आपनी।।

अब उत्प्रेक्षाओं की और बहार देखिये :

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाये।
नील जलद तनु स्याम राम सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाये॥
बन्धुक सुमन अरुन पद-पङ्कज अकुस प्रमुख चिह्न बनि आये।
नूपुर जनु मुनिवर कलहसनि रचे नीड दै बाँह बसाये॥
कटि मेखल, बर हार, ग्रीव दर, रुचिर बाँह भूषन पहराये।
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाये॥
सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका बन कपोल मोही अति भाये।
भ्रू सुन्दर करुनारस पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जल जाये॥
भाल बिसाल ललित लटकन बर, बाल दसा के चिकुर सोहाये।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आये॥
उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढाये।
नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तडित छपाये॥
अग अग पर मार निकर मिलि छबि समूह लैलै जनु छाये।
तुलसिदास रघुनाथ रूप गुन तौ कहौ जो बिधि होहिं बनाये॥

राम वन जाने के लिए तैयार होकर पिता से आज्ञा माँग रहे है। उस समय का चित्र तुलसीदास ने इन शब्दों में खींचा है.

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै ?
राम लषन मेरी यहै भेट, बलि जाउँ जहाँ मोहि मिलि लीजै।
सुनि पितु बचन चरन गहे रघुपति, भूप अक भरि लीन्हे।
अजहुँ अवनि बिदरत दरार मिस सो अवस सुधि कीन्हे॥
पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो।
करम चोर नृप पथिक मारि मानो राम रतन लै भाग्यो॥
तुलसी रविकुल रवि रथ चढि चले तकि दिसि दखिन सुहाई।
लोग नलिन भए मलिन अवध सर, बिरह विषम हिम पाई॥

उस समय कौशल्या का विलाप सुनकर कौन सा हृदय है, जो न रो देगा ?

राम ! हौ कौन जतन घर रहिहौ ?
बार-बार भरि अक गोद लै ललन कौन सों कहिहौ॥
इहि आँगन बिहरत मेरे वारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हें।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत बहु बिनोद तुम्ह कीन्हें॥
जिन्ह स्रवननि कल बचन तिहारे सुनि-सुनि हौ अनुरागी।
तिन्ह स्रवननि बन-गवन सुनति हौ, मो ते कौन अभागी ?

जुग सम निमिष जाहिं रघुनदन बदन कमल बिनु देखे।
जौ तनु रहै बरस बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ?
तुलसीदास प्रेमबस श्रीहरि देखि बिकल महतारी।
गदगद कठ, नयन जल, फिरि-फिरि आवन कह्यो मुरारी॥

राम के वन जाने पर कौशल्या की जो दशा हुई, उसके वर्णन के बहाने मातृ-हीन तुलसीदास ने इस पद में प्रत्येक माता का हृदय काढ़कर रख दिया है :

जननी निरखति वान धनुहियाँ।
बार-बार उर नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनह्वियाँ॥
कबहुँ प्रथम ज्यो जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सबारे।
उठहु तात ! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे॥
कबहुँ कहति यो "बडी बार भइ जाहु भूप पहँ, भैया।
बधु बोलि जेइय जो भावै गई निछावरि मैया॥"
कबहुँ समझि बन-गवन राम को रहि चकि चित्र लिखी-सी।
तुलसिदास वह समय कहे ते लागति प्रीति-सिखी-सी॥

× × ×

जब-जब भवन बिलोकति सूनो।
तब-तब बिकल होति कौसल्या दिन-दिन प्रति दुख दूनो।
सुमिरत बाल-बिनोद राम के सुन्दर मुनि मनहारी।
होत हृदय अति सूल समुझि पद-पंकज अजिर बिहारी॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो, माई !
स्याम तामरस नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई॥
जीवो तौ बिपति सहौ निसि-बासर मरौ तौ मन पछितायो।
चलत विपिन भरि नयन राम को बदन न देखन पायो॥
तुलसिदास यह दुसह दसा अति दारुन बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोक-जनित रुज मेरो ?॥

वनवासी राम के विरह से व्यथित उनके घोड़ों की अन्तर्वेदना की कल्पना तुलसीदास को कवि समाज में बहुत ऊँचा उठा देती है :

आली ! हौ इन्हहि बुझावौ कैसे ?
लेत हिये भरि-भरि पति को हित मातु हेतु सुत जैसे॥
बार-बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे।
अग लगाय लिये बारे तें करुणामय सुत प्यारे॥

लोचन सजल, सदा सोवत से, खान-पान बिसराये।
चितवत चौंकि नाम सुनि सोचन राम सुरति उर आये ॥
तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहंस से जोरे।
ऐसेहु दुखित देखि हौ जीवति राम-लषन के घोरे ॥

× ×

राघौ ! एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ ॥
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज बार-बार चुचुकारे।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट बिसारे ॥
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहि-दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे ॥
सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिन तें इन्हको बडो अँदेसो ॥

त्रिजटा से सीता अपने मन की दशा कह रही हैं :

अबलौ मैं तोसो न कहे री।
सुन त्रिजटा ! प्रिय प्राननाथ बिनु वासर निसि दुख दुसह सहे री ॥
बिरह बिषम बिष बेलि बढी उर, ते सुख सकल सुभाय दहे री।
सोइ सींञ्चिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत रहे री ॥
सर सरीर सूखे प्रान बारि चर जीवन आस तजि चलनु चहे री।
तैं प्रभु सुजस सुधा सीतल करि राखे तदपि न तृप्ति लहे री ॥
रिपु रिस घोर नदी बिबेक बल, धीर सहित हुते जात बहे री।
है मुद्रिका टेक तेहि अवसर, सुचि समीरसुत पैर गहे री ॥
तुलसिदास सब सोच पोच मृग मन कानन भरि पूरि रहे री।
अब सखि सिय सँदेह परिहरु हिय आइ गये दोउ बीर अहेरी ॥

सीता हनुमान से कहती हैं :

तात ! तोहूँ सों कहत होति हिये गलानि।
मन को प्रथम पन समुझि अछत तनु
लखि नइ गति भइ मति मलानि।
प्रिय को बचन परिहरचो जिय के भरोसे,
संग चली बन बड़ो लाभ जानि ॥
पीतम बिरह तौ सनेह सरबसु, सुत !
औसर को चूकिबो सरिस न हानि।

आरज सुवन के तो दया दुवनहुँ पर,
मोहि सोच मोनें सब बिधि नसानि ॥
आपनी भलाई भलो कियो नाथ सबही को,
मेरे ही दिन सब बिसरी बानि।
नेम तौ पपीहा ही के, प्रेम प्यारो मीन ही के,
तुलसी कही है नीके हृदय आनि ॥

हनुमान ने आकर सीता की दशा का वर्णन राम से इस प्रकार किया :

सुनहु राम बिस्रामधाम ! हरि जनकसुता अति बिपति जैसे सहति।
है सौमित्र बन्धु करुनानिधि मन महँ रटति प्रगट नहिं कहति ॥
निजपद जलज बिलोकि सो करत नयननि बारि रहत न एक छन।
मनहुँ नील नीरज ससि सभव रवि बियोग दोउ स्रवत सुधाकन ॥
बहु राक्षसी सहित तरु के तर तुम्हरे बिरह निज जनम बिगोवति।
मनहुँ दुष्ट इन्द्रिय सकट महँ बुद्धि बिबेक उदय मगु जोवति ॥
सुनि कपि बचन बिचारि हृदय हरि अनपायनी सदा सो एक मन।
तुलसिदास दुख सुखातीत हरि सोच करत मानहुँ प्राकृत जन ॥

विभीषण से राम अपने स्वभाव का मर्म कहते हैं :

सत्य कहौ मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति लकापति तुम्हसन कौन दुराउ ॥
सब बिधि हीन दीन अति जडमति जाको कतहुँ न ठाउँ।
आयो सरन भजौ न तजौ तिहि यह जानत ऋषिराउ ॥
जिन्हके हौ हित सब प्रकार चित नाहिन और उपाउ।
तिनहि लागि धरि देह करौ सब डरौ न सुजस नसाउ ॥
पुनि-पुनि भुजा उठाइ कहत हौ सकल सभा पतिआउ।
नहि कोऊ प्रिय मोहि दास सम कपट प्रीति बहि जाउ ॥
सुनि रघुपति के बचन बिभीषन प्रेम मगन मन चाउ।
तुलसिदास तजि आस त्रास सब ऐसे प्रभु कहँ गाउ ॥

हनुमान संजीवन-मूल लेकर लौट रहे थे, तब उनको अयोध्या में उतरना पड़ा था। उनके मुख से लक्ष्मण के आहत होने का समाचार पाकर वीर माता सुमित्रा ने जो उत्तेजना प्रकट की थी, वह लक्ष्मण-जैसे तेजस्वी पुत्र की माता के उपयुक्त ही थी :

सुनि रन घायल लखन परे है।
स्वामि काज संग्राम सुभट सो लोहे ललकारि लरे है।

सुवन सोक सन्तोष सुमित्रहि रघुपति भगति बरे है ।।
छिन-छिन गात सुखात छिनहि छिन हुलसत होत हरे है ।।
कपि सो कहति सुभाय अबके अबक अंबु भरे है ।
रघुनन्दन बिनु बन्धु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे है ।।
तात जाहु कपि सग रिपुदमन उठि कर जोरि खरे है ।
प्रमुदित पुलकि पैत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे है ।।
अंब अनुज गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे है ।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे है ।।

लक्ष्मण को शक्ति लगी थी । औषधोपचार से वे अच्छे हुए । होश में आने पर उन्होंने जो हृदयोद्गार प्रकट किये है, उन्हें इस छन्द में गूँथकर तुलसीदास महान् हो गए है :

हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरै ।
पाइ सजीवन जागि कहत यो प्रेम-पुलकि बिसराय सरीरै ।।
मोहि कहा बूझत पुनि-पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै ।
सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ केवल कान्ति मोल हीरै ।।
तुलसी सुनि सौमित्र बचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै ।
उपमा-राम लषन की प्रीति को क्यों दीजै खीरै नीरै ।।

वनवास की अवधि समाप्त हो गई है । राम के लिए कौशल्या का और लक्ष्मण के लिए सुमित्रा का हृदय उमड़ रहा है । उस समय की उनकी स्वाभाविक दशा का वर्णन कवि ने बड़ी ही मार्मिकता से किया है :

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब ऐहै मेरे बाल कुसल घर करहु काग फुरि बाता ।।
दूध भात की दोनी दैहौ सौने चोंच मढैहो ।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लषन उर लैहौ ।।
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी ।
गनक बोलाइ पॉय परि पूछति प्रेम मगन मृदु बानी ।।
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो ।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ।।

भरत के उज्ज्वल चरित का यह अन्तिम चित्र है, जिससे तुलसीदास ने 'गीतावली' को अलंकृत कर दिया है :

कैकेई जौ लौ जियति रही ।
तौ लों बात मातु सौ मुँह भरि भरत न भूलि कही ।।

मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गँस न गही ।
सीय लषन रिपुदवन राम रुख लखि सबकी निबही ॥
लोक बेद मरजाद दोष गुन गनि चित चखन चही ।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेहु सही ॥

वैराग्य-संदीपिनी

'वैराग्य-संदीपिनी' दोहे, चौपाइयाँ और सोरठे मिलाकर कुल ६२ छन्दों की एक पुस्तिका है । इसमें संत-मत का समर्थन किया गया है और स्पष्टतः यह उस समय की रचना है, जब तुलसीदास का झुकाव संत-मत की ओर रहा होगा । इसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं :

रैनि को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भानु ।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञानु ॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग ।
त्याग को भूषन शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग ॥

× × ×

राग द्वेष की अगिनि बुझानी । काम-क्रोध-बासना नसानी ॥
तुलसी जबहि साति गृह आई । तब उर ही उर फिरी दोहाई ॥

अन्त में यह दोहा है :

यह बिराग संदीपिनी, सुजन सुचित सुनि लेहु ।
अनुचित बचन बिचारिकै, जस सुधारि तस देहु ॥

दोहावली

दोहावली ५७३ दोहों का सग्रह है । इन दोहों में ७५ दोहे 'मानस' के, ३५ दोहे 'रामाज्ञा प्रश्न' के, १३२ दोहे 'तुलसी-सतसई' के और ७ दोहे 'वैराग्य-संदीपिनी' के मिले हुए हैं । यह स्वतन्त्र-ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता । तुलसीदास की अन्य अवलियों की तरह वह सात कांडों मे विभाजित भी नहीं है । इसके कुछ चुने हुए दोहे यहाँ दिये जाते हैं :

रामहि सुमिरत, रन भिरत , देत परत गुरु पाय ।
तुलसी जिनहि न पुलक तनु , ते जग जीवत जाय ॥१॥
तुलसी परिहरि हरि हरहि , पाँवर पूजहि भूत ।
अन्त फजीहत होहिंगे , गनिका के से पूत ॥२॥
प्रीति राम सो, नीतिपथ , चलिय राग रिस जीति ।
तुलसी संतन के मते , इहै भगति की रीति ॥३॥

सेइ साधु गुरु समुझि, सिखि , रामभगति थिरताइ ।
लरिकाई को पैरिबौ , तुलसी बिसरि न जाइ ॥४॥
कहा बिभीषन लै मिलो , कहा बिगार्‌यो बालि? ।
तुलसी प्रभु सरनागतहि , सब दिन आए पालि ॥५॥
बलकल भूषन, फल असन , तृन सज्या, द्रुम प्रीति ।
तिन्ह समयन लंका दई , यह रघुबर की रीति ॥६॥
सभा सभासद निरखि पय , पकरि उठायो हाथ ।
तुलसी कियो इगारहो , बसन बेष जदुनाथ ॥७॥
सधन चोर मग मुदित मन , धनी गही ज्यो फेट ।
त्यो सुग्रीव बिभीषनहिं , भई भरत की भेट ॥८॥
राम सराहे भरत उठि , मिले राम सम जानि ।
तदपि बिभीषन कीसपति , तुलसी गरत गलानि ॥९॥
कहिबे कहँ रसना रची , सुनिबे कहँ किय कान ।
धरिबे कहँ चित हित सहित , परमारथहि सुजान ॥१०॥
सीस उघारन किन कहेउ , बरजि रहे प्रिय लोग ।
घरही सती कहावती , जरती नाह बियोग ॥११॥
जनम पत्रिका बरति कै, देखहु मनहि बिचार ।
दारुन बैरी मीचु कै, बीच बिराजति नारि ॥१२॥
केहि मग प्रविसति जाति केहि, कहु दर्पन मे छाँह ।
तुलसी त्यो जग जीव गति, करी जीव के नाँह ॥१३॥
सुलभ प्रीति प्रीतम सबै, कहत करत सब कोइ ।
तुलसी मीन पुनीत ते, त्रिभुवन बडो न कोइ ॥१४॥
सदा न जे सुमिरत रहहि, मिलि न कहहि प्रिय बैन ।
तेपै तिन्हके जाहि घर, जिनके हिये न नैन ॥१५॥
मनि भाजन मधु पारई, पूरन अमी निहारि ।
का छाँड़िय का संग्रहिय, कहहु बिबेक बिचारि ॥१६॥
उत्तम मध्यम नीच गति, पाहन सिकता पानि ।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की, बैर बितिक्रम जानि ॥१७॥
जासु भरोसे सोइये, राखि गोद में सीस ।
तुलसी तासु कुचाल तें, रखवारो जगदीस ॥१८॥
कौरव पांडव जानिये, क्रोध छमा के सीम ।
पाँचहि मारि न सौ सके, सयो सँहारे भीम ॥१९॥

जो परि पाय मनाइये, तासो रूठि बिचारि।
तुलसी तहाँ न जीतिये, जहँ जीतेहू हारि ॥२०॥
जा रिपु सो हारेहु हँसी, जिते पाप परिताप।
तासौ रारि निबारिये, समय सँभारिय आपु ॥२१॥
रोष न रसना खोलिये, बरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलिय बचन बिचारि ॥२२॥
छिद्यो न तरुनि कटाछ सर, करेउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिनकी देह को, जगत कवच करि लेहु ॥२३॥
पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै ढेर।
सुमति बिचारे बोलिये, समुझि कुफेर सुफेर ॥२४॥
राम लषन बिजयी भये, बनहु गरीबनिवाज।
मुखर बालि रावन गये, घर ही सहित समाज ॥२५॥
अतुलित महिमा बेद की, तुलसी किये बिचार।
जो निंदत निंदित भयो, बिदित बुद्ध अवतार ॥२६॥
तूठहि निज रुचि काज करि, रूठहि काज बिगारि।
तीय, तनय, सेवक, सखा, मन के कटक चारि ॥२७॥
बिनु आँखिन की पानही, पहिचानत लखि पाय।
चारि नयन के नारि नर, सूझत मीचु न माय ॥२८॥
जो सुनि समुझि अनीतिरत, जागत रहइ जु सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो, तुलसी उचित न होइ ॥२९॥
बहु मुख, बहु रुचि, बहु बचन, बहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार ॥३०॥
लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढी काया लही, जग बहराइज जाइ ॥३१॥
ब्यालहु ते बिकराल बड़, ब्याल फेन जिय जानु।
वहि के खाए मरत है, वह खाये बिन प्रानु ॥३२॥
माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल।
प्रजा भागबस होहिंगे, कबहुँ-कबहुँ कलिकाल ॥३३॥
बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु सो होइ ॥३४॥
घरनि धेनु चारितु चरत, प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ।
हाथ कछू नहि लागिहै, किये गोड़ की गाइ ॥३५॥

काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता, कठिन गुरु, गोला पुहुमीपाल ॥३६॥
सत्रु सयानो सलिल ज्यों, राख सीस रिपु नाउ।
बूड़त लखि पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ ॥३७॥
लकड़ी डौआ करछुली, सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु सग्रहहि परिहरहि, सेवक सखा बिचारि ॥३८॥
सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल सुसाइँ महीप।
तुलसी जे अभिमान बिनु, ते त्रिभुवन के दीप ॥३९॥
तुलसी निज करतूति बिनु, मुकत जात जब कोइ।
गयो अजामिल लोक हरि, नाम सक्यो नहि धोइ ॥४०॥
आपन छोडो साथ जब, ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अबुज अबु बिन, तरन तासु रिपु होइ ॥४१॥
तुलसी तृन जल कूल को, निरधन, निपट निकाज।
कै राखै, कै सँग चलै, बाँह गहे की लाज ॥४२॥
साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहि भगत कलि, निंदहि बेद पुरान ॥४३॥

'दोहावली' के अतिरिक्त तुलसीदास की एक अन्य रचना 'तुलसी-सतसई' के नाम से प्रसिद्ध है। स्वर्गीय पंडित सुधाकर द्विवेदी इस सतसई को तुलसीदास की रचना नहीं मानते। वे इसे गाजीपुर-निवासी किसी कायस्थ तुलसीदास की रचना मानते है।

पंडित बन्दन पाठक ने 'रामललानहछू' की टिप्पणी में तुलसीदास के बारह ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है। जिसमें 'तुलसी- सतसई' गिनती में नहीं आती। 'तुलसी-सतसई' में दृष्टिकूट दोहे बहुत है, और फारसी के शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग है। इससे अनुमान होता है कि या तो तुलसीदास ने अपने फारसी ज्ञान की छटा दिखलाने के लिए ऐसे दोहे रचे है, या वास्तव में यह किसी कायस्थ तुलसीदास की करामात है। नमूने के लिए यहाँ कुछ दोहे सतसई के भी दिये जाते है.

हरे चरहि तापहि बरे, फरे पसारहि हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ ॥१॥
तुलसी राम भरोस थिर, लिये पाप धरि मोट।
ज्यों व्यभिचारी नारि कहँ, बड़ी खसम की ओट ॥२॥

दुगुने तिगुने चौगुने, पच, पष्ठ औ सात।
आठौ ते पुनि नौ गुने, नौ के नौ रहि जात ॥३॥
तुलसी राम सनेह करु, त्यागु सकल उपचार।
जसे घटत न अक नव, नव कर लिखत पहार ॥४॥
यद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तामरस ताल।
सतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहि मराल ॥५॥
रावन रावन को हन्यो, दोष राम कहँ नाहि।
निजहित अनहित देखु किन, तुलसी आपहि माहि ॥६॥
इत कुल की करनी तजे, उत न भजे भगवान्।
तुलसी अधवर के भये, ज्यों बघूर को पान ॥७॥
गुरु करिबो सिद्धान्त यह, होय जथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाय उर, तुलसी मिटै विरोध ॥८॥
रहैं जहाँ बिचरै तहा, कमी कहूँ कुछ नाहि।
तुलसी तहँ आनन्द सँग, जात यथा सँग छाहि ॥९॥
राग रोष गुण दोष को, साखी हृदय सरोज।
तुलसी बिकसत मित्र लखि, सकुचत देखि मनोज ॥१०॥

पार्वती-मङ्गल

'पार्वती-मंगल' की रचना 'जय' नामक संवत् मे हुई, जैसा कि 'पार्वती-मंगल' के पाँचवे छन्द में तुलसीदास ने स्वयं लिखा है :

जय सवत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनी बिरचेउँ मगल सुनि सुख छिनु-छिनु ॥

संवत् १६४३ मे फागुन सुदी पंचमी को बृहस्पतिवार पड़ा था और उस संवत् का नाम 'जय' था।

'पार्वती-मंगल' को प्रारम्भ करने से पहले तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' को अवश्य ही समाप्त कर लिया होगा। यह बात केवल इसी अनुमान पर अवलम्बित नहीं है कि 'रामचरितमानस'-ऐसा महत्त्वपूर्ण विशालकाय काव्य रचते समय तुलसीदास ने अपना ध्यान छोटे-मोटे चुटकुलों की ओर न बहकने दिया होगा; बल्कि 'पार्वती-मंगल' की वर्णन-शैली और उसका प्रसाद-गुण इस बात का द्योतक है कि तुलसीदास उस समय किसी बड़े काम से खाली ही नहीं थे, बल्कि सरल और कवित्वपूर्ण पद्य-रचना में अभ्यस्त भी हो गए थे। 'पार्वती-मंगल' केवल १६४ छन्दों की एक पुस्तिका है, पर उसका एक भी छन्द शिथिल नहीं, उसकी एक भी पंक्ति भरती की नहीं, उसका एक भी शब्द

स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता। ऐसे छोटे काव्य मे कवि की यह सचमुच बहुत बड़ी सफलता है।

'पार्वती-मंगल' का विषय शिव-पार्वती का विवाह है। 'रामचरितमानस' में भी यह प्रसंग आया है। 'मानस' की छाया 'पार्वती-मंगल' में सर्वत्र विद्यमानहै। जैसे:

रामचरितमानस

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नाम तब भयउ अपरना॥

पार्वती-मंगल

नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे।

रामचरितमानस

अब सुख सोवत सोच नहि, भीख माँगि भव खाहि।

पार्वती-मंगल

भीख माँगि भव खाहिं, चिता नित सोवहि।

रामचरितमानस

बर अनुहारि बरात न भाई।

पार्वती-मंगल

बर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा।

इसी प्रकार कहीं-कहीं तो 'मानस' के आधे या पूरे चरण-के-चरण उठाकर 'मंगल' मे रख दिये गए है। इससे स्पष्ट है कि 'पार्वती-मंगल' की रचना के पहले तुलसीदास 'रामचरितमानस' को समाप्त कर चुके थे।

'पार्वती-मंगल' के कथानक मे 'मानस' के कथानक से अन्तर है। 'मानस' में काम-दहन का एक लम्बा वर्णन है, 'पार्वती-मंगल' में एक ही छन्द में उसका काम तमाम कर दिया गया है :

वामदेव सन काम वाम होइ बरतेउ।
जय जग मद निदरेसि हर पायसि फर तेउ॥

मानस में शिव का विवाह उनके असली रूप ही मे कराया गया है, पर 'पार्वती-मंगल' में शिव ने अपना वेश बहुत सुन्दर बना लिया था।

'पार्वती-मंगल' मे विवाह की अनेक रस्मो की भी चर्चा है, जो 'मानस' में नहीं है। जैसे :

मदनमत्त गजगवनि चली वर परिछन।
× ×
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहि।
× ×

दूलह दुलहिन गे तब हास अवासहि ।
× ×
जुवा खेलावत गारि देहि गिरिनारिहि ।
× +
सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि ।

'पार्वती-मंगल' की रचना तुलसीदास ने केवल स्त्री-समाज के कल्याण के लिए की है । सती-शिरोमणि पार्वती के आदर्श को वे प्रत्येक हिन्दू-गृहस्थ के घर में पहुँचा देने को अत्यन्त आतुर जान पड़ते थे । इसी से उन्होंने 'पार्वती-मंगल' की रचना भी ऐसे छन्द मे की है, जो विवाह के अवसर पर गाया जाता है ।

'पार्वती-मंगल' मे तुलसीदास ने स्थान-स्थान पर उपमाएँ भी बड़ी अनोखी दी हैं । जैसे :

साच सनेह साँच रुचि जो हठि फेरइ ।
सावन सरित सिधु रुख सूप सों घेरइ ॥
× ×
कहहु काह पटतरिअ गौरि गुन रूपहि ।
सिधु कहिअ केहि भाँति सरित सर कूपहि ॥
× ×
प्रेमपाट पट डोरि गौरि हर गुन मनि ।
मगलहार रचेउ कविमति मृगलोचनि ॥

भाषा, भाव, छन्द और प्रभाव सब प्रकार से यह छोटा सा काव्य सर्वांग-सुन्दर और तुलसीदास-जैसे महाकवि की कीर्ति के अनुरूप ही है ।

रामललानहछू

यह बीस छन्दों की तुलसीदास की सबसे छोटी रचना है । इसमें एक उप-संस्कार का वर्णन है, जो यज्ञोपवीत और विवाह दोनों संस्कारों के साथ होता है । तुलसीदास ने अन्त मे लिखा भी है :

उपवीत ब्याह उछाह जे सियराम मगल गावही ।
तुलसी सकल कल्यान ते नर-नारि अनुदिन पावहीं ॥

पर यह 'रामललानहछू' मुख्यत: विवाह-संस्कार के साथ होने वाले उप-संस्कार के लिए रचा गया है । क्योंकि इसमें कई ऐसे वर्णन मिलते हैं, जो यज्ञोपवीत-संस्कार के समय नहीं होते । जैसे :

सोचति वदन सकोचति हीरा माँगन हो ।
पनहि लिये कर सोभति सुन्दर आँगन हो ॥

'यज्ञोपवीत' मे जूता (पनही) नहीं पहना जाता, खड़ाऊँ पहना जाता है। और :

नख काटन मुसुकाहि बरनि नहि जातहि हो।
पदुम पराग मनि मानहुँ कोमल गातहि हो॥

नख काटने की क्रिया भी प्रायः विवाह ही के अवसर पर होती है। 'नख काटना' यज्ञोपवीत-संस्कार का कोई विशेष अंग नहीं है। तथा :

गोद लिहे कौसिल्या बैठी रामहि बर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो॥

इससे तो स्पष्ट ही है कि तुलसीदास ने यह 'नहछू' दूलह के लिए लिखा है।

यज्ञोपवीत मे स्त्रियों का वह जमघट नहीं होता, जो विवाह के 'नहछू' में होता है। 'रामललानहछू' में युवती और चटकीली-मटकीली स्त्रियों के बन-ठनकर आने का बड़ा श्रृंगारिक वर्णन है :

बनि-बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिन हाथ बरायन हो॥

× × ×

अहिरिनि हाथ दहेडि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो॥

× × ×

रूप सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो।
जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि हाथहि हो॥

× × ×

दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगन्धन बोरा हो॥

× × ×

बतिया कै सुवर मलिनिया सुन्दर गातहि हो।
कनक रतन मनि मौर लिहे मुसुकातहि हो॥

× × ×

कटिकै छीनि बरिनिया छाता पानिहि हो।
चन्द्रबदनि मृगलोचनि सब रस खानिहि हो॥

× × ×

नैन बिसाल नउनियाँ भौ चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो॥

'रामलला' का यह 'नहछू' तब का है, जब विवाहोपरांत सीता को लेकर राम अयोध्या आये है। उनका यह उप-संस्कार विवाह के बाद अयोध्या में हुआ था।

'नहछू' के वर्णनों मे कहीं-कहीं शृंगार का खुला वर्णन है, जिससे कुछ विद्वज्जन अनुमान करते है कि यह तुलसीदास का रचा हुआ न होगा। पर वे यह भूल जाते है कि तुलसीदास कवि थे और उन्होंने इसे स्त्रियों के लिए लिखा है, न कि संतों के लिए। जिस प्रसंग का जैसा वर्णन होना चाहिए, कवि ने उसे वैसा ही किया है। यही तो उसकी सफलता है। 'रामचरितमानस' की रचना का उद्देश्य ही और है। उसमें विशुद्ध शृंगार ही की आवश्यकता है, क्योंकि वह धर्म-ग्रन्थ है और 'विनय-पत्रिका' में तो शृंगार की आवश्यकता ही नहीं है।

'रामललानहछू' की रचना 'जानकी-मंगल के बाद की जान पड़ती है। 'जानकी-मंगल' में जनकपुर मे विवाहोत्सव का और 'रामललानहछू' मे अयोध्या में विवाहोत्सव के रीति-रस्मों का वर्णन है।

इसका छन्द 'सोहर' है। यह छन्द पुत्रोत्पत्ति, यज्ञोपवीत और विवाह के प्रसंगों के लिए नारी-समाज में प्रचलित है। प्रसंग के अनुसार इसके छन्द और गाने के स्वर मे भी विभिन्नता होती है।

इसकी कविता में शिथिलता नहीं है और इसके वर्णनों को देखते हुए यह तुलसीदास के विस्तृत व्यावहारिक ज्ञान का एक सुन्दर प्रमाण है।

जानकी-मंगल

'जानकी-मंगल' में १९२ मंगल छन्द और २४ अन्य छन्द है। इसमें राम-जानकी के विवाह का वर्णन है। इसमे रचना का समय नहीं दिया हुआ है, पर यह 'पार्वती-मंगल' के बाद ही रचा गया होगा; क्योंकि दोनों का भाव-प्रवाह एक है, दोनों मे एक ही प्रकार का सोहर छन्द भी प्रयुक्त है और दोनों की भाषा भी विशुद्ध अवधी है।

इसकी रचना 'वाल्मीकि-रामायण' के आधार पर हुई है। इससे 'मानस' और इसकी कथा में कहीं-कहीं अन्तर आ गया है। जैसे—'मानस' में परशुराम का आगमन धनुर्भंग के अवसर पर दिखाया गया है, पर 'जानकी-मंगल' में विवाहोपरांत विदाई के बाद परशुराम आये है, जैसा 'वाल्मीकि-रामायण' में है।

'जानकी-मंगल' में फुलवाड़ी में राम-सीता का प्रथम दर्शन भी नही है। 'मानस' मे इसका बहुत ही सरस वर्णन है।

पर 'मानस' और 'जानकी-मंगल' की भाषा और भाव में बड़ा साम्य है। कहीं-कहीं तो शब्द और वाक्य ज्यों-के-त्यों रख दिये गए है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते है :

मानस

जहँ बिलोकु मृग सावक नैनी।
जनु तहँ बरस कमल सित स्रैनी॥

जानकी-मंगल

रूप-रासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।
नील कमल सर स्रेनि मयन जनु डारइ॥

मानस

कोउ न बुझाय कहै नृप पाही। ये बालक अस हठ भल नाही॥
कहँ धनु कुलिसहुँ चाहि कठोरा। ये स्यामल मृदुगात किसोरा॥
सो धनु राजकुँवर कर देही। बाल मराल कि मन्दर लेही॥

जानकी-मंगल

एक कहहिं कुँवर किसोर कुलिस कठोर सिव धनु है महा।
किमि लेहि बाल मराल मदर नृपहिं अस काहु न कहा॥

मानस

विधि केहि भाँति धरइ उर धीरा। सिरिस सुमन कन बेधिअ हीरा॥

जानकी-मंगल

सो धनु कहि अवलोकन भूप किसोरहि।
भेद कि सिरिस सुमन कल कुलिस कठोरहि॥

मानस

हिमवन जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥

जानकी-मंगल

सकल्पि सिय रामहि समर्पी सील सुख सोभा मई।
जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा हरिहि श्री सागर दई॥

× × ×

'जानकी-मंगल' की कविता में कहीं शैथिल्य नहीं दिखाई पड़ता। भाषा और भाव दोनों में तुलसीदास ने अपना मस्तिष्क और हृदय ढाल दिया है। कुछ उदाहरण लीजिये :

लागि झरोखन झाँकहि भूपति भामिनि।
कहत बचन रद लसहि दमक जनु दामिनि॥

× ×

नृप रानी पुरलोग राम तन चितवहि।
मजु मनोरथ कलस भरहि अरु रितवहि॥

× ×

राम सीय बय समौ सुभाय सुहावन।
नृप जोबन छवि पुरइ चहत जनु आवन॥

× ×

साय सनेह सकुच बस पिय तन हेरइ।
सुर तरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ॥

× ×

लसत ललित कर कमल माल पहिरावत।
काम फद जनु चंदहि बनज फँदावत॥

× ×

वर विराज मण्डप महँ बिस्व बिमोहइ।
ऋतु बसन्त बन मध्य मदन जनु सोहइ॥

श्रीकृष्ण-गीतावली

'श्रीकृष्ण-गीतावली' में श्रीकृष्ण के चरित-सम्बन्धी ६१ पद भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों में है। पदों की भाषा विशुद्ध ब्रज-भाषा है। वर्णन-शैली मँजी-मँजाई और एक सत्कवि की कीर्ति के अनुकूल है।

उदाहरण के लिए यहाँ कुछ पद दिये जाते है —

बालक कृष्ण कुछ नटखट हो चले हैं। माँ से झगड़ते है, साथियों को मुँह चिढ़ाते है और गृह-जीवन मे आनन्द भरते है :

'छोटी-मोटी मीसी रोटी चिकनी-चुपरि कै तू देरी मैया'
'लै कन्हैया' 'सो कब ?' 'अबहि तात'।
'सिपरियै हौ ही खैहौ, बलदाऊ को न देहौ,'
सो क्यो भटू तेरो कहा कहि इत-उत जात॥
बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि,
गोपीगन महरि मुदित पुलकित गात।

नूपुर की धुनि किंकिनि के कलरव सुनि,
कूदि-कूदि किलकि-किलकि ठाढे ठाढे खात।
तनियाँ ललित कटि, बिचित्र टेपारो सीस,
मुनि मन हरत बचन कहै तोतरात।
तुलसी निरखि हरषत बरसत फूल,
भूरिभागी ब्रजबासी बिबुध सिद्ध सिहात॥

× ×

कृष्ण को माँ भुलावा देकर सुलाने की चेष्टा कर रही है। पर नटखट लडके सहज मे कहाँ सोते है :

छाँडो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहै सुत देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह की बात चलाई॥
डरिहै सासु-ससुर चोरी सुनि, हँसिहै नई दुलहिया सुहाई।
उबटौ, न्हाहु, गुहौ चोटिया बलि, देखि भलो बर करिहि बडाई॥
मातु कह्यो करि कहत बोलि दै, भई बडि बार कालि तौ न आई।
जब सोइबो तात यो हाँ कहि, नयन मीचि रहे पौढि कन्हाई॥
उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै, मुदित महरि लखि आतुरताई।
बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु, सकुचि लगे जननी उर धाई॥

× × ×

उत्प्रेक्षाओं की बहार देखिये :

देख सखी हरिबदन इन्दु पर।
चिक्कन कुटिल अलक अवली छबि, कहि न जाइ सोभा अनूप बर॥
बाल भुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि रही घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहिं करहि पान कहो कारन कौन बिचारि डरहि डर॥
अरुन बनज लोचन, कपोल, सुभ, स्रुति मडित कुण्डल अति सुन्दर।
मनहुँ सिधु निज सुतहि मनावन पठए जुगल बसीठि बारिचर॥
नँदनदन मुख की सुन्दरता कहि न सकत स्रुति सेष उमावर।
'तुलसिदास' त्रैलोक्य बिमोहन रूप कपट नर त्रिबिध सूल हर॥

× × ×

रूपक बाँधने मे तुलसीदास अद्वितीय है। 'मानस' में उन्होंने रूपकों की पंक्ति-की-पंक्ति खड़ी कर दी है। 'श्रीकृष्ण-गीतावली' में भी वे अपना सहज रग दिखाकर ही रहे :

जब तें ब्रज तजि गये कन्हाई।
तबतें बिरह रबि उदित एक रस सखि बिछुरनि वृष पाई॥
घटत न तेज, चलत नाहिंन रथ, रह्यो उर नभ पर छाई।
इन्द्रिय रूप-रासि सोचहिं सुठि, सुधि सबकी बिसराई॥
भयो सोक भय कोक कोकनद भ्रम भ्रमरनि सुखदाई।
चित चकोर, मन मोर, कुमुद मुद सकल विकल अधिकाई॥
तनु तडाग बल बारि सूखन लाग्यो परी कुरूपता काई।
प्रान मीन दिन दीन दूबरे दसा दुसह अब आई॥
'तुलसीदास' मनोरथ मन मृग मरत जहाँ तहँ धाई।
रामस्याम सावन-भादो बिनु जिय की जरनि न जाई॥

रामाज्ञा-प्रश्न

'रामाज्ञा-प्रश्न' में सात सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में सात-सात दोहों के सात-सात सप्तक हैं। ग्रन्थारम्भ के दो दोहे मिलाकर सातों सर्गों में कुल दोहों की संख्या ३४५ होती है। इस पुस्तक में घट-बढ़ होने की संभावना बिलकुल नहीं है। क्योंकि सारी पुस्तक निश्चित संख्या के सर्गों, सप्तकों और दोहों में निबद्ध है।

इस पुस्तक की रचना का कारण बताने वाली एक दन्त-कथा भी है। कहते हैं कि काशी में प्रह्लाद-घाट पर पंडित गंगाराम जोशी नाम के एक सज्जन थे, जिनके यहाँ तुलसीदास ठहरा करते थे। उन दिनों काशी के राजघाट के राजा एक गहरवार क्षत्रिय थे। एक दिन उनका कुमार शिकार खेलने गया और लौटकर नहीं आया। राजा ने पंडित गंगाराम जोशी को बुलाकर प्रश्न किया। जोशीजी गणित करके उत्तर देने का वादा करके घर आये और चिन्तित होकर बैठ गए। वे प्रतिदिन सन्ध्या-समय तुलसीदास के साथ नाव पर गंगा-पार शौच के लिए जाया करते थे। उस दिन नहीं गये। तुलसीदास ने कारण जानकर उनको सान्त्वना दी और छः घण्टे के लगातार परिश्रम से 'रामाज्ञा-प्रश्न' तैयार कर दिया। जोशीजी ने उससे अपने प्रश्न का फल निकाला, तो उन्हें विदित हुआ कि अगले दिन सन्ध्या होते-होते राजकुमार लौट आयगा। उन्होंने राजा को सूचना दी। दूसरे दिन सचमुच उनका कथन सत्य निकला और राजा ने जोशीजी को पूर्व प्रतिज्ञानुसार एक लाख रुपया दिया। जोशीजी ने सब रुपये लाकर तुलसीदास के चरणों पर रख दिए। तुलसीदास ने उन्हें छूने से भी इन्कार किया। बहुत आग्रह करने पर तुलसीदास ने उसमें से बारह हजार रुपये अलग करा दिए और उनसे हनुमानजी के

बारह मन्दिर बनवा दिए।

यह कहानी कहाँ तक सच है, ईश्वर जाने। 'रामाज्ञा-प्रश्न' के प्रथम सर्ग के उनचासवें दोहे में जो एक गंगाराम शब्द आया है, उसके चाहे जो अर्थ लगा लीजिये। या तो वह किसी व्यक्ति-विशेष का नाम है या गंगा और राम दो अलग-अलग सार्थक शब्द है।

कुछ महानुभाव अनभिज्ञता से 'रामाज्ञा-प्रश्न' और 'राम-शलाका' को एक समझते है। पर 'रामाज्ञा-प्रश्न' और 'राम-शलाका' दो भिन्न चीजें है। मेरा अनुमान है कि 'राम-शलाका' ही को तुलसीदास ने छः घण्टे के लगातार परिश्रम से तैयार किया होगा। 'रामाज्ञा-प्रश्न' के ३४५ दोहे छः घंटे के लिए अत्यन्त अधिक है। एक घंटे में ५७ दोहे का औसत पड़ता है। एक मिनट से अधिक तो एक दोहे के लिखने मे लग जायँगे। अतएव निश्चय ही 'रामाज्ञा-प्रश्न' उजलत में बैठकर लिखा हुआ नहीं हो सकता। हाँ, 'राम-शलाका' के लिए छः घंटे काफी है। यद्यपि उसमे भी बुद्धि का बड़ा खर्च है, पर तुलसीदास के लिए वह साधारण सी बात मानी जा सकती है। अगले पृष्ठ पर 'राम-शलाका' की प्रतिलिपि दी जाती है—

सु	प्र	उ	बि	हो	मु	ग	ब	सु	नु	बि	घ	धि	इ	द
र	रु	फ	सि	सि	रें	बस	है	मं	ल	न	ल	य	न	अं
सज	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	ई	ल	धा	बे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	की	हो	स	रा	य
पु	सु	थ	सी	जे	इ	ग	मु	सं	क	रे	हो	स	स	नि
ति	र	त	[illegible]	स	इ	ह	ब	ब	प	चि	स	य	स	तु
म	का	ा	र	र	मा	मि	मी	म्हा	ा	जा	हू	हीं	ा	जू
ता	रा	रे	री	हृ	का	फ	खा	जि	ई	र	रा	पू	द	ल
नि	को	मि	गो	न	म	ज	य	ने	मनि	क	ज	प	स	ल
हि	रा	म	स	रि	ग	द	न	ष	म	खि	जि	मनि	त	जं
सिं	मु	न	न	कौ	मि	ज	र	ग	धु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	ध	नि	म	ल	ा	न	ब	ती	न	रि	भ
ना	पु	व	अ	ढा	र	लु	का	ए	तु	र	न	नु	व	थ
सि	हु	सु	म्ह	रा	र	स	हि	र	त	न	ष	ा	जा	ा
र	सा	ा	ला	धी	ा	री	ज	हू	हीं	खा	जू	ई	रा	रे

प्रश्न निकालने की रीति यह है—

प्रश्न-कर्ता किसी कोठे में उँगली रखे। उसमें जो अक्षर हो, उसे अलग कागज पर लिख ले। फिर उसे छोड़कर नवाँ-नवाँ अक्षर ले-लेकर लिखता जाय। जब एक चौपाई बन जाय, तब उसके अनुसार अपने प्रश्न का फल समझ ले। यदि प्रश्नकर्ता ने किसी नीचे के कोठे में उँगली रखी और चौपाई पूरी बनने के पहले ही सब कोठे समाप्त हो गए, तब शेष के लिए ऊपर के पहले कोठे से गिनती करके चौपाई पूरी कर लेनी चाहिए।

रामशलाका-चक्र में कुल नौ चौपाइयाँ है। वे ये है :

सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहि मनकामना तुम्हारी॥
प्रबिसि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा॥
उघरे अन्त न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
विधिबस सुजन कुसगति परही। फनिमनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
होइहै सोइ जो राम रचि राखा। को करि तरक बढावहि साखा॥
मुद मङ्गलमय सन्त समाजू। जिमि जग जंगम तीरथराजू॥
गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुख धरि काहु न धीरा॥
सफल मनोरथ होइँ तुम्हारे। राम लषन सुनि भये सुखारे॥

पता नहीं, इनमें से किस चौपाई के आधार पर तुलसीदास ने राजकुमार के सकुशल लौटने का समय बताया था। इससे इतना अर्थ तो हम भी निकाल सकते है कि तुलसीदास केवल कवि ही नहीं थे, अच्छे गणितज्ञ भी थे।

'रामाज्ञा-प्रश्न' का अन्तिम सप्तक इस प्रकार है :

सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन बिचारब चारु मति, सादर सत्य सप्रेम॥
मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि, दोहा देखि बिचारि।
देस करम करता बचन, सगुन समय अनुहारि॥
सगुन सत्य ससि नयन गुन, अवधि अधिक नयवान।
होइ सुफल सुभ जासु जसु, प्रीति प्रतीति प्रमान॥
गुरु गनेस हरु गौरि सिय, रामु लषनु हनुमानु।
तुलसी सादर सुमिरि रुब, सगुन बिचार बिधानु॥
हनूमान सानुज भरत, राम सीय उर आनि।
लषन सुमिरि तुलसी कहत, सगुन बिचारु बखानि॥
जो जेहि काजहि अनुहरइ, सो दोहा जब होइ।
सगुन समय सब सत्य सब, कहब रामगति गोइ॥
गुन, बिश्वास, सचित्र मनि, सगुन मनोहर हारु।
तुलसी रघुबर भगत उर, बिलसत बिमल बिचारु॥

'रामाज्ञा-प्रश्न' की छपी हुई प्रति मे प्रश्न निकालने का नियम दोहे में दिया गया है, वह स्पष्ट नहीं है। उसे हम यहाँ निम्न लिखित अङ्क-चक्र द्वारा स्पष्ट कर देते है। जिसे फल निकालना हो, वह 'रामाज्ञा-प्रश्न' की पुस्तक देखकर

इस चक्र से लाभ उठा सकता है।

पहला चक्र
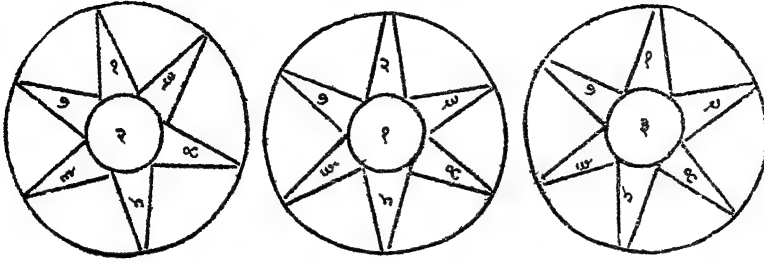
दूसरा चक्र

१	२	३	४	५	६	७
२४	२५	२६	२७	२८	२९	८
२३	४०	४१	४२	४३	३०	९
२२	३९	४८	४९	४४	३१	१०
२१	३८	४७	४६	४५	३२	११
२०	३७	३६	३५	३४	३३	१२
१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३

प्रश्न निकालने की रीति यह है कि पहले ऊपर के किसी एक अङ्क-चक्र में किसी अङ्क पर उँगली रखिए, वह अङ्क सर्ग का बोधक होगा। उसे अलग लिख लीजिए। फिर दूसरे अङ्क-चक्र में किसी अङ्क पर उँगली रखिए;

जो अङ्क हो, यदि वह सात से कम हो तो अलग लिखे हुए सर्ग के पहले सप्तक में उसी संख्या का दोहा देखकर अपना फल समझ लीजिए। सात से अधिक हो तो सात से भाग दीजिए, भागफल जो आय, उतने सप्तक छोड़कर अगले सप्तक में शेष बची हुई संख्या का दोहा देखकर फल निकाल लीजिए। ऊपर के तीनों चक्रो में तीन बार अलग-अलग प्रश्न करके फल निकालना चाहिए।

बरवै-रामायण

अकबर के प्रधान मन्त्री अब्दुर्रहीम खानखाना ने बरवै छन्द में नायिका-भेद पर एक पुस्तक लिखी थी। कहा जाता है कि तुलसीदास ने उसके छन्द को पसन्द करके उसी में 'बरवै-रामायण' लिखा। पता नहीं, इस कथन में कितना तथ्य है। मेरी आत्मा तो इसे कभी स्वीकार नही करती कि तुलसीदास कभी रहीम से प्रभावित हुए होंगे।

बरवै छन्द के नाम के साथ भी एक कथा लगी हुई है। कहा जाता है कि रहीम का कोई नौकर छुट्टी पर गया। अपनी नवविवाहिता स्त्री के साथ उसकी छुट्टी के दिन चुपचाप निकल गए। इच्छा न रहने पर भी नौकरी के भय से उसे घर त्यागना ही पड़ा। जाते समय उसकी स्त्री ने यह छन्द लिख-कर उसे रहीम को देने के लिए दिया :

प्रेम प्रीति कौ बिरवा चलेहु लगाय।
सीचन की सुधि लीजौ मुरझि न जाय॥

पति ने पत्नी की चिट्ठी अपने स्वामी को दी। रस से लहलहाता हुआ एक नवीन छन्द पाकर रहीम का कवि-हृदय फड़क ही तो उठा। उन्होंने नौकर को एक लम्बी छुट्टी दी और उसकी स्त्री के लिए बहुमूल्य उपहार भी भेजा और उसी छन्द में उन्होंने एक नायिका-भेद भी लिख डाला। बिरवा शब्द इन्हें इतना प्रिय लगा कि छन्द का नाम ही उन्होंने 'बिरवा' रख दिया जो बाद को 'बरवै' हो गया।

पर यह छन्द रहीम के लिए नया हो सकता था, तुलसीदास के लिए नया नहीं रहा होगा। यह छन्द बिहार के ग्राम-गीतों में खूब चलता है। बिहार का एक ग्राम-गीत लगभग इन्हीं शब्दों में यहाँ दिया जाता है :

प्रेम पिरित रस बिरवा रे, तुम पिय चलेहु लगाय।
सीचन की सुधि लीजौ, देखेउ मुरझि न जाय॥
जेठा छवावइँ आपन बँगला रे, देवरा छवावइँ चौपारि।
मोरा मँदिलवा केन छवइहइँ, जेकर पियवा बिदेस॥

इसका तो राग ही जुदा है। संगीत के धुरन्धर ज्ञाता तुलसीदास इस राग

को न जानते रहे हों, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। तुलसीदास बिहार की तरफ आते-जाते रहते थे, वहीं से उन्होंने यह छन्द लिया होगा।

'बरवै-रामायण' की जो प्रति इस समय उपलब्ध है, उसमें सात कांड और दो-दो पंक्तियों का एक-एक छन्द मानकर कुल ६९ छन्द हैं। जन-श्रुति के अनुसार यह रामायण बहुत बड़ा था, पर अब सम्पूर्ण नहीं मिलता।

'बरवै-रामायण' के छन्दों में तुलसीदास ने बहुत मधुर रस भरा है। राग-सहित गाने में उसकी सरसता और भी बढ़ जाती है।

यहाँ उसके कुछ छन्द दिये जाते हैं :

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥

× × ×

सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर॥

× × ×

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह निसिदिन यह बिगसाइ॥

× × ×

चपक हरवा अँग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ॥

× × ×

सिय तुम अग रङ्ग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौ चम्पक होत॥

× × ×

का घूँघट मुख मूँदहु नबला नारि?
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥

× × ×

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनीदे नैन॥

× × ×

वेद नाम कहि अँगुरिन खडि अकास।
पठयो सूपनखाहि लषन के पास॥

× × ×

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ।
जासों दीनता कहौ, हौ देखौ दीन सोऊ ॥
सुर नर मुनि असुर नाग साहिब तो घनेरे।
तौलौ, जौलौ रावरे न नेकु नयन फेरे ॥
त्रिभुवन तिहुँ काल विदित वदति वेद चारी।
आदि अंत मध्य राम ! साहिबी तिहारी ॥
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।
सुनि सुभाउ सील सुजस जाचन जन आयो ॥
पाहन, पसु, बिटप, विहँग अपने कर लीन्हे।
महाराज दसरथ के ! रंक राय कीन्हे ॥
तू गरीब को निवाज, हौ गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु ! 'तुलसिदास मेरो' ॥

× ×

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया ॥
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन्हि तम निवृत्त नहिं होई ॥
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन हीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावै ॥
षट्रस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु विषय आस मन माही।
तुलसिदास तब लगि जग जोनि भ्रमत सपनेहु सुख नाही ॥

× × ×

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई ॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसे हू पितु ते अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई ॥
तिय बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन परयो बन्धु बिभीषन ही को सोच हृदय अधिकाई ॥
घर, गुरु गृह, प्रिय सदन, सासुरे, भई जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई ॥

सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई ।
केवट मीत कहे सुख मानत बानर बन्धु बडाई ।।
तुलसी राम सनेह सील लखि जो न भगति उर आई ।
तौ तोहि जनमि जाय जननी जड तनु तरुनता गँवाई ।।

× × ×

कौन जतन बिनती करिये ।
निज आचरन विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ।
जेहि साधन हरि द्रवहु जानिजन सो हठि परिहरिये ।
जाते बिपति जाल निसि दिन दुख तेहि पथ अनुसरिये ।।
जानत हूँ मन बचन करम परहित कीन्हे तरिये ।
सो विपरीत देखि पर सुख बिनु कारन ही जरिये ।।
स्रुति पुरान सबको मत यह सतसग सुदृढ धरिये ।
निज अभिमान मोह इरषा बस तिन्हहि न आदरिये ।।
संतत सोइ प्रिय मोहि सदा जाते भवनिधि परिये ।
कहो अब नाथ, कौन बल ते ससार सोग हरिये ।।
जब कब निजु करुना सुभाउ ते द्रवहु तो निस्तरिये ।
तुलसिदास बिस्वास आन नहि, कृत पचि-पचि मरिये ।।

× × ×

कबहुँक हौ यहि रहनि रहौगो ।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा तें सन्त सुभाव गहौगो ।।
जथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो ।
पर हित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौगो ।।
पुरुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौगो ।
बिगत मान सम सीतल मन पर गुन अवगुन न कहौगो ।।
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौगो ।।

× × ×

सकुचत हौ अति राम कृपानिधि, क्यो करि बिनय सुनावौ ।
सकल धरम बिपरीत करत, केहि भाँति नाथ मन भावौं ।।
जानत हौ हरि रूप चराचर मै हठि नैन न लावौं ।
अंजन केस सिखा जुवती तहँ लोचन सुलभ पठावौ ।।

स्रवननि को फलकथा तुम्हारी यह समुझौ समुझावौ।
तिन्ह स्रवननि परदोष निरन्तर सुनि-सुनि भरि-भरि तावौ॥
जेहिं रसना गुन गाइ तिहारे बिनु प्रयास सुख पावौ।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यौ रटि-रटि जनम नसावौ॥
'करहु'हृदय अति बिमल बसहिं हरि,कहि-कहि सबहि सिखावौ।
हौ निज उर अभिनान मोह मद खल मण्डली बसावौ॥
जो तनु धरि हरि पद साधहिं जन सो बिनु काज गँवावौ।
हाटक घट भरि धरचो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौ॥
मन क्रम बचन लाइ कीन्हे अघ ते करि जतन दुरावौ।
पर प्रेरित इरषा बस कबहुँक किय कछु सुभ कै जनावौ॥
बिप्र द्रोह जनु बाँट पर्‌यो हठि सब सो बैर बढावौ।
ताहू पर निज मत बिलास सब संतन माँझ गनावौ॥
निगम सेस सादर निहोरि जो अपने दोष कहावौ।
तौ न सिराहि कलप सत लगि प्रभु कहा एक मुख गावौ॥
जो करनी आपनी बिचारौ तौ कि सरन हौ आवौ।
मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहि दिखावौ॥
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहि जेहि सपनेहुँ तुम्हहि रिझावौ।
नाथ कृपा भवसिन्धु धेनु पद सम जो सानि सिरावौ॥

× × ×

रघुबर रावरि यहै बड़ाई।
निदरि गनी, आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई॥
थके देव साधन करि सब सपनेहु नहि देत दिखाई।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई॥
मिलि मुनिवृन्द फिरत दंडक बन सो चरचौ न चलाई।
बारहि बार गीध सबरी की बरनत प्रीति सुहाई॥
यहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई।
दीनदयालु दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई॥

× × ×

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम फलनि फरो सो॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो।
पायेहि पै जानिबो करम फल भरि-भरि बेद परोसो॥

आगम बिधि जप जाग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग सिधि साधन रोग बियोग धरो सो।।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।।
बहु मत सुनि बहु पन्थ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो।।
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिर-फिर पचि मरै मरो सो।
रामनाम बोहित भवसागर चाहै तरन तरो सो।।

× × ×

लाभ कहा मानुष-तनु पाये।
काय बचन मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये।।
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहि बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन समुझत नहिं समुझाये।।
भय, निद्रा, मैथुन, अहार सब के समान जग जाये।
सुर दुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गँवाये।।
गई न निज पर बुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाये।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताये।।

× × ×

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान करो।।
करम उपासन ज्ञान वेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो सावन के अन्धहि ज्यों सूझत हरो-हरो।।
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय बाप दोऊ आखर हौ सिसु अरनि अरो।।
संकर साखि जो राखि कहउँ कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो रामनामहि ते तुलसिहि समुझि परो।।

× × ×

ऐसी मूढता या मन की।
परिहरि राम-भक्ति सुर-सरिता आस करत ओस-कन की।।
धूम-समूह विरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता, न बारि, पुनि हानि होति लोचन की।।

ज्यो गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहारबस छति बिसारि आनन की।।
कहँ लौ कहौ कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति जन की।
तुलसिदास प्रभु ! हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पन की।।
कृपा डोरि, बनसी पद अंकुस, परम प्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो।।

× × ×

कबहुँक अब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ।।
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ।।
बूझिहै 'सो है कौन ?' कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगारऔ बनि जाइ।।
जानकी जग जननि जन की किए बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुन-गन गाइ।।

× × ×

कबहुँ समय सुधि द्याइबी मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौ किये पन चातक ज्यो, प्यास प्रेम पान की।।
सरल प्रकृति आपु जानिये करुनानिधान की।
निज गुन अरि कृत अनहितौ दास दोष सुरति चित रहत न दिये दान की।।
बानि बिसारनसील है मानद अमान की।
तुलसीदास न बिसारियै मन क्रम बचन जाके सपनेहुँ गति न आन की।।

× × ×

मारुति मन रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहुँ नाथ ! नाम सो प्रतीति प्रीति एक किंकर को निबही है।।
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।।
कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है।।
बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है सुधि मै हूँ लही है।'
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है।।

अन्य रचनाएँ

ऊपर तुलसीदास के बारह ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है, उनके अतिरिक्त उनके नाम से और भी कई पुस्तकें पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ

मिलती हैं। पर वे मानसकार तुलसीदास की लिखी हुई हैं या किसी अन्य तुलसीदास की यह कहना कठिन है? उनकी भाषा और शैली सभी कुछ निम्न श्रेणी के कवियों की-सी है। यदि तुलसीदास ही को उनका रचयिता मानना पड़ेगा, तो यह भी मान लेना पड़ेगा कि वे रचनाएँ तुलसीदास की छात्रा-वस्था के समय की हैं।

उन रचनाओं में 'हनुमान-चालीसा', 'कलि-धर्माधर्म-निरूपण', 'कुण्डलिया-रामायण' और 'छपप्य-रामायण' के सम्बन्ध में यह धारणा दृढ़ होती है कि ये तुलसीदास की आदि की रचनाएँ होंगी। यद्यपि न इनके समय का पता है, न इनके हस्तलिखित प्रमाण ही कहीं प्राप्त हैं।

'कुण्डलिया-रामायण' पर श्रीबैजनाथदास की टीका है, इससे प्रकट है कि तुलसीदास के खास-खास व्यक्ति भी इस पुस्तक को तुलसीदास ही की रचना मानते आ रहे हैं।

इन रचनाओं का विशेष परिचय देने की मैं आवश्यकता नहीं समझता हूँ। इनका तो अस्तित्व ही मुझे अनावश्यक जान पड़ता है।

२

रचनाओं का काल-क्रम

तुलसीदास की रचनाओं के काल-क्रम के सम्बन्ध में बहुत पहले से मतभेद चला आ रहा है। चरित-लेखकों ने अपनी-अपनी कल्पनाओं के आधार पर रचनाओं का भिन्न-भिन्न समय निर्धारित किया है। 'रामचरितमानस' और 'पार्वती मंगल' मे ग्रन्थकार ने समय दे रखा है इससे उनके लिए तो कोई विवाद ही नहीं है। शेष ग्रन्थों में समय नहीं दिया हुआ है। इससे उनकी भाषा, वर्णन-शैली और वर्णित विषयों के साथ कवि की आयु की अनुकूलता देखकर उनका समय निर्धारित करना पड़ता है।

तुलसीदास की रचनाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक वर्ग में 'मानस', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल', 'रामाज्ञा-प्रश्न,' 'गीतावली', 'रामललानहछू', 'बरवै रामायण' और 'कवितावली' आदि प्रबन्ध-काव्य हैं। दूसरे वर्ग में 'दोहावली', 'विनय-पत्रिका', 'श्रीकृष्ण गीतावली', 'वैराग-संदीपिनी' आदि संग्रह-ग्रन्थ।

प्रबन्ध काव्यों में केवल दो ग्रन्थों का रचना-काल उनमें दिया हुआ मिलता है। 'मानस' की रचना संवत् १६३१ में हुई और 'पार्वती-मंगल' की जय-संवत् (१६४३) में। शेष के लिए हमें अनुमान से काम लेना पड़ेगा।

तुलसीदास का रचना-काल, मेरी राय में, सं० १६१५ से मानना चाहिए उस समय उनकी आयु पचीस-छब्बीस वर्ष की थी, और संभवत. वे वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे बचपन ही से राम के भक्त थे और उनके गुरु ने उनको राम के वातावरण ही में पाला-पोसा भी था। इससे चाहे छात्रावस्था हो, चाहे वैवाहिक जीवन, तुलसीदास राम की सीमा से बाहर कभी नहीं गये। उनकी रचनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि 'मानस' के पहले ही से वे राम-चरित्र की चर्चा में निमग्न रहते और छन्द-रचना किया करते थे।

मुझे तुलसीदास की सबसे पहली रचना 'वैराग्य-संदीपिनी' जान पड़ती

है। यह उस समय की रचना है, जब तुलसीदास का झुकाव संत मत की तरफ रहा होगा। संत मत का प्रचार उन दिनों जोरों पर था। पर इसका कोई ठीक संवत् बताना असंभव है। अनुमान से इसकी रचना संवत् १६२० की कही जा सकती है। तुलसीदास के नाम से एक 'बारहमासा' भी प्रसिद्ध है। संभवत वह भी उसी समय के आस-पास का है।

'मानस' में तुलसीदास ने यह प्रतिज्ञा की है, कि 'गुरु-मुख से मैंने जो राम की कथा सुनी है, उसे मै भाषा मे लिखूँगा।' यह प्रतिज्ञा छात्रावस्था के समय की है। छात्रावस्था से निकलने के बाद राम-चरित लिखने का उनका पहला प्रयास 'मानस' ही नहीं रहा होगा बलिक उन्होंने पहले राम-चरित को विविध राग-रागिनियों मे गाने के लिए या विविध छन्दों में कवि-समाज में आदर पाने के लिए लिखने का प्रयत्न किया होगा। 'गीतावली' और 'कविता-वली' का प्रारम्भ उन्हीं दिनों का जान पड़ता है। यही क्यों, तुलसीदास के रचे हुए कहे जाने वाले'झूलना-रामायण', 'कुण्डलिया-रामायण', 'छप्पै रामायण', 'रोला-रामायण', 'छन्दावली-रामायण' आदि कई रामायण तथा बारहमासा कवि की उन्हीं दिनों की तरंगों के परिणाम होंगे। 'मानस' के बाद तुलसीदास ने अन्य किसी छंद में कोई रामायण नहीं लिखा। 'मानस' तक पहुँचते-पहुँचते वे विचारों ही में परिपक्व नहीं हो चुके थे, बलिक उनकी प्रबन्ध-रचना-शक्ति भी परिमार्जित हो चुकी थी।

'गीतावली' और 'मानस' की कथाओं मे कई स्थानों पर मौलिक अन्तर है। 'गीतावली' का आधार'वाल्मीकि-रामायण' है,और 'मानस' मे 'अध्यात्म-रामा-यण' की छाया है। इससे 'गीतावली' का संशोधन 'मानस' मे किया हुआ सा लगता है।

दोनों की कथाओं मे सबसे बड़ा अन्तर तो यह है कि 'गीतावली' मे सीता-वनवास की कथा बड़े ही करुणोत्पादक शब्दों मे हुई है. पर 'मानस' में यह प्रसंग जान-बूझकर छोड़ दिया गया है। क्योकि इम कथा से राम के चरित्र पर लांछन आता था और इससे 'रामचरितमानस' एक दु खान्त काव्य हो जाता, जो भक्त कवि तुलसीदास को कभी अभीष्ट न था। इससे ऐसा लगता है कि मानस में तुलसीदास ने अपने विचारों का अन्तिम संशोधित स्वरूप ही चित्रित किया है। मै 'गीतावली' का प्रारम्भ और अन्त दोनों 'मानस' की रचना के पहले का मानता हूँ। और यह भी कहने का साहस करता हूँ कि 'गीतावली' की रचना तुलसीदास ने गृह-त्याग के पहले कर ली थी जब वे कवि ही थे, भक्त नहीं हो पाये थे। न इसके प्रारम्भ मे किसी देवता की प्रार्थना है और न अन्त

में दीनता-प्रदर्शन की बाढ़। अन्त मे सारी राम-कथा की सूची बना देने के बाद तुलसीदास ने :

'जानि सुअवसर भगति दान तब माँगि लियो ।'

और यहीं 'गीतावली' समाप्त कर दी। उस समय उनके मन में न अपनी दीनता की स्मृति थी, न वे भक्ति ही मे सराबोर हो पाए थे। 'गीतावली' में एक कवि की आत्मा बोल रही है और 'विनय-पत्रिका' मे एक भक्त की। संगीत का सुन्दर शरीर उन्होंने दोनों को दिया है, पर दोनों की अन्तरात्माएँ भिन्न-भिन्न हैं।

'गीतावली' की कविता बहुत उच्च कोटि की है। इसे पढ़कर समाप्त करने के बाद यह धारणा होने लगती है कि कवि ने इसके पश्चात् शीघ्र ही 'मानस' प्रारम्भ किया होगा, क्योंकि 'गीतावली' का काव्य-प्रवाह 'मानस' का रूप धारण किये बिना रुक नहीं सकता था।

'गीतावली' को मैं संवत् १६२५ से २८ तक की रचना मानता हूँ।

'रामाज्ञा-प्रश्नावली' की रचना सं० १६२० और २५ के बीच की जान पड़ती है। इसमें भी 'वाल्मीकि-रामायण' के आधार पर राम-कथा वर्णित है। डॉक्टर ग्रियर्सन ने इसका रचना-काल सं० १६५५ माना है, पर इसकी भाषा और विषय को उपस्थित करने का कवि का ढंग 'मानस' से बहुत पहले का है।

'कवितावली' का प्रारम्भ भी सं० १६१५ के आस-पास हो चुका था। पर इसकी समाप्ति संवत् १६८० के आस-पास कभी हुई होगी। इसमे तुलसीदास के अन्तिम दिनों का इतिहास संचित है।

'कवितावली' का प्रारम्भ मैं सं० १६१५ के आस-पास से इसलिए मानता हूँ कि इसमें कुछ पद्य ऐसे हैं, जो तुलसीदास की छात्रावस्था के मालूम देते हैं, जब कि उनकी प्रवृत्ति समस्या-पूर्ति की तरफ़ अधिक रही होगी। भाषा में भी सहज सौन्दर्य नहीं है। जान-बूझकर उसे सजाने की चेष्टा दिखाई पड़ती है। छन्दों की रचना मे भी त्रुटियाँ पाई जाती है। जैसे :

तुलसी सो राम के सरोज पानि परसत ही,

टूट्यो मानो बारे ते पुरारि ही पढायो है।

इसमे पहली पंक्ति मे एक वर्ण अधिक है। किसी कवि के प्रारम्भिक दिनों मे ऐसी भूलें प्रायः हो जाती है। 'कवितावली' में रुद्रबीसी और मीन के शनैश्चर का वर्णन है। इससे हमें यह मानने में कोई रुकावट नहीं दिखाई पड़ती कि 'कवितावली' का संकलन कम-से-कम सं० १४७१ तक होता रहा है। इसके बाद 'क्षेमकरी' का सवैया यदि तुलसीदास के अन्तिम काल का

माना जाय, तब तो 'कवितावली' का गर्भ-काल १६८० तक पहुँच जाता है।

'दोहावली' के कुछ दोहे भी संवत् १६२० से १६३१ के बीच के हैं। ऐसे दोहों की भाषा और भाव स्वयं अपने जन्म के साक्षी है :

काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहुमीपाल।।

ऐसे दोहे छात्रावस्था ही के समय के जान पड़ते हैं। अतएव 'दोहावली' के दोहे सं० १६२० से बनने शुरू हुए और सं० १६७१ तक बनते और संग्रह होते रहे। 'दोहावली' के तीन दोहों मे तुलसीदास के बाहु-मूल की पीडा की चर्चा भी आई है, जो सं० १६६९ और ७१ के बीच मे हुई थी।

सवत् १६४० से १६४२ तक का समय तुलसीदास के जीवन में अद्भुत है, क्योंकि इन्हीं दो-तीन वर्षों में उनके कई ग्रन्थ समाप्त हुए और दन्त-कथाओं के अनुसार कई घटनाएँ भी घटीं। सम्भवत: संवत् १६३१ से १६५० तक तुलसीदास की कविता का यौवन-काल था। संवत् १६४२ तक पहुँचते-पहुँचते गीतों, पदों, दोहों, कवित्तों और अन्य छन्दों में बिखरी हुई रचनाओं को अलग-अलग संग्रह का रूप दे दिया गया जान पड़ता है।

मै 'रामचरितमानस' के प्रसंग मे पहले यह लिख चुका हूँ कि अयोध्या-कांड पहले लिखा जा चुका था, तब 'मानस' का प्रारम्भ हुआ और पीछे से वह उसमें अपने स्थान पर जोड़ दिया गया। मेरा अनुमान है कि अयोध्या-कांड सं० १६२५ से १६२८ या ३० तक तुलसीदास के गृह-त्याग के पश्चात् रचा गया है। अयोध्या-कांड को तुलसीदास ने बड़े मनोयोग से लिखा है। उसमें संस्कृत के लगभग डेढ़ सौ ग्रन्थों के भाव मिलते हैं। अतएव उसकी रचना के समय कवि का गहरा अध्ययन भी चलता रहा होगा।

अयोध्या-कांड की रचना अयोध्या में करके वे उसे लेकर काशी आये। गृह-त्याग के बाद एक बार वे काशी में रह चुके थे। उस समय उनकी 'गीतावली', 'कवितावली' के प्रारम्भिक अंश,'दोहावली' और 'सतसई' के तब तक बने हुए दोहों का प्रचार काशी वालों में होने लगा था। अयोध्या-कांड की रचना करके जब वे फिर काशी आये, तब काशी के शैवों, संन्यासियों और वल्लभ-कुल के गोसाइयों ने उनका विरोध करना प्रारम्भ किया। विरोध का एक रूप यह भी था कि भाषा मे कविता क्यों करते हो ? संस्कृत मे क्यों नहीं करते ? इस विरोध का भी एक कारण यह था कि भाषा की कविता होने से सर्व-साधारण ने उसे शीघ्र ही अपना लिया था। इससे संस्कृतज्ञों के स्वार्थों को धक्का लगने की संभावना हो चली थी। अयोध्या-कांड की रचना के बाद

तुलसीदास को काशी में शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के बहुत कष्ट दिये गए। तब तुलसीदास ने कवि का मार्ग छोड़कर भक्त और सुधारक का मार्ग पकड़ना उचित समझा और वे काशी से अयोध्या जाकर सं० १६३१ में 'मानस' की रचना में प्रवृत्त हुए, और बाल-कांड पूर्ण करके उसी में अयोध्या-कांड को मिला दिया। पहले वे 'वाल्मीकि-रामायण' के आधार पर राम-चरित्र लिखते थे, जैसा कि उन्होंने 'गीतावली' में किया है। बाद को उन्होंने भक्ति-सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों को समयानुकूल समझकर उनका अनुकरण किया। 'मानस' की रचना संवत् १६३१ से १६३६-३७ तक हुई होगी। इसका कुछ अंश अयोध्या मे, कुछ काशी मे और कुछ चित्रकूट में भी लिखा गया होगा। और क्या आश्चर्य है, उन्होंने उन्हीं दिनों राजापुर को अपना निवास-स्थान बना लिया हो और वहाँ भी 'मानस' का कुछ अंश लिखा हो।

'मानस' की रचना के बाद हम उसके कवि को विश्राम के लिए दो-तीन वर्ष का अवसर अवश्य देंगे। इस बीच मे 'मानस' का प्रचार और उसकी कड़ी-से-कड़ी परीक्षा होती रही। अंत मे उसका प्रताप-रवि सब प्रकार के झंझावातों, घन-घटाओं और नीहारो से मुक्त होकर अपनी प्रखर ज्योति से चमक पड़ा और फिर उस पर तुलसीदास का कोई विरोधी आवरण न डाल सका।

'मानस' के बाद की सबसे निकट की रचना 'पार्वती-मंगल' है। 'पार्वती-मंगल' में 'मानस' के भाव ही नहीं, शब्द और वाक्य भी रख लिये गए है। 'पार्वती-मंगल' में उसका रचना-काल :

'जय सवत् फागुन सुदि पाँचै गुरु दिन'

दिया हुआ है। स्व० पंडित सुधाकर द्विवेदी की गणना के अनुसार उक्त योग-सहित 'जय'-संवत् सं० १६४३ मे पड़ा था अतएव 'पार्वती-मंगल' की रचना सं० १६४३ में समझनी चाहिए।

'जानकी-मंगल' की रचना 'पार्वती-मंगल' की रचना के समाप्त होने के दो ही दिन बाद रविवार को हुई थी। 'जानकी-मंगल' में तुलसीदास स्वयं लिखते हैं :

'सुभ दिन रच्यौ स्वयवर मगलदायक'

'सुभ-दिन' से उनका अभिप्राय रविवार से है। क्योंकि 'पंचनामे' मे भी यह इस अर्थ में व्यवहृत हुआ है :

"सवत् १६६९ समय कुआर सुदि तेरसी वार शुभदिने लिषीत"

मेरे एक ज्योतिषी मित्र ने गणना करके मुझे बताया है कि यह शुभ दिन रविवार को पड़ा था।

अतएव 'पार्वती-मंगल' को बृहस्पतिवार को समाप्त करके लगे हाथों तुलसीदास ने दो दिन के परिश्रम से 'जानकी-मंगल' भी समाप्त कर लिया। इसी से उन्होने उसमे संवत् आदि न देकर केवल दिन लिख दिया जान पड़ता है। दो-ढाई दिन मे 'जानकी-मंगल' का लिखा जाना तुलसीदास-जैसे सिद्ध कवि के लिए कठिन नहीं है। 'जानकी-मंगल' को 'पार्वती-मंगल' से दस-बीस वर्ष पहले की रचना मानना कवि-स्वभाव की अनभिज्ञता का द्योतक है। 'पार्वती-मगल' और 'जानकी-मंगल' दोनो एक ही विचार-धारा मे बैठकर लिखे गए हैं। यह उनके विषय ही से नहीं, उनकी कविता से भी प्रकट है।

यहीं पर 'रामललानहछू' का रचना-काल भी आ पड़ता है। 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल' और 'रामललानहछू' के प्रसंग इतने निकट के हैं कि इनकी रचनाओ मे लम्बे समय का अन्तर डालना इस बात को स्वीकार करना है कि तुलसीदास ऐसे कवि को इनके लिए तीन बार, सो भी एक ही वर्ष या महीने में नहीं, पन्द्रह-बीस वर्षों के अन्तर से आतुर होने की बड़ी आवश्यकता जान पड़ी थी। ये तीनों छोटे-छोटे प्रबन्ध हैं और कवि की एक ही बैठक मे लिखे गए जान पड़ते हैं। 'रामललानहछू' तुलसीदास की रचनाओं मे सबसे छोटा बीस ही चौपदों का एक प्रबन्ध-काव्य है। इसके लिखने मे दो-एक घण्टों से अधिक समय नहीं लग सकता। 'जानकी-मंगल' की अन्तिम दो पंक्तियो में इसकी ओर एक संकेत भी है :

उपवीत ब्याह उछाह जे सियराम मङ्गल गावही।
तुलसी सकल कल्यान ते नर-नारि अनुदिन पावही॥

'पार्वती-मंगल' की अन्तिम पंक्तियां केवल यह प्रकट करती हैं कि 'कल्यान काज उछाह ब्याह' के लिए उसकी रचना हुई थी, उसमे उपवीत का नाम न होने से यह तो निर्विवाद ही है कि तुलसीदास ने उसे मुख्यतः विवाह के लिए रचा था। यज्ञोपवीत के लिए 'जानकी-मंगल' भी नहीं रचा गया था। अतएव 'जानकी-मंगल' की उक्त सूचना के अनुसार तुलसीदास उपवीत के लिए कोई एक 'राम-मंगल' भी लिख चुके होंगे। यह उनके कथन से स्पष्ट ध्वनित होता है और वह 'रामललानहछू' के सिवा और क्या हो सकता है ? अतएव मेरी राय में 'पार्वती-मंगल' के बीच में 'रामललानहछू' का रचना-काल मानना चाहिए।

संवत् १६४३ और १६५० के बीच मे 'श्रीकृष्ण-गीतावली' का रचना-काल है। यह गीति-काव्य तुलसीदास ने या तो वृन्दावन मे, जब वे नाभादास और नन्ददास से मिलने गये थे तब, या व्रज से लौट आने के बाद रचा होगा।

व्रजभाषा में उनकी यह एक सफल रचना है।

इसके बाद अब केवल दो ग्रन्थ बचते हैं, जिनका रचना-काल हमें निश्चित करना है। एक 'बरवै-रामायण' और दूसरा 'विनय-पत्रिका'।

कहा जाता है कि 'बरवै-रामायण' को तुलसीदास ने रहीम का बरवै-नायिका-भेद देखकर और उसके छंद पर मुग्ध होकर रचा था। मुझे इस कथन में कुछ सार नहीं दिखाई पड़ता। अभी तो इसी बात का निश्चय नहीं हो पाया कि रहीम से तुलसीदास का परिचय था भी या नहीं। मेरा तो अनुमान है कि तुलसीदास तत्कालीन राज-कर्मचारियो से दूर रहना ही पसन्द करते थे। 'रामचरितमानस' के बाल-कांड की ये चौपाइयाँ कुछ गूढ़ार्थ भी रखती है:

देखत भीम रूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहि उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहि करि माया॥
जेहि बिधि होइ धरम निरमूला। सो सब करहि वेद प्रतिकूला॥
जेहि-जेहि देस धेनु दिज पावहि। नगर गाउँ पुर आगि लगावहि॥
सुभ आचरन कतहुँ नहि होई। देव-विप्र-गुरु मान न कोई॥
नहि हरि-भगति जग्य जप दाना। सपनेहुँ सुनिअ न वेद-पुराना॥

जप जोग बिरागा तप मख भागा स्रवन सुनै दससीसा।
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धरम सुनिय नहि काना।
तेहि बहु बिधि त्रासै देह निकासै जो कह वेद-पुराना॥

बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहि।
हिसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥

बाढे खल बहु चोर जुआरा। जे ताकहि परधन परदारा॥
मानहि मातु पिता नहि देवा। साधुन्ह सन करवावहि सेवा॥
जिन्हके ये आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी॥

ऊपर के छंदों में तुलसीदास ने शिवजी के मुख से अपने समय की दशा का वर्णन कराया है। ऐसे मनोभाव लेकर तुलसीदास 'निसिचर सन प्रानियों' से दूर ही रहते होंगे, इसमे संदेह ही क्या है? मेरा अनुमान है कि तुलसीदास का अकबर या उसके किसी दरबारी से प्रत्यक्ष परिचय नहीं था। रहीम से परिचय होता तो यह सम्भव नहीं था कि अबुलफज़ल या अकबर से न होता। रहीम तो अकबर के महामन्त्री थे। वे अकबर से तुलसीदास को अवश्य मिलाये होते।

अतएव यह अनुमान करना कि तुलसीदास ने रहीम का अनुकरण करके

बरवै लिखे, मुझे सत्य नहीं जान पड़ता। रहीम ही ने तुलसीदास का अनुकरण किया हो, यह संभव हो सकता है। बरवै नायिका-भेद मे एक बरवै है

> छीन मलिन विषभैया, अवगुन तीन।
> मोहि कहत विधु वदनी, पिय मति हीन॥

इसी से मिलता-जुलता बाल-कांड मे तुलसीदास का यह दोहा है

> जनम सिंधु पुनि बंधु विषु, दिन मलीन सकलंक।
> सिय मुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक॥

यह दोहा सं० १६३१ मे लिखा गया और बरवै नायिका-भेद के लिए कहा जाता है कि वह सं० १६५६ या १६६० के आस-पास का है। अतएव तुलसीदास ने रहीम के भाव का अपहरण किया, यह कैसे संभव है; ऐसे ही और भी तुलसीदास के कई दोहों के भाव रहीम बरवै मे आये है। वे दोहे बरवै से बीसों वर्ष पहले लिखे जा चुके थे, तब रहीम के बरवै को प्रधानता देना कहाँ तक उचित है? यह विचारणीय है।

मेरे अनुमान से भी 'बरवै-रामायण' की रचना सं० १६६० के आस-पास की जान पड़ती है।

'विनय-पत्रिका' तुलसीदास का अन्तिम ग्रन्थ है। इसका संकलन तुलसीदास ने स्वयं किया था। इसमे किसी अन्य का हाथ नही लगा होगा, क्योकि यह आदि से अन्त तक एक उद्देश्य को लक्ष्य मे रखकर लिखा गया है। इसमें दूसरों के हाथ लगाने की गुञ्जाइश ही नहीं थी। इसकी रचना कवि की एक बैठक की नही जान पड़ती। संभव है, संवत् १६४० मे इसके कुछ पद बने हो और फिर सबको मिलाकर संवत् १६६६ के बाद 'पत्रिका' पूर्ण कर दी गई हो। इसमे काशी की महामारी का कही भी संकेत नहीं है। इससे निश्चय ही यह संवत् १६६९ के पहले बन चुकी थी।

'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' के प्रथम वर्ष के प्रथम अङ्क मे इसके सम्बन्ध मे श्रीश्यामसुन्दरदास का एक लेख निकला है, जिसमे 'विनयावली' नाम की एक हस्त-लिखित पुस्तक की प्राप्ति की सूचना है, जो संवत् १६६६ की लिखी हुई थी और जिसमे केवल १७५ पद थे। प्रायः वे सब पद 'विनय-पत्रिका' में मिलते है। इस समय 'विनय-पत्रिका' मे २७९ पद है। अतएव शेष १०४ पद या तो संवत् १६६६ तक बने ही नही थे, या नकल करने वाले ने १७५ ही पद चुन-चुनकर लिखे थे। यदि पदों की कमी का पहला ही कारण मान लिया जाय, तो यह भी स्वीकार कर लेना पड़ेगा कि तुलसीदास ने 'गीतावली', 'दोहावली,' 'कवितावली' की तरह पहले एक 'विनयावली' लिखी थी; पीछे उसे

'पत्रिका' का रूप दे दिया था। यह रूप उन्होंने तब दिया, जब वे अन्तिम बार केवल मरने ही के लिए काशी में जा बैठे थे। मेरी राय में 'विनय-पत्रिका' को तुलसीदास के हाथ से संवत् १६६८ के आस-पास वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। संवत् १६६८ के बाद वृद्धावस्था में तुलसीदास ने जो कुछ लिखा, वह 'कवितावली' में है।

यहाँ अपने मत के अनुसार पाठकों की सुविधा के लिए तुलसीदास की रचनाओं के काल-क्रम की एक तालिका देता हूँ—

कवितावली	सं० १६१५ से १६८० तक
दोहावली	,, १६२० से १६७१ तक
वैराग्य-सन्दीपिनी	,, १६२०
गीतावली	,, १६२५
रामाज्ञा-प्रश्न	,, १६२० से १६२५ तक
अयोध्या-कांड	,, १५२५ से १६२८ तक
रामचरितमानस	,, १६३१
पार्वती-मंगल	,, १६४३
रामललानहछू	,, १६४३
जानकी-मंगल	,, १६४३
श्रीकृष्ण-गीतावली	,, १६४४ से १६५० तक
बरवै रामायण	,, १६६० के लगभग
विनय-पत्रिका	,, १६६८

रचनाओं की भाषा, शैली और उनमें वर्णित कथाओं के आधार पर उनका काल-क्रम निश्चित करने में कई कठिनाइयाँ हैं। एक तो यह है कि जितने संग्रह-ग्रन्थ हैं, वे किसी एक समय के रचे हुए नहीं हैं; इससे सम्पूर्ण ग्रन्थ की भाषा एक-सी नहीं हो सकती और संग्रह-कर्ता अपनी रुचि के अनुसार पदों को आगे-पीछे भी रख सकता है; इससे भाषा का एक क्रमिक प्रवाह किसी संग्रह-ग्रन्थ में नहीं मिल सकता। भाषा और शैली का सम्बन्ध विषय से भी तो रहता है। किसी कवि की सफलता इसी में है कि वह विषय के अनुसार भाषा और शैली का उपयोग करे। 'पार्वती-मंगल,' 'जानकी-मंगल,' और 'राम-ललानहछू' स्त्रियों के लिए लिखे गए थे। इससे इनकी भाषा 'मानस' या 'विनय-पत्रिका'-जैसी नहीं है और होनी भी क्यों चाहिए ?

यह भी आक्षेप किया जाता है कि 'मानस' के बाद तुलसीदास को वैसा खुला शृङ्गार नहीं लिखना चाहिए, जैसा उन्होंने 'रामललानहछू' में लिखा

है। मेरी राय मे ऐसा तर्क करने वाले यह बात भूल जाते है कि तुलसीदास एक कवि थे और वे जीवन के अन्त समय तक कवि बने रहे। जो विषय उन्होंने जिस समय लिखा, कवि की हैसियत से उसी मे तन्मय होकर उन्होंने उसे लिखा। 'बरवै रामायण' को भी उन्होंने कवि की हैसियत ही से लिखा था। उसमे भी शृङ्गार-रस की यथेष्ट मात्रा है।

कथाओ पर भी विचार कर लेना चाहिए। कोई कथा किसी सग्रह में नही है, इसी से वह आगे या पीछे का मान लिया जाय, यह युक्ति-संगत नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि 'मानस' से पहले तुलसीदास ने 'गीतावली' और 'कवितावली' में जितने पद्य लिखे थे, उनमे से जिनके भावो को उन्होंने 'मानस' में ले लिया, उन्हें 'गीतावली' या 'कवितावली' मे से बिलकुल निकाल दिया। इसीसे उनके कई काण्ड बहुत छोटे-छोटे हो गए है।

कहा जाता है कि 'बरवै रामायण' एक बड़ा ग्रन्थ था। मुझे इसमें सचाई मालूम होती है। मैंने संवत् १८७३ के 'बरवै रामायण' की हस्त लिखित प्रति जौनपुर के राजा श्रीकृष्णदत्त दुबेजी के पुस्तकालय मे देखी है। उसमे नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, 'बरवै रामायण' से बहुत अधिक छंद है। अतएव 'बरवै रामायण' के वर्तमान रूप के आधार पर कोई निर्णय सत्य-मूलक नहीं हो सकता।

३

अरबी-फ़ारसी के शब्द

तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में इतने अधिक अरबी-फ़ारसी के शब्दों का उपयोग किया है, जितना शायद हिन्दी के किसी पुराने और नये कवि ने नहीं किया है। तुलसीदास-जैसे हिन्दू-संस्कृति के प्रबल समर्थक और धार्मिक कवि के लिए यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

मेरा अनुमान ही नहीं, दृढ विश्वास भी है कि तुलसीदास अपने समय की राज-भाषा से अभिज्ञ थे। और यही कारण है कि उन्होंने अपनी कविता में स्वतन्त्रतापूर्वक राज-भाषा के शब्दों का व्यवहार किया है। उन्होंने जो यह लिखा है :

फूलइ फलइ न बेत, जदपि सुधा बरसहि जलद।

यह तो शेखसादी की इन पंक्तियों का अक्षरशः अनुवाद ही है :—

अब्र गर आब ज़िन्दगी बारद,
हरगिज अज शाख़ बेद बर नख़ुरी।

राज-भाषा का प्रभाव तुलसीदास ही पर पड़ा हो, यह बात नहीं है, संस्कृत-कवि भी उससे अछूते नहीं बचे थे। लोलिम्बराज ने 'वैद्यावतंस' में 'सुलतान' और 'पादशाह' शब्दों को बड़े गर्व के साथ ग्रहण किया है :

हुतवहहुतजघाजानुमासप्रभावा—
दधिगतगिरिजाया स्तन्यपीयूषपानः।
रचयति चरकादीन् वीक्ष्य वैद्यावतसम्
कविकुलसुलतानो लाललोलिम्बराजः॥
समस्त पृथ्वीपति पूजनीयो
दिगङ्गनाश्लिष्टयश.शरीरः
गुणिप्रिय ग्रन्थममु व्यतानी—
ल्लोलिम्बराजः कविपादशाहः॥

यहाँ मैं अरबी-फ़ारसी के उन शब्दों की सूची देता हूँ, जिन्हें मैंने तुलसी-

दास को पढ़ते समय पकड़ लिया था। इनमें 'तुलसी-सतसई' के शब्द मैंने कम लिये हैं। और सम्भव है अन्य रचनाओं में आये हुए कुछ और भी शब्द छूट गए हों। बहुत से शब्द तो ऐसे भी छूट गए होंगे, जिन्हें मैं जानता ही न होऊँगा कि वे अरबी-फ़ारसी के हैं या हिन्दी के। जैसे—एक 'तराक' शब्द को मैं हिन्दी का देहाती शब्द समझता था; पर फ़ारसी के कोश में देखा, तो वह अरबी का निकला। ऐसे ही और भी होंगे।

रामचरितमानस—

बाल-काण्ड

अ० = अरबी; फा० = फारसी, हि० = हिन्दी।

शब्द प्रमाण

१—जहाना—(फ़ा) जे जड चेतन जीव जहाना।
२—नीक—(नेक—फ़ा) जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।
३—पोच—(फ़ा) भलेउ पोच सब विधि उपजाये।
४—कागद—(काग़ज़—फा) सत्य कहो लिख कागद कोरे।
५—अन्देसा—(फ़ा) असमजस अस मोहि अँदेसा।
६—बिबाकी—(बेबाक़—फ़ा) सहित सेन सुन कीन्ह बिबाकी।
७—ग़रीब नेवाज़ (फ़ा)—गई बहोरि गरीबनेवाजू।
८—साहब—(फ़) सरल सबल साहब रघुराजू।
९—गनी—(अ०) गनी गरीब ग्राम नय नागर।
१०—बाग़ा—(फ़ा) जनु सरि तीर तीर बन बागा।
११—तीर—(फ़ा) तकि तकि तीर महीस चलावा।
१२—बराती (बरात–अ०) उमामहेस विवाह बराती।
१३—विदा (विदा—फ़ा०) मुनि तब विदा माँगि त्रिपुरारी।
१४—लालची (लालच—फ़ा०) मन डरु लोचन लालची।
१५—रुख (रुख—फ़ा०) शकर रुख अवलोकि भवानी।
१६—लायक (लायक—फ़ा०) देखा बिधि विचारि सब लायक।
१७—तालाब (ताल हिं+आब—फा० तालाब) सगम करहि तलाब तलाई।
१८—सही (सही—फ़ा०) मदन अनल सखा सही।
१९—दूलह (दूल्हा—अ०) नहि बरात दूलह अनुरूपा।
२०—खीस (ख़ीस—फ़ा०) लगे करन मख खीस।
२१—जिनस (फा०) बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि।
२२—जमात (जमाअत—फ़ा०) जमात बरनत नहि बनै।

२३—असवारा (सवार—फ़ा०) बरु बौराह बरद असवारा।
२४—खबरि (खबर—फ़ा०) असुर तापमहि खबरि जनाई।
२५—निसान (निशान—फ़ा०) घरेहि नगर निसान बजाई।
२६—बजारु (बाजार—फ़ा०) चारु बजारु विचित्र अँबारी।
२७—अँबारी (अम्मारी—अ०) " "
२८—चाकी (चाक—फ़ा०) तिलक रेख सोभाजनु चाकी।
२९—गच (गच—फ़ा०) अति बिस्तर चारु गच ढारी।
३०—जुबान (जवान—फ़ा०) बाल जुबान जरठ नर-नारी।
३१—सक (शंक—फ़ा०) राम चाप तोरब सक नाही।
३२—जहाज (जहाज—फ़ा०) सकर चाप जहाज।
३३—ढोल (दुहूल—अ०) भेरि ढोल दुन्दुभी सुहाई।
३४—बाज (बाज—फ़ा०) बाज झपट जनु हवा लुकाने।
३५—फ़िरोजा (पिरोजा—फ़ा०) मानिक मरकत कुलिस पिरोजा।
३६—गुनह (गुनाह—फ़ा०) गुनह लखन कर हम पर रोसू।
३७—जीन (जीन—फ़ा०) रुचि-रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे।
३८—पाइक (पायक—फ़ा०) सरन करहि पाइक फहराही।
३९—बकसीस (बाख्शिश—फ़ा०) मै बकसीस जानकन्हि दीन्ही।
४०—लगाम (लगाय—फ़ा०) किकिन लगाय लगाय ललित।
४१—सिरताज (फ़ा०) जनवासे गवने मुक्तिसकल भूप सिरताज।
४२—मनसा (मंशा—फ़ा०) मनसा विस्व विजय कह कीन्ही।
४३—चारा (चारा—फ़ा०) चारा चाखु बाम दिसि लेई।
४४—सहनाई (शहनाई—फ़ा०) सरस राग बाजहि सहनाई।
४५—बायन (बैआनह—फ़ा०) भले भवन अब बायन दीन्हा।
४६—तीर (फ़ा०) ताकि-तकि तीर महीस चलावा।
४७—दाइज (जहेज—फ़ा०) कहिन जाइ कछु दाइज भूरी।
४८—चूकइ (चूक—फ़ा०) भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई।

अयोध्या-काण्ड

४९—दरबार (फ़ा०) धीर धूप दरबार।
५०—कुलह (कुलाह—फ़ा) कुमति कुबिहँग कुलह जनु खोली।
५१—सजाई (फ़ा०—सजा) तौ विधि देइहि मोहि सजाई।
५२—सहमि (सहम—फ़ा) गयउ सहमि नहि कछु कहि आवा।
५३—नेब (फ़ा०—नायब) राम लखन कर नेब।

५४—कमान (फ़ा०) जीय कमान वचन सर नाना ।
५५—बरु (फ़ा० - बल्कि) प्रान जाहु बरु बचन न जाई ।
५६—सोरू (सोरू—फ़ा०) गे रघुनाथ भयउ अति सोरू ।
५७—बेहालू (अ०—बेहाल) जनु बिनु पख बिहग बेहालू ।
५८—कबारू (कबार—फ़ा०) नहि जानेउ कछु और कबारू ।
५९—मजूरी (मजदूरी—फ़ा०) बहुत काल मे कीन्ह मजूरी ।
६०—गरदनि (फ़ा०) सो जानइ जनु गरदनि मारी ।
६१— बाहेर (अ०) लोक बेद बाहेर सब भाँती ।
६२—गुदारा (गुजर—फ़ा०) या पिनुसार गुदारा लाना ।
६३—कोतल (अ०) कोतल सग जाहि डोरि आये ।
६४—बँसूला (बसूला—फ़ा०) तेहि हमार हित कीन्ह वसूला ।
६५—जोरा (जोर—फ़ा०) उत साहिब सेवा बस जोरा ।
६६—कुलि (कुल—फ़ा०) माया जीव करम कुलि काला ।
६७—खुनिस (खुन्स—फ़ा०) खेलत खुनसि न कबहूँ देखी ।
६८—खुआरू (ख्वार—फ़ा०) हमहि सहित सब होत खुआरू ।
६९—सादे (सारद—फ़ा०) सहित समाज साज सब सादे ।
७०—खाले (खाल—फ़ा०) चलेहु कुमग पग परहि न खाले ।

अरण्य-कांड

७१—बाज (बाज़—फ़ा०) चातु सदा नो भव खग बाजा ।
७२—तलावा (तालाब—हि० अ०) देखि राम अति रुचिर तलावा ।
७३—ताजी (फ़ा०) पारावत मराल सब ताजी ।
७४—सहनाई (शहनाई—फ़ा०) मधुकरु मुखर भेरि सहनाई ।
७५—लायक—बध लायक नहि पुरुष अनूपा ।

सुन्दर-कांड

७६—बाग (फ़ा०) बन बाग उपवन वाटिका ।
७७—बेचारी (बेचार—फ़ा०) जिमि दसनन महँ जीमि वेचारी ।
७८—खीसा (खीस—फ़ा०) केहि के बल घालेसि बन खीसा ।
७९—ढोल (दुहल—अ०) बाजहि ढोल देहि सब तारी ।
८०—तम (तमा—फ़ा०) मोह मूल बहु मूलप्रद त्यागहु तम अभिमान ।
८१—सहिदानी (शहिदानी—फ़ा०) दीन्ह राम तुम कहँ सहिदानी ।

लंका-कांड

८२—हाला—राम बिमुख होइहि अस हाला ।

८३—**चौगाना (चौगान—फ़ा०)** खेहिहहि भालु कीस चौगाना ।
८४—**लबार (फ़ा०)** मिलि तपसिन्ह तै भयसि लबारा ।
८५—**गर्दा (गर्द—फ़ा०)** कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा ।
८६—**हवाले (अ०)** आजु करौ खल काल हवाले ।
८७—**पाले (पल्ला—फ़ा०)** परेहु कठिन रावन के पाले ।
८८—**पयादे (पयाद—फ़ा०)** देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा ।
८९—**लात**—हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता ।

उत्तर-कांड

९०—**बजाज (फ़ा०—बज्जाज)** बैठे बजाज सराफ बनिक
अनेक मनहुँ कुबेर ते ।
९१—**सराफ (फ़ा०—सर्राफ)** बैठे बजाज सराफ बनिक
अनेक मनहुँ कुबेर ते ।
९२—**फराक (फ़ा०—फारिग)** दूरि फराक रुचिर सो धारा ।
९३—**हुनर (अ०)** इन्ह कर हुनर न कउनिहुँ ओरा ।
९४—**वा (फ़ा०)** पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
९५—**दुनी (फ़ा०—दुनिया)** कवि बृन्द उदार दुनी न सुनी ।
९६—**किरिच**—काँच किरिच बदले ते लेहीं ।
९७—**बदले (फ़ा०—बदल)** काँच किरिच बदले ते लेही ।
९८—**दाम (फ़ा०)** कामिहि नारि पिआरि जिमि लोमिहि प्रिय जिमि दाम ।

गीतावली

१—**अबीर (अ०)** वीथिन्ह कुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उडाई ।
२—**अरगजा (फ़ा० – अरगज)** ,, ,,
३—**निसान (फ़ा०—निशान)** भूपति सदन सोहिलो सुनि बाजै गहगहे
निसान ।
४—**बजार (फ़ा०—बाजार)** सीचि सुगध रचै चौके गृह आँगन गली बजार ।
५—**गुलाल (फ़ा)** कुकुम अगर अरगजा "घिरकाहि भरहि" गुलाल अबीर ।
६—**सहन (अ०)** रानिन दिये बसन मनि भूषन राजा सहन भडार ।
७—**दुनी (अ०—दुनिया)** गान निसान कुलाहल कौतुक देखत दुनी सिहानी ।
८—**बलाइ (अ०—बला)** तनु तिल-तिल करि वारि राम पर लैहो रोग
बलाइहौ ।
९—**चौगान (फ़ा)** अनुज सखा सिसु सग लै खेलन जैहै चौगान ।
१०—**पासे (फा०—पासा)** सखि वचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि ।

११—बाग (फ़ा० -बाग) ह्वै वरु विहँग बिलोकिय बालक बसि वन उपवन बाग।

१२—चैन (फ़ा०—चैन) मनहुँ प्रभु जन्य मुनि चैन अमरावती।

१३—निहालु (फा०) करत लोक लोचन निहालु।

१४—तरकसी (फा०—तरकश) नैमी तरकसी कटि कसे पट पियरे।

१५—जरकसी (फा०—जरकश) सुन्दर बदन सिर पगिया जरकसी।

१६—सूरति (अ०—सूरत) सूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै।

१७—बकसत (फ़ा०—बखशिश) प्रभु बकसत गज बाजि बसन मनि।

१८—सिरताज (फा०—सरताज) भली कही भूपति त्रिभुवन मे को सुकृती सिरताज।

१९—बिबाके (फा०—बेबाक) ये सनेह बिबस विदेहता बिबाके है।

२०—साहेब (अ० साहब) याग तुलसी को भले साहेब को जनुभो।

२१—खसम (अ०—खसम) राम के प्रसाद गुरु गौतम खसम भये।

२२—रुख (फा०—रुख) मनहु मघा जल उमगि उदधि रुख चले नदी नद नारे।

२३—लायक (फा०—लायक) को सोहि है और को लायक रघुनाथ कहि बिहाइ कै।

२४—बरजोर (सं०—बल+फा०—जोर) कधर बिसाल बाहु बडे बरजोर है।

२५—गरीब (अ०—गरीब) देखियत भूप मोर कैसे उडुगन गरत गरीब गहानि है।

२६—अकस (अ०) बदि बोले बिरद अकस उपजाय कै।

२७—हाल (अ०) आये बिधि हरि हारि सोई हाल भई है।

२८—पोच (फ़ा०) सोचत जनक पोच पेच परि गई है।

२९—पेंच (फा०—पेचीदन) ,, ,, ,,

३०—खुनिस (फ़ा०—खुन्स) गति कहे प्रगट खुनिस खासी खई है।

३१—खासी (अ०—खास) ,, ,, ,,

३२—डफ (फा०—दफ़) झिल्लि झाँझ झरना डफ नव मृदग निसान।

३३—दूलह (फ़ा०) छवि तेहि काल की कृपालु सीता दूलह की।

३४—अंदेसो (फ़ा०—अंदेशा) तुलसी मोहि और सबहिन ते इनको बडो अँदेसो।

३५—पाले (फा०—पल्ला) सिरनाइ आयसु पाइ गवने परम निधि पाले परी।

३६—**हालु (अ०—हाल)** दास तुलसी प्रभुहि काहुन कह्यो मेरो हालु।
३७—**सक (फ़ा०—शक)** विरह अनल स्वासा समीर निज तनु जरिबे कहाँ रही न कछु सक।
३८—**सोर (फ़ा०—शोर)** चली चमू चहुँ ओर सोर कछु बनै न बरने भीर।
३९—**जहाज (फ़ा० -जहाज)** नाहिन मोहि और कतहूँ कछु जैसे काग जहाज के।
४०—**बाज (फ़ा०—बाज)** आयो सरन सुख पद पंकज चोये रावन बाज के।
४१—**सई (अ०)** खग मृग सबर निसाचर सबकी पूजी बिनु बाढी सई।
४२—**गनी (अ०—गनी)** रक निवाज रक राजा किये गरे गरब गरि-गरि गनी।
४३—**मनी (अ०)** होय भलो ऐसे ही अजहुँ गये रामसरन परिहरि मनी।
४४—**कसम (फ़ा०—क़सम)** भुजा उठाय साखि सकर करि कसम खाय तुलसी भनी।
४५—**सीपर (फ़ा०—सिपर)** लगति साँग बिभीषन ही पर सीपर आपु भये है।
४६—**दरार (फ़ा० —दर्रा)** सुमिरि सनेह सुमित्रा-मुत को दरकि दरार न आई।
४७—**साहै (फ़ा०—शाह)** सकल भुवन मगल मंदिर के द्वार बिसाल सुहाई साहै।
४८—**गच (फ़ा०)** गृह-गृह रचे हिडोलना यहि गच काँच सुढार।
४९—**परदा (फ़ा०)** चित्र विचित्र चहूँदिसि परदा फटिक पगार॥
५०—**बंद (फ़ा०—बंदिश)** नगर रचना सिखन को बिधि तकत बहु विधि बद।
५१—**सजाइ (फ़ा०—सजा)** जानि जिय बिधि बाम दीन्हों मोवि सपय सजाइ।
५२—**विदा (फ़ा०—बिदा)** माँगि मुनि सो विदा गवने भोरसो सुख पाइ।
५३—**सही (अ०—सरीय)** तुलसी भरत समुझि सुनि राखी रामसनेह सही।
५४—**नग (फ़ा०)** सोभासिधु सभव से नीके-नीके नग है।
५५—**चारो (फ़ा० चारा)** तुलसी और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो।
५६—**खाल (ख़ाल)** निज कर खाल खैंचि या तनुतें जो पितु पानहि करावो।

कवितावली

१—**बाजेबाजे (फ़ा०—बाजबाज)** बाजेबाजे बीरबाहु धुनत समाज के।
२—**गुमान (फ़ा०)** जिनके गुमान सदा सालिम संग्राम को।
३—**सालिम (फ़ा०)** ,, ,, ,,
४—**सही (अ०—सहीह)** सही भनी लोयस भुसुण्डि बहु बारिषो।

५—परदा (फ़ा०—पर्दः) नारद को परदा न नारद सो पारिखो।
६—नग (फ़ा०—नगीनः) राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं।
७—सरीकता (फ़ा०—शरीक) रावरी पिनाक में सरीकता कहाँ रही।
८—गरूर (फ़ा०—गुरूर) गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको।
९—लायक (फ़ा०—लायक) लायक हे भृगुनायक सो।
१०—बाप (फ़ा०—बाबा) राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं।
११—रुख (फ़ा०) प्रभु रुख पाइकै बोलाइ बाल घरनिहि।
१२—पोच (फ़ा०) कहिहैं जग पोच न सोच कछू।
१३—बाग (फ़ा०—बाग) देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव।
१४—तहस-नहस (फ़ा०) तहस-नहस कियो साहसी समीर को।
१५—निसान (फ़ा०—निशान) पाछै लोग बाजत निसान ढोल तूर है।
१६—ढोल (अ०—दुहल) ,, ,, ,,
१७—कँगूरा (अ०—कंगुरह) कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ़ि।
१८—साहब (अ०) जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो।
१९—असबाब (फ़ा०) सब असबाब डाढो मैं न काढो तैं न काढो।
२०—सहन (अ०) जिय की परी सँभार सहन भँडार को।
२१—पाइमाल (फ़ा०—पायमाल) परे पाइमाल जात।
२२—बजार (फ़ा०—बाजार) बीथिका बजार प्रति अटनि अगार प्रति।
२३—सौंज—एक करै धौज, एक कहै काढौ सौज।
२४—ताज (अ०)—जहाँ बाँका वीर तोसो सूर सिर ताज है।
२५—बखार (फ़ा०) विविध बिधान धान बरत बखार ही।
२६—सहदानि (फ़ा०—शाहिद) मातु कृपा कीजै सहिदानि दीजै।
२७—तलफति (अ०—तलफ़) कनक कराही लक तलफति ताय सो।
२८—जहाज (फ़ा०) बूडत जहाज बच्यो पथिक समाज मानो।
२९—बागवान (फ़ा०—बागबान) मारे बागवान ते पुकारत देवान गे।
३०—देवान (फ़ा०—दीवान) ,, ,, ,,
३१—जहान (फ़ा०) सकेलि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो।
३२—निवाजिहे (फ़ा०—निवाजिश) राज दै निवाजिहे दजाइ कै विभीष
३३—कुलि (अ०—कुल) पाये जू। बँधायो सेतु उतरे कटक कुलि।

३४—**सकत (फ़ा०—सख्त)** सकत संग्राम दसकंध काढ्यो।
३५—**हजारी (फ़ा०—हजार)** बिनु हाथ भये हनि हाथ हजारी।
३६ —**बजारी (फ़ा०—बाजार)** बात बड़ो सो बडोई बजारी।
३७—**फ़हम (अ०—फहम)** पुलक सरीर सेना करत फहम ही।
३८—**सहम (फ़ा०)** तुलसी दुरावै मुख सूखत सहम ही।
३९—**रहम (अ०)** सबको भलो है राजा राम के रहम ही।
४०—**सोर (फ़ा०—शोर)** सोर चहुँओर लक आये जुवराज के।
४१—**लवा (फ़ा०)** लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के।
४२—**बाज (अ०—बाज)** ,, ,, ,,
४३—**बखसीस (फ़ा०—बख्शिश)** बखसीस रेस जू की खीस होत देखियत।
४४—**खीस (फ़ा०—खीस)** ,, ,, ,,
४५—**हाल (अ०)** ऐसिय हाल भई तोहि धौ।
४६—**बचा (फ़ा०—बच्चा)** जग मे बलसालि है बालि बचा।
४७—**करेजो (फ़ा०—कलेजा)** आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है।
४८—**बाज (अ०—बअज)** कहे की न लाज पिय अजहूँ न आये बाज।
४९—**खलक (अ०—खलक)** पैयत न छत्री खोज खोजत खलक मे।
५०—**हलक (अ०—हलक़)** समर समर्थ नाथ हेरिये हलक मे।
५१—**गौं**—समय सयानी कीन्ही जैसी आइ गौ परी।
५२—**कहरी (अ० —कहर)** ढाहिबे दाहिबे को कहरी है।
५३—**बहरी (अ०—बह्री)** समीर को सूनु बडो बहरी है।
५४—**निसान (फ़ा०—निशान)** चली चतुरग चमू चपरि हने निसान।
५५—**सुमार (फ़ा०—शुमार)** समर सुमार सूर मारे रघुबीर के।
५६—**जोर (फ़ा०—जोर)** बड़े बर जोर परे फँग पाये।
५७—**फौजें (फ़ा०—फौज)** हहरानी फौजे महरानी जातुधान की।
५८—**आह (फ़ा०)** कुभऊकरन आई रह्यो पाइ आह सी।
५९—**दील (फ़ा०—दिल)** भई आस सिथिल जगन्निवास दील की।
६०—**सबील (अ०)** कहै मै विभीषन की कछु न सबील की।
६१—**निहाल - (फा०)** तुलसी निहाल कै कै दियो सरखतु है।
६२—**सरखतु (फ़ा०—सरखत)** ,, ,, ,,
६३—**मालुम (अ०—मालुम)** कपि थाप्यो सो मालुम है सबही।
६४—**दगाबाज (फ़ा०—दगाबाज)** कियो अगीकार ऐसे बडे दगाबाज को।
६५—**गुलाम (अ०—गुलाम)** सुभाव समुझत मन मुदित गुलाम को।

६६—**पील (फ़ा०—फील)** आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील की।
६७—**दादि (फ़ा०—दाद)** देव तौ दयानिकेत देत दादि दीनन की।
६८—**तेजी (फ़ा०—तेज)** तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू।
६९—**लालचिन (फ़ा०—लालच)** रतिन के लालचिन प्रापनि मनक की।
७०—**दुनी (अ०—दुनिया)** तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी मैं।
७१—**खास (अ०—खास)** कौने देस किये कीस भालु खास माहली।
७२—**माहली (अ०—महल)** ,, ,, ,,
७३—**काहली (अ०—काहिल)** मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली।
७४—**सुलाखि (फ़ा०—सूराख)** और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत।
७५—**खसम (अ०—खसम)** लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के।
७६—**परवाह (अ०—परवा)** परवाह है ताहि कहा नर की।
७७—**जान (फ़ा०)** जाँचिये जानकी जानहि रे।
७८—**जँजीर (फ़ा०—जँजीर)** जँजीर जरे मद अबु चुचाते।
७९—**दरिया (फ़ा०)** दसरत्थ को दानि दया दरिया।
८०—**रवा (फ़ा०)** समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।
८१—**खर (फ़ा०—खर)** हौ तो सदा खर को असवार।
८२—**असवार (फ़ा०—सवार)** ,, ,, ,,
८३—**कुन्द (फ़ा०)** गढि गुढि छोलि छालि कुन्द की सी भाई बाते।
८४—**खुवार (फ़ा०—ख्वार)** वचन विकार करतबउ खुवार मन।
८५—**खाल (फ़ा०—खाल)** कीजै न विलम्बु बलि पानी भरी खाल है।
८६—**साज (फ़ा०—साज)** राग को न साज न विराग जोग जाग जिय।
८७—**लबारु (फ़ा०—लबार)** लोक रीति लायक न लंगर लबारु है।
८८—**जवारु (अ०—जवाल)** पेट की कठिन जग जीव को जवारु है।
८९—**चाकरी (फ़ा०—चाकर)** चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख।
९०—**किसब (अ०)** जानत न कूर कछु किसब कबारु है।
९१—**कबारु (अ०—कबार)** ,, ,, ,,
९२—**बाजी (फ़ा०—बाजी)** तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम।
९३—**दाम (फ़ा०)** तब तें बेसाइयो दाम लोह कोह काम को।
९४—**खजानो (फ़ा०—ख़ज़ाना)** तुलसी को खुलैगो खजानो खोटे दाम को।
९५—**खुनसात (फ़ा०—खुन्स)** खात खुनसात सोधे दूध की मलाई है।
९६—**मलाई (फ़ा०—बालाई)** ,, ,, ,,
९७—**हराम (अ०)** गिरोहिये हहरि हराम हो हराम हन्यो।

९८—**तपाइ** (**अ०—तमअ**) जाप की तप खप कियो न तपाइ जोग।

९९—**जाहिर** (**अ०—ज़ाहिर**) जाहिर जहान मे जमानो एक भाँति भयो।

१००—**जमानो** (**फ़ा०—ज़माना**) ,, ,, ,,

१०१—**उमरि** (**अ०—उम्र**) उमरि दराज रघुराज तेरी चाहिए।

१०२—**दराज** (**फ़ा०—दराज़**) ,, ,, ,,

१०३—**बाप** (**फ़ा०—बाबा**) नाम के प्रताप बाप। आजु लौ निबाही नीके।

१०४—**सरकस** (**फ़ा०—सरकश**) काहू की सहत नाहि सरकस हेतु है।

१०५—**बैरख** (**अ०—बैरक़**) बैरख बाँह बसाइये पै।

१०६—**चूको** (**फ़ा०—चूक**) कलिकाल कराल न चूको।

१०७—**दगाई** (**फ़ा० दग़ा**) नाम सुहेतु जो देत दगाई।

१०८—**सक** (**फ़ा०—शक**) हम है तुम्हारे तुम मे सक नाही।

१०९—**खलल** (**अ०—खलल**) कियो कलिकाल कुलि खलल खलक ही।

११०—**खलक** (**अ०—खलक़**) ,, ,, ,,

१११—**अकस** (**अ०**) एते मान अकस कीबे को आपु आहि को।

११२—**जोलाहा** (**फ़ा०—जुलाहा**) जोलहा कहौ कोऊ।

११३—**सरनाम** (**फ़ा०**) तुलसी सरनाम गुलाम है राम को।

११४—**मसीत** (**फ़ा०—मसजिद**) माँगि के खैबो मसीत को सोइबो।

११५—**साह** (**फ़ा०—शाह**) साह ही के गोत गोत होत है गुलाम को।

११६—**खूब** (**फ़ा०—खूब**) कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।

११७—**हबूब** (**अ०**) बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है।

११८—**जमाती** (**फ़ा०—जमाअत**) जागै जोगी जगम जती जमाती ध्यान धरै।

११९—**दरजी** (**फ़ा०—दरजी**) ब्यौत करै बिरहा दरजी।

१२०—**गरजी** (**फ़ा०—ग़रज़**) अनग भयौ जिय को गरजी।

१२१—**चलाकी** (**फ़ा०—चालाक**) सो सठ चेरि की चाल चलाकी।

१२२—**हलाकी** (**अ०—हलाक़**) जो त्ररी नटनागर हेरि हलाकी।

१२३—**खवास** (**अ०—खवास**) खोजि कै खवास खासी कूबरी-सी वालको।

१२४—**खासी** (**अ०—खास**) ,, ,, ,,

१२५—**कमान** (**फ़ा०**) मंदाकिनी मजुल कमान असिबान जहाँ।

१२६—**दीन** (**फ़ा०**) सुर साहिब साहब दीन दुनी को।

१२७—**गरद** (**फ़ा०—गर्द**) भवन मसान गथ गाँठरी गरद की।

१२८—**चाँदनी** (**फ़ा०**) मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की।

१२९—**करामाति** (**अ०—करामात**) कासी करामाति जोगी जागत मरद की।

१३०—**मरद (फ़ा०—मर्द)** कासी करामाति जोगी जागत मरद की ।
१३१—**जोर (फ़ा०—सोर)** एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै ।
१३२—**गुदरत (फ़ा०—गुज़ारिश)** ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं ।
१३३—**सहर (फ़ा०—शहर)** बूझिये न ऐसी गति संकर सहर की ।
१३४—**जहर (फ़ा०—ज़हर)** बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की ।
१३५—**कसाई (फ़ा०—क़साई)** कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है ।
१३६—**चारो (फ़ा०—चारा)** कियो तो तहाँ तुलसी को न चारो ।
१३७—**हुसियार (फ़ा०—होशियार)** हुसियार ह्वैहौ मन तो हिय हारो ।
१३८—**मवासो (फ़ा०—मवासा)** जारे हैं लक से बक मवासे ।
१३९—**तकिया (फ़ा०)** मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिपै ।
१४०—**पाले (फ़ा०—पल्ला)** पाप जाय सबको गुनी के पाले परैगी ।
१४१—**इताति (अ०—इताअत)** कोहैं जगजाल जो न मानत इताति हैं ।
१४२—**कनिगर (फ़ा०)** देखिये न दास दुखी तो से कनिगर के ।
१४३—**दरबार (फ़ा०)** रहौं दरबार परो लटि लूलो ।
१४४—**दयानक (फ़ा०)** मोहि पर दवरि दयानक सी दई है ।
१४५—**तराक (अ०)** मोह बस बैठो तोरि तरक तराक हौं ।
१४६—**पाक (फ़ा०)** अजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हौं ।

श्रीकृष्ण-गीतावली—

१—**बेकाम (फ़ा०—बे)** आइ बकहि बेकामहि ।
२—**बायनो (अ०—बैयानः)** है बायनो दियो घर नीके ।
३—**दगा (अ०—दगा)** जब पलकनि हठि दगा दई ।
४—**सूरति (फ़ा०—सूरत)** कहि सकत अँग अग सूरति ।
५—**मिलिक (अ०)** मदन मिलिक करि पाई ।
६—**बैरख (अ०—बैरक़)** बैरख तडित सोहाई ।
७—**नकीब (अ०—नक़ीब)** बोलत पिक नकीब ।
८—**चारो (फ़ा०—चारा)** कहा करम सो चारो ।
९—**साहिब (अ०—साहब)** सबै साहिबहि सोहै ।
१०—**बकुचौ (अ०—बुक़चा)** ये बाते बकुचौही ।
११—**बारिक (अ०—बारीक़)** है निर्गुन सारी बारिक ।
१२—**सही (अ०—सहीह)** हम अबलनि सब सही है ।
१३—**चलाकी (फ़ा०—चालाका)** चोखी चालि चलाकी ।
१४—**गरीब (अ०—ग़रीब)** गई-बहोरि गरीब निवाजी ।

१५—**निवाजी (फ़ा०—नेवाज़िश)** गई-बहोरि गरीब निवाजी।

१६—**राजी (फ़ा०—राज़ी)** कृष्न कृपालु भगति पथ राजी।

वैराग्य-संदीपिनी—

१—**जहाज (फ़ा०—जहाज़)** सो जन जगत जहाज है।

२—**साहिब (अ०—साहब)** अपने साहिब माहि।

३—**सहिदानु (फ़ा०—शहीद)** तुलसी या सहिदानु।

४—**नीके (फ़ा०—नेक)** हम नीके देखा सब लोई।

५—**दाग (फ़ा०—दाग़)** तुलसी अमल अदाग।

जानकी-मगल—

१—**लायक (फ़ा०—लायक़)** सब गुन अवधि न दूसर पदार लायक।

२—**निसान (फ़ा०—निशान)** गान निसान कोलाहल।

३—**कमानै (फ़ा०—कमान)** भृकुटी काम कमानै।

४—**रुख (फ़ा०—रुख)** सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु केरइ।

५—**ढोल (अ०—दुहल)** बाजहि ढोल निसान।

६—**बरात (फ़ा०)** नियरानि नगर बरात।

७—**दूलह (फ़ा०)** दूलह दुलहिनि देखि।

८—**दाइज (फ़ा०—जरेज़)** दाइज भयउ विविध बिध।

९—**बिदा (फ़ा०—विदा)** माँगेउ विदा राम तब।

१०—**बजार (फ़ा०—बाज़ार)** घाट-बाट पुर द्वार बजार बनावहि।

११—**निहल (फ़ा०)** जाचक कीन्ह निहाल।

पार्वती-मंगल—

१—**सही (अ०—सहीह)** हियवान कन्या जोगवर बाउर बिबुध बदित-सही।

२—**सहमे (फ़ा०—सहम)** सुनि सहमे परि पायँ।

३—**लायक (फ़ा०—लायक़)** बंस प्रसंसि मातु-पितु कह सब लायक।

४—**रुख (फ़ा०—रुख़)** रुख पाइ तेहि कारन कहा।

५—**बराती (फ़ा०—बरात)** प्रेत बरात-बराती।

६—**दुलहिनि (फ़ा०—दूल्हा)** आनहु दुलहिनि बेगि।

७—**निसान (फ़ा०—निशान)** गान निसान सुमन झरि।

८—**दाइज (फ़ा०—जहेज़)** दाइज बसन मनि धेनु धनु।

९—**सहनाइन्ह (फ़ा०—शहनाई)** करहि सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह।

१०—**बिदा (फ़ा०—विदा)** भूधर भोर विदा कर साज सजायउ।

रामाज्ञा-प्रश्न—

१—**गरूर (अ०—ग़रूर)** गये गँवाइ गरूर पति, धनु मिस हये महेस।

२—**दाइज (फ़ा०—जहेज़)** दाइज भयउ अनेक विधि, सुनि सिहाहि दिसिपाल।

३—**साहिब (अ०—साहब)** सेवक पाइ सु साहिवहि, साहिब पाइ सुदासु।

४—**गरीबनेवाज (फ़ा०—ग़रीबनिवाज़)** तुलसी रामकृपालु को, विरद गरीबनेवाज।

५—**सोर (फ़ा०—शोर)** लरत पचारि पचारि भट समर सोर दुहुँ ओर।

६—**नीक (फ़ा०—नेक)** राम-राज सब काज कहि, नीक एक ही आँक।

रामललानहछू—

१—**दरजिनि (फ़ा०—दरज़ी)** दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।

२—**मोचिनि (फ़ा०—मोची)**

३—**गुमान (फ़ा०—गुमान)** नैनन्ह करत गुमान।

४—**लायक (फ़ा०—लायक़)** जो जस लायक हो।

५—**हजार (फ़ा०—हज़ार)** भरिगे रतन पदारथ सूप हजार हो।

६—**निहाल (फ़ा०)** परिजन करहि निहाल असीसत आवइ हो।

७—**मौज (फ़ा०)** तापर करहि सुमौज बहुत दुख खोवहि हो।

८—**सवाँग (फ़ा—स्वाँग)** हिलि-मिलि करत सवाँग सभारस केलि हो।

९—**दूलह (फ़ा०—दूल्हा)** दूलह कै महतारि देखि मन हरषइ हो।

बरवै रामायण—

१—**कमान (फ़ा०)** भाल तिलक सर सोहत भौंह कमान।

२—**अँदेस (फ़ा०—अन्देशा)** कमठ पीठ धनु सजनी कठिन अँदेस।

३—**नीक (फ़ा०—नेक)** सकल लोक कल्यान नीक परलोक।

दोहावली—

१—**फजहति (फ़ा०)** अत फजीहति होहिंगे, गनिका के से पूत।

२—**साहिब (अ०)** साहिब होत सरोष।

३—**बाज (फ़ा०)** बाजराज के बालकहि, लवा दिखावत आँखि।

४—**इताति (अ०)** निसिबासर ताकहुँ भलो, मानै राम इताति।

५—**दरबार (फ़ा०)** भूमि भूप दरबार।

६—**जोर (फ़ा०)** बिन ही ऋतु तरुवर फरत सिला द्रवति जल जोर।

७—**चूक (फ़ा०)** तुलसी परी न चाहिए चतुर चातकहि चूक।

८—**दाग (फ़ा०)** तुलसी जो मृगमन मुरै, परै प्रेम पट दाग।

९—**रुखान (फ़ा०)** सुजन, सुतरु, बन ऊख सम, खल टंकिका रुखान।

१०—दगो
११—पोच } (फ़ा०) लोक बेद हूँ लौ दगो, नाम भले को पोच ।

१२—जहान (फ़ा) खल उपकार बिकार फल, तुलसी जान जहान ।
१३—गुमान (फ़ा०) तुलसी जु पै गुमान को, हो तो कछू उपाय ।
१४—गरज (फ़ा) गरज आपनी सबन को ।

१५—तोपची
१६—दारू } काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल ।

१७—पलीता पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहुमीपाल ।।
१८—मवासे (फ़ा०) मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज ।
१९—कुमाच (फ़ा०) काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच ।
२०—रैयत (फ़ा०) रैयत राज-समाज ।
२१—लबार (फ़ा०) मन बच करम लबार ।

विनय-पत्रिका—

१—ख़ाक (फ़ा०) बालिस बासी अवध को बूझिये न खाको ।

२—कूच
३—मुकाम } (फ़ा०) तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को ।

४—खरगोस (फ़ा०) चहत केहरि जसहि सेह सृगाल ज्यो खरगोसु ।
५—जहान (फ़ा०) देखे सुने जाने मे जहान जेते बडे है ।
६—बेगार—(फ़ा०) नाही तो भव बेगार महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे ।
७—कबूलत (फ़ा०) हौ न कबूलत बाँधि कै मोल करत करेरो ।

८—गनी
९—गरीब } (अ०) निदरि गनी आदर गरीब पर ।

१०—दरबार (फ़ा०) यहि दरबार दीन को आदर ।
११—लायक (फ़ा०) प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक ।
१२—पील (फ़ा०) पील उद्धरन सील सिधु ढील देखियत ।
१३—कलई (अ०) चढ़ी कुरीति कपट कलई है ।

१४—सरम
१५—निवाजे } (फ़ा०) आपने निवाजे की न काहू होति सरम ।

१६—सहरु (शहर—फ़ा०) राजा मेरे राजा राम अवध सहरु।
१७—जहरु (ज़हर—फा०) सुधा सो भरोसो एहु दूसरो जहर।
१८—कहरु (क़हर–फ़ा०) डरत हौं देखि कलिकाल को कहरु।
१९—स्वाँग (फ़ा०) स्वाँग सूधो साधु को।
२०—सही (फा०) तुलसी सुभाय कही साँचियै परैगो सही।
२१—साहिब }
२२—खास } (फ़ा०) साहिब उवारे होत दास खास खीम होत।
२३—खीस }
२४—गरीब }
२५—मिसकीन } (फ़ा०) लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।
२६—बाज (फ़ा०) दीनता दारिद दलै को कृपा बारिध बाज।
२७—बिलन्द (फ़ा०) मद बिलद अमेरा दलकन पादप दुख झकझोरा रे।
२८—निहाल (फ़ा०) जे जे तै निहाल किये फूले फिरत पाये।
२९—नीके (फ़ा०) रोटी लूगा नीके राखै।
३०—सिरताज (फ़ा०) राम को बिसारिबो निषेध सिरताज रे।
३१—जेरो (फ़ा०) नाम ओट अब लगि बच्यो, मल जुग जग जेरो।
३२—सामो (सामान—फ़ा०)वाल्मीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो।
३३—शतरंज } (फ़ा०) सतरज को सो राज काठ को सबै समाज।
३४—बाजी } (फ़ा०) महाराज बाजी रची प्रथम न दीन देखियत।
३५—निसानी (निशानी–फ़ा०) सुख की नही निसानी।
३६—जोर (फ़ा०) मुख भजन खल बरजोर की।
३७—उसीला (वसीला फ़ा०) साहब कहूँ न राम से तोसेन उसीले।
३८—परदा (फ़ा०) सेवक को परदा फटै।
३९—तकिया (फ़ा०) तहँ तुलसी कह कौन की काको तकिया रे।
४०—दाग (फ़ा०) बाम बिधि भालहू न कर्म दाग दागिहै।
४१—दाम (फ़ा०) खोटो दाम।
४२—खसम (फ़ा०) राम सो खरो खसम।
४३—गुलाम (फ़ा०) गुलाम हौ कहावौ।
४४—लबार (फ़ा०) लबारु भये देव दिव्य।
४५—गच (फ़ा०) ज्यों गच काँच बिलोकि।
४६—चारो (चारा–फ़ा०) नाथ तहाँ कछु चारो।

४७—**खलल (फ़ा०)** देखि खलल अधिकार सुप्रभु सों।
४८—**दिरयानी (दरयानी—फ़ा०)** दोष कहा दिरयानी।
४९—**सई (फ़ा०)** नहि सिद्धि सई है।
५०—**दादि (दाद—फ़ा०)** दीजै दादि देखि नातो।
५१—**बैरक (बैरख—फ़ा०)** दीजै भगति बाँह बैरक ज्यो।
५२—**बाजीगर (फ़ा०)** बाजीगर के सूम ज्यो।
५३—**महल (फ़ा०)** टहल सहल जन महल महल।
५४—**गोतो (गोता—फ़ा०)** उछरि भभरि लेत गोतो।
५५—**दुनी (दुनिया—फ़ा०)** दुनियै हरख सोक साँसति सहत।
५६—**गोसायो (गुस्सा—फ़ा०)** मेरे भले को गोसायो।
५७—**दग़ाबाजिहू (दगाबाजी—फ़ा०)** दगाबाजिहू को सौदा सूत।
५८—**सौदा—(फा०)** ,, ,,
५९—**फ़हम** मोहिं कछु फहम न तरनि तमी को।
६०—**गुदरि (गुज़र-फ़ा०)** प्रभुसो गुदरि निबह्यो हौ।

४

वाणी-विलास

तुलसीदास ने अपनी रचनाएँ अवधी और ब्रजभाषा मे की है। अवधी बोली सीतापुर, खीरी, गोंड़ा, बहराइच, लखनऊ, उन्नाव, बाराबंकी, फैजाबाद, सुलतानपुर, रायबरेली और प्रतापगढ़ मे तो बोली ही जाती है, सरहदी जिलों में भी, जैसे, कानपुर, फतहपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर और जौनपुर के पश्चिमी हिस्सों मे उसका प्रसार है। इस बोली मे सबसे पहला काव्य-ग्रन्थ 'पद्मावत' है, जो मलिक मुहम्मद जायसी की रचना है और दूसरा ग्रन्थ 'रामचरितमानस' है। एक ही बोली में लिखे जाने पर भी 'पद्मावत' और 'मानस' की भाषा में अन्तर है। 'पद्मावत' मे अवधी में प्रचलित तद्भव शब्दों की बहुलता है और 'मानस' मे तत्सम शब्दों का प्राचुर्य। अवधी के साथ 'मानस' मे बुन्देलखण्डी, ब्रजभाषा और भोजपुरी बोली का भी मिश्रण है।

बुन्देलखण्डी बोली झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नृसिंहपुर, सिवंनी और होशंगाबाद मे बोली जाती है। ब्रजभाषा मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, एटा तथा मैनपुरी तक बोली जाती है। तुलसीदास के बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक यही हिन्दी की काव्य-भाषा थी। इससे ब्रज की सीमा से बाहर रहने वाले हिन्दी के कविगण भी ब्रजभाषा सीखते और उसमे कविता करते थे।

भोजपुरी बोली का प्रसार बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, बस्ती, आजमगढ़, शाहाबाद, चम्पारन और छोटा नागपुर तक है। बुन्देलखण्डी और भोजपुरी मे कोई स्थायी साहित्य नहीं है।

सूरदास आदि कवियों ने ब्रजभाषा में श्रीकृष्ण का चरित्र लिखा था। तुलसीदास राम के भक्त थे, इससे राम के जन्म-स्थान अवध की बोली में अवध-नरेश का चरित्र लिखना उनके लिए स्वाभाविक ही था। यद्यपि तुलसीदास ने अवधी में अपनी रचनाएँ कीं; पर संस्कृत-साहित्य से वे जहाँ तक शब्दों और भावों को लेकर अवधी मे भर सके है, उनके भरने मे उन्होंने

अपनी भाषा को नाना-प्रकार के अलङ्कारों, हृदयस्पर्शी मुहावरों, भावों पर चमक देने वाली कहावतों और रस बरसाने वाले शब्दों से खूब सजाया है।

'रामचरितमानस' तुलसीदास की सबसे सुन्दर रचना है। जिस तरह चन्द्रमा को हम जीवन-भर देखते रहते हैं पर वह कभी बासी नहीं होता; उसी प्रकार 'रामचरितमानस' कभी नीरस नहीं होता। उसमे हर-एक बार कुछ-न-कुछ नवीनता ही मिलती रहती है। कहीं हम तुलसीदास में एक विद्वान् और विवेकशील वक्ता की प्रगल्भता पाते हैं, तो कहीं एक शोख कवि का-सा नटखटपन भी। कहीं हम उन्हें भक्ति की अगाध धारा में नहाते पाते है, तो कहीं देवताओं की खिल्ली उड़ाते हुए। उपहास करने में न उन्होंने विष्णु को छोड़ा, न ब्रह्मा को, न शिव को और न इन्द्र को। देवताओं से तो उन्होंने सारे 'रामचरितमानस'-भर मे केवल डुगडुगी बजाने और फूल बरसाने ही का काम लिया है। इससे भी अधिक उनके स्वभाव का सौन्दर्य वहाँ खिल उठता है, जहाँ हम उन्हें अपने पाठकों को थोड़ी देर के लिए कौतूहल में डाल देने वाले दो अर्थों के शब्दों का प्रयोग करते हुए पाते है। जान पड़ता है, ऐसे शब्दों को वे चुन-चुनकर रखे रहते थे, और जहाँ कुछ भाषा-सम्बन्धी चमत्कार दिखलाना चाहते थे, वहाँ उन्हें जड़ देते थे। उनके इस शब्द-खेल में 'रामचरितमानस' के बहुत-से टीकाकार फँस भी गए है, यह देखकर बड़ा कौतूहल होता है। यहाँ ऐसे कुछ शब्द दिये जाते है :

भरनी—रामकथा कलि पन्नग भरनी।
पुनि विवेक पावक कहँ अरनी ॥ (बाल-कांड)

टीकाकारों ने 'भरनी' का अर्थ 'भरणी' नक्षत्र किया है। और कइयों ने अपनी यह जानकारी भी घोषित कर दी है कि भरणी नक्षत्र में साँप का नाश हो जाता है; यद्यपि कहा जाता है कि भरणी नक्षत्र ही में साँप अण्डे देता है। पर तुलसीदास ने यह शब्द मोरनी के अर्थ में प्रयुक्त किया है। संस्कृत के 'मेदिनी-कोष' में यह मिलता है :

भरणी मयूरपत्नी स्यात्।

छत्रबन्धु—छत्रबन्धु तैं बिप्र बोलाई।
घालै लिये सहित समुदाई ॥ (बाल-कांड)

टीकाकारों ने 'छत्रबन्धु' का अर्थ राजा लिखा है; पर आप्टे ने इस शब्द का अर्थ दिया है—छत्रबंधुः—a vile or wretched Kshatriya (as a term of abuse)। इसका अर्थ हुआ—महा नीच क्षत्रिय। छत्रबन्धु शब्द का प्रयोग तुलसीदास ने निस्सन्देह नीच क्षत्रिय ही के अर्थ मे किया था;

क्योंकि उस स्थान पर ऐसा ही सम्बोधन उपयुक्त है।

इसी तरह 'विनय-पत्रिका' में 'विप्रबन्धु' शब्द नीच ब्राह्मण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है :

वेदविदित जगविदित अजामिल विप्रबंधु अघधाम।

पतंग—करहिं गान बहु तान तरंगा।
बहु विधि क्रीडहिं पानि पतंगा॥ (बाल-कांड)

इसमें 'पतंग' शब्द का अर्थ किसी टीकाकार ने गुलाबी, किसी ने सूर्याकार और किसी ने चिनगारी किया है और किसी ने लिखा है कि पतंग कनकौआ) उड़ाती हुई वे नाच रही थीं। साधारणतः पतंग शब्द उन्हीं अर्थों में व्यवहृत होता भी है; पर तुलसीदास ने यह शब्द गेंद के अर्थ मे प्रयुक्त किया है और सम्भवतः उन्होंने इसे 'भागवत' से लिया होगा। 'भागवत' में यह शब्द कई स्थानों मे गेंद के अर्थ में आया है। जैसे :

नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं
घ्नन्त्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम्।
मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं
शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः॥
(स्कन्ध ३, अध्याय २०, श्लोक ३६)

लड़ाइकै—सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बडाइकै।
प्रमुदित महा मुनिवृन्द वन्दे पूजि प्रेम लडाइकै॥ (बाल-कांड)

टीकाकारों ने इसका अर्थ प्रेम और लाड़ से तथा प्रेम के साथ किया है, पर अवध में लड़ना शब्द ढुलकाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे, पानी लड़ाइ ग। यहाँ भी 'प्रेम को पानी की तरह ढुलकाकर' ही अर्थ उपयुक्त होगा।

सोना—नीदहु वदन सोह सुठि लोना।
मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥ (बाल-कांड)

इसमें 'सरसीरुह सोना' से बहुतों को सुनहले कमल का धोखा हो गया है; पर यह 'सोना' संस्कृत के शोण का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है—लाल।

कूट—कमठ पीठि पबि कूट कठोरा।
नृप समाज महँ सिव धनु तोरा॥ (बाल-कांड)

'कूट' शब्द प्रायः पर्वत के अर्थ में आता है; पर यहाँ लौह के अर्थ में आया जान पड़ता है। आप्टे ने 'कूट' का अर्थ A hammer; an iron matell भी किया है।

सकल—राम सैल बन देखन जाहीं ।
जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं ।। (अयोध्या-कांड)

दूसरा 'सकल' संस्कृत का 'शकल' है, जिसका अर्थ है, खंड, कुछ ।

भूमिनाग—सो मै कहउँ कवन बिधि बरनी ।
भूमिनाग सिर धरइ कि धरनी ।। (बाल-कांड)

'भूमिनाग' का शाब्दिक अर्थ है—पृथ्वी का साँप । पर कोष में इसका अर्थ है केंचुआ । साधारण पाठक को भूमि और नाग शब्दों के अन्दर केंचुआ निकालना बहुत कठिन है ।

चाकी—चितवनि चारु भौंह बर बाँकी ।
तिलक रेख सोभा जनु चाकी ।। (बाल-कांड)

टीकाकारों ने 'चाकी' शब्द के अनेक अर्थ किये हैं । किसी ने चक्राकार लिखा है, किसी ने चाकना, गोंठना, घेरा देना इत्यादि; पर अवध मे 'चाकी' बिजली को कहते हैं । चाकी फारसी के चाक शब्द से निकला है जिसका अर्थ है, फाड़ देना । देहात में इसे चिर्री भी कहते हैं । दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है ।

घृनी—सब निरदम्भ धर्मरत घृनी ।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी ।। (उत्तर-कांड)

'घृनी' शब्द घृणा से सम्बन्ध रखता है; पर यहाँ अन्य अच्छे विशेषणों के बीच में घृनी शब्द घृणा-सूचक के रूप में नहीं बैठ सकता । इससे टीकाकारों ने अनेक जटिल कल्पनाएँ करके 'घृनी' को अघृणी बनाने की उपहासास्पद चेष्टा की है; पर घृणी शब्द घृणा का वंशज होने पर भी अच्छा अर्थ रखता है, जैसे—

घृणि—Sunshine; A ray of light; A wave (**आप्टे की डिक्शनरी**)

किन—जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी ।
नखनिर्गता मुनिबंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी ।।
ध्वज कुलिस अंकुस कञ्ज जुत बन फिरत कंटक किन लहे ।
पदकंज द्वंद मुकुन्द राम रमेस नित्य भजामहे ।।
(उत्तर-कांड)

इसके तीसरे चरण में एक 'किन' शब्द आया है । उसने 'रामचरितमानस' के कितने ही टीकाकारों को खूब छकाया है । कइयों ने इसका अर्थ किनने,

किन्होंने या क्यों न, किया है; पर यह संस्कृत के 'किण' शब्द का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है—घट्टा।

संस्कृत मे इस शब्द का प्रयोग कई स्थानों में मिलता है। 'आलमन्दार-स्तोत्र' का एक श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है :

शरासनज्याकिणकर्कशैः शुभै
चतुर्भिराजानु विलम्बिभिर्भुजै।
प्रियावतंसोत्पलकर्णभूषणैः
श्लथालकाबन्धविमर्द शंसिभिः॥

चलि—सीतल सुरभि पवन बह मन्दा।
गुञ्जत अलि लइ चलि मकरन्दा॥ (उत्तर-कांड)

इसमें 'चलि' शब्द ऐसे स्थान पर रख दिया गया है, जहाँ वह क्रिया-सा जान पड़ता है। पर यह अर्थ करने पर भी भौंरे मकरन्द लेकर गूँजते चले जा रहे थे, यह शंका होती है, कि कवि को क्या पता कि भौंरा खाली मुँह जा रहा है या मुँह में मकरंद भरकर? भौंरे का तो केवल गुञ्जन ही कवि का विषय है। यहाँ पर 'चलि मकरंदा' का अर्थ होगा, मकरंद से लिपा हुआ। भौंरे के शरीर पर पुष्प-रस चुपड़ा हुआ है, वह लय से गुञ्जार कर रहा है।

'श्रीमद्भागवत्' में भी यह शब्द इसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है। यथा .

चलत्पद्मरज. पय। (स्कंन्ध ८, अ० २, श्लोक १७)

चरम—चरम देह द्विजकर मैं पाई।
सुर दुरलभ पुरान-स्रुति गाई॥ (उत्तर-कांड)

जो लोग संस्कृत के 'चरम' शब्द का अर्थ नहीं जानते, वे तो 'चमड़े की देह' ही समझेंगे। संस्कृत में 'चरम' शब्द अन्तिम का बोधक है।

आप—आपन छोड़ो साथ जब, ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अम्बुज अम्बु बिन, तरनि तासु रिपु होइ।

यहाँ 'आपन' शब्द के दो अर्थ है—'अपने लोग' और 'जल'।

तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में ऐसे-ऐसे अनोखे शब्दो का प्रयोग किया है जो संस्कृत जानने वालों ही की समझ मे आ सकते है। जैसे—

धूमध्वज=अग्नि—दहन इव धूमध्वज वृषभभान।

अंजन-केस=दीपक—अञ्जनकेस सिखा जुवती तहँ लोचन सलभ पठावौ।

भुजग-भोग=सूँड़—भुजँग भोग भुजदण्ड कञ्ज दर चक्र गदा बनि आई।

केश=(क+ईश)—ब्रह्मा और शिव—केशव क्लेशहं केशवदित।

किरनकेतु=सूर्य—सत्रुतम तुहिनहर किरनकेतू।

वसन-बसन=ओठ—दसन बसन लाल बिसद हास रसाल।

बन-बाहन=नाव—पाहन ते बन-बाहन काठ को,

कोमल है जल खाइ रहा है।

'पाहन' का अनुप्रास मिलाने के लिए यह शब्द गढ़ा गया है।

सरल—बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे।

इसमें 'सरल' शब्द बड़ा ही मनोरंजक है। 'सरल' का साधारण अर्थ है, सीधा। पर तिकोने का विशेषण सरल कैसे होगा? वास्तव में यह काशी की घरेलू बोली का शब्द है, जिसका अर्थ है, सड़ा हुआ।

भूँजब—राज कि भूँजब भरत पुर, नृप कि जिअहिं बिनु राम।

'भूँजब' शब्द जान-बूझकर पाठकों के साथ विनोद करने के लिए यहाँ बैठाया गया है। साधारण बोल-चाल में इसका अर्थ है, भूनना, जलाना। पर यह संस्कृत की 'भुज्' धातु का शब्द है और यहाँ इसका अर्थ है, भोग करना।

तुलसीदास की रचनाओं में मुहावरों और कहावतों का भी काफी प्रयोग मिलता है। देखिये:—

त्यों-त्यों नीच चढत सिर ऊपर, ज्यों-ज्यों सील बस **ढील दई** है।

है निर्गुन सारी बारिक बलि, **घरी करौ** हम जोही।

दसमुख बिबस तिलोक लोकपति, बिकल **बिनाये नाक चना** है।

सो **दिन सोने को** कबु अइहै।

बालिस **बजावै गाल**।

कहे की न लाज पिय अजहूँ **न आये बाज**, सहित समाज गढ राँड कैसो **भाँड़िगो**।

महाराज आजा जौ न देत **दादि** दीन की।

कहा भौ चढ़ाये चाप ब्याह ह्वैहै **बड़े खाये**।

बालिस बासी अवध को बूझिये **न खाको**।

वेद लोक सब साखी काहू की **रती न राखी**।

सकल सभा सुनि **लै उठी**।

सेइ साधु गुरु सुनि पुरान स्रुति **बूझ्यो राग बाजी ताँति**।

टूटियौ बाँह गरे परै फूटेहू बिलोचन पीर होति।

माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ।

काले टाइप के शब्दों पर ध्यान दीजिये। यह आश्चर्य की बात है कि तुलसीदास दाद देना, बाज आना, खाक न समझना आदि आजकल के उर्दू-मुहावरों का भी प्रयोग कर गए हैं।

अरबी-फारसी के शब्दों को हिन्दी की पोशाक पहना देने में भी तुलसी-दास बड़े ही स्वतन्त्र थे। देखिये :

रावरे पिनाक मे **सरीकता** कहाँ रही ?
मुर स्वारथी अनीस **अलायक**।
लाभ जोग छेम को गरीबी **मिसकीनता**।

उन्होने नई क्रियाएँ भी बना ली थीं। जैसे :

त्यों ही तिहारे हिये न **हितैहौं**।
त्यो जिनके मन आँच न **आँचे**।
इन्हहि बहुत **आदरत** महामुनि।
जाते बिपति जाल निसिदिन दुख तेहि पथ **अनुसरिये**।
आपने **निवाजे** की न काहू को सरम।

काले टाइप के शब्दों को देखिये, ये बिलकुल नई क्रियाएँ है, जिनका हिन्दी मे अब तक चलन नहीं हुआ।

तुलसीदास की सारी रचनाएँ एक-से-एक अनूठी उपमाओं से ठसाठस भरी है। कहीं-कही तो उपमाएँ रहट की कड़ियों की तरह एक-पर-एक लगातार आती गई है। इस प्रकार का आनन्द अयोध्या-कांड में खूब मिलता है।

यहाँ कुछ उपमाएँ दी जाती हैं :

जीभ कमान बचन सर नाना। मन महीप मृदु लक्ष्य समाना।

× × ×

उभय मध्य सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।

× × ×

गए सहमि कछु कहि नहि आवा। जनु सचान वन झपटेउ लावा।

× × ×

बहुरि बदन बिधु अचल ढाँकी। पिय तन चितै भौह करि बाँकी।
खजन मजु तिरीछे नैननि। निज पित कहेउ तिनहि सिय सैननि।

× × ×

प्रभु अपने नीचहुँ आदरही। अगिनि धूम गिरि सिर तृन धरही।

× × ×

देव कहा हम तुम्हहिं गोसाईं। ईधन पान किरात मिताई।

× × ×

आरत कहहि बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ।

× × ×

झलका झलकत पायन कैसे। पकज कोस ओस-कन जैसे।

× × ×

बिपति बीज बर्षा ऋतु चेरी। भुइँ भइ कुमति केकई केरी।
पाइ कपट जल अकुर जामा। बर दोउ दल फल दुख परिनामा।

× × ×

बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी।

× × ×

डगइ न सम्भु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे।

× × ×

बिधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा। सिरिस सुमन कन बेधिय हीरा।

× × ×

मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक-घट जैसे।

× × ×

राम सीय सुन्दर परछाही। जगमगाति मन खंभन माही।
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम-विवाह अनूपा।
दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि-बहोरी।

× × ×

दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गएउ पाक बरतोरू।

× × ×

भूप मनोरथ सुभग बन, सुख सुबिहग समाजु।
भिल्लिनि जनु छाडन चहति, बचन भयकर बाजु॥

× × ×

मनहुँ बारिनिधि बूड जहाजू। भयउ विकल बड बनिक समाजू।

× × ×

जोगवहि प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे।
सेवहि लखन सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि।

× × ×

अंगद दीख दसानन बैसा। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा।
भुजा विटप, सिर सृङ्ग समाना। रोमावली लता जनु नाना।
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कन्दरा खोह अनुमाना।

× × ×

घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किसुक के तरु जैसे।

× × ×

सकल सुचिन्ह सुजन सुखदायक ऊरधरेख बिसेष बिराजति।
मनहुँ भानु मडलहि सँवारत धरयो सूत बिधि सुत विचित्र मति।

५

शब्द-भण्डार

तुलसीदास ने अपने ग्रंथों मे, और खासकर 'रामचरितमानस' में कुल कितने शब्दों का प्रयोग किया? यह एक प्रश्न है। यद्यपि जब तक उनके हाथ का लिखा 'मानस' न मिल जाय तब तक नकल की हुई छपी प्रतियों के आधार पर उसकी ठीक-ठीक शब्द-संख्या बताना कठिन है, पर और कोई चारा भी तो नहीं है। इससे प्रामाणिकता का दावा करने वाली छपी प्रतियों ही को प्रमाण मानकर शब्द-संख्या तैयार करनी पड़ेगी। ऐसी प्रतियाँ मेरे देखने में ये आई हैं:

१—काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा की प्रति

२—पंडित महावीरप्रसाद मालवीय की प्रति

३—गीता प्रेस से प्रकाशित प्रति

४—डॉ० माताप्रसाद गुप्त की प्रति

इन प्रतियों में भी यद्यपि कहीं-कहीं पाठांतर का अन्तर है, पर चौपाइयो की संख्या मे घट-बढ़ बहुत थोड़ी है।

कई वर्ष हुए, ओरछा-नरेश की आज्ञा से टीकमगढ के पंडित बालकृष्णदेव तैलंग ने तुलसीदास के समस्त ग्रन्थों की शब्द-संख्या सभा की प्रति के आधार पर तैयार की थी, जो 'मधुकर' के वर्ष २, अंक १६ में प्रकाशित हुई थी। वह इस प्रकार है:

	ग्रन्थ	शब्द-संख्या
१	रामचरितमानस	
	बाल-कांड	१५९८३
	अयोध्या-कांड	१५०५८
	अरण्य-कांड	४०११
	किष्किन्धा-कांड	१८१५
	सुन्दर-कांड	४३१६

लंका-कांड	८६१६
उत्तर-कांड	६६५०
२—रामललानहछू	१०४६
३—वैराग्य संदीपिनी	५६७
४—बरवै रामायण	६६५
५—पार्वती-मंगल	२२७५
६—जानकी-मंगल	२७१२
७—रामाज्ञा-प्रश्न	३७७२
८—दोहावली	६५३०
९—कवितावली	१३९६६
१०—गीतावली	१८८६७
११—श्रीकृष्ण गीतावली	२८९१
१२—विनय-पत्रिका	१६७६८
कुल योग	१२६८२१

मैंने 'रामचरितमानस' की शब्द-संख्या गीता प्रेस से प्रकाशित संस्करण के आधार पर निश्चित की। श्री तैलंगजी की संख्या से बहुत थोड़ा अन्तर मिला। किसी-किसी कांड मे कुछ शब्द बढ़ गए। किसी में कम हो गए। इसका कारण चौपाइयों की कमी या अधिकता भी हो सकता है।

मैंने यह भी जोड़कर देखा कि 'रामचरितमानस' में ६०-७० फी सदी शब्द शुद्ध संस्कृत के है और शेष तद्भव, अपभ्रंश या गाँव की हिन्दी के। किसी-किसी चौपाई या दोहे में तो संस्कृत-शब्दों ही की भरमार है, हिन्दी के शब्द इने-गिने ही है। जैसे :

भूमि सयन बलकल बसन असन कन्द फल मूल।
तेकि सदा सब दिन मिलहि समय-समय अनुकूल॥

इस दोहे में तीसरे चरण मे 'तेकि', 'सब' और 'मिलहिं' केवल तीन ही शब्द हिन्दी के है, शेष सब संस्कृत के है।

शब्दों के प्रयोग में एक बात यह भी देखने में आती है कि लघु वर्णों से बने हुए शब्द जान-बूझकर ज्यादा प्रयुक्त किये गए हैं, जिससे कविता की भाषा की सरसता बढ़ गई है। और टवर्ग तो यथासम्भव कम आने पाया है। तुलसीदास का शब्द-भंडार तो ऐसा बृहत् था कि गूढ़-से-गूढ भावों को सरलता से व्यक्त करने में उन्हें कहीं कठिनाई नहीं पड़ी है।

तुलसीदास जी की कविता की बदौलत लगभग नब्बे हज़ार संस्कृत-शब्द

देहात के अपढ़ आदमियों के घरो मे भी जा बैठे है, जो शिक्षा-विभाग या विश्वविद्यालयों द्वारा भी वहाँ तक हरगिज नहीं पहुँच सकते थे। ये शब्द हिन्दू-संस्कृति के मूल-स्वरूप है, जो बौद्ध मत और पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के अंधड़ में उखड़ गए थे तुलसीदास जी ने उन्हें फिर जमा दिया। उसी तरह गाँवो के लगभग तीस-चालीस हज़ार शब्दों को सभ्य या शहराती समाज तक पहुँचा दिया, जिससे पढ़ी-लिखी और देहात की अपढ़ जनता में विचारों की समानता स्थापित कर दी। मौके-मौके पर अरबी-फारसी के शब्द भी डाल दिये गए है, जिनसे वे लोग आकर्षित हुए, जो अरबी-फारसी भी जानते थे। 'रामचरितमानस' लोक-संग्रह का एक आदर्श बन गया है।

६

बाह्य जगत्

हम संसार मे बहुत सी चीजे, बहुत सी घटनाएँ नित्य देखते और सुनते रहते है, पर हम उन पर बहुत ही कम ध्यान देते है और कुछ देने भी है, तो अपनी अल्पज्ञतावश उससे कोई अच्छा परिणाम नहीं निकाल सकते। पर तुलसीदास उसी जगत् को कवि की दृष्टि से देखते थे और वे सहज ही मे एक सुन्दर परिणाम निकाल लेते थे। इतना ही नहीं कि वे उसमे आनन्द अनुभव कर लें और गूँगे का-सा गुड़ खाकर रह जायँ। वे अपने आनन्द को छन्दों के पिटारों मे भर-भरकर हम लोगों के लिए रख भी देते थे। यह उनका कितना बड़ा दान है !

हम लोग गाँवों के आस-पास पानी के गड्ढे प्रायः देखते रहते हैं। उनमें जल सूख जाने पर जो कीचड़ रह जाता है, वह भी जब सूख जाता है, तब उसमें दरारे पड़ जाती है। यह इतनी साधारण प्राकृतिक घटना है कि हम उससे अपने जीवन का कोई सम्बन्ध जोड़ नहीं सकते। पर तुलसीदास ने उसमें से जो रहस्य निकालकर हमें दिखाया है, उससे तो अत्यन्त तुच्छ कीचड़ का मोल सुवर्ण से भी अधिक हो जाता है।

राम को वन में छोड़कर जब सुमन्त लौटे है, उस समय उनकी मनोवेदना के साथ तुलसीदास ने कीचड़ की अन्तर्पीड़ा इन शब्दों में प्रकट की है :

हृदय न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रियतम नीर।

अर्थात् प्रियतम जल के बिछुड़ने से जैसे कीचड़ का हृदय फट गया, वैसा मेरा नहीं फटा।

अहो ! कीचड़ ने सच्चे प्रेम और सच्ची मैत्री का कैसा सुन्दर रूप दिखलाया है ! इसे पढ़कर तो भर्तृहरि का यह श्लोक फीका लगता है :

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिला
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः।
गन्तु पावकमुन्मनस्तदभवत् दृष्ट्वा तु मित्रापद
युक्त तेन जलेन शाम्यति सता मैत्री पुनस्त्वीदृशी।

अब आगे आइये।

हम लोग प्रारम्भिक पाठशालाओं में गिनती और पहाड़े पढ़ते हैं। तुलसी-दास ने कभी किसी पाठशाला में पैर रखा था, या नहीं, यह हमें नहीं मालूम। पर नौ के पहाड़े से उन्होंने जो एक नई बात निकाली, वह अब पुरानी हो जाने पर भी हमारे लिए तो नई ही है और जब तक वह पहाड़ा रहेगा, तब तक नई ही रहेगी।

नौ के पहाड़े को हम चाहे जिस अंक से गुणा करें, उसके गुणन-फल के अंकों का जोड़ नौ ही होगा। इस रहस्य को तुलसीदास ने समझकर एक अच्छे उपदेश के साथ हमारे लिए एक दोहे में बन्द करके रख दिया था :

तुलसी राम सनेह करु, त्यागि सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नौ, नौ के लिखत पहार॥

भावार्थ यह कि जैसे नौ चाहे जिस दशा मे जाय, सबमें उसका निजत्व कायम रहता है। उसी तरह मनुष्य को भी दुःख-सुख, हानि-लाभ, अधिकार और दासता इत्यादि सब दशाओं मे अपना व्यक्तित्व स्थिर रखना चाहिए।

अथवा इसे ऐसा समझिये कि नौ नाम का एक मनुष्य है। वह संसार मे प्रवेश करता है। वह संसार के आघात-प्रतिघात मे पड़कर १८ हुआ, तो उसकी दैवी-सम्पत्ति १ थी और आसुरी-सम्पत्ति ८। उसने अपने आत्म-सुधार का प्रयत्न किया। २७ तक पहुँचने पर उनकी दैवी-सम्पत्ति मे एक की वृद्धि हुई और आसुरी-सम्पत्ति में एक का ह्रास। उसका प्रयत्न जारी रहा और उसकी इच्छित सम्पत्ति बढ़ती रही। अन्त मे ९० तक पहुँचते-पहुँचते वह कल्मष-हीन हो गया। सोचिये, ९ के अंक में कितना बड़ा रहस्य भरा है! यह तो प्रत्येक मनुष्य के लिए उसके जीवन का एक पथ-प्रदर्शक-सा है।

अब आगे आइये।

तुलसी ने कभी लड़कों को ढेले से आम तोड़ते देखा होगा। इस साधारण-सी बात को लेकर भी उन्होंने हमें आम से भी अधिक सरस और मधुर पदार्थ दे दिया है :

तुलसी सन्त सुअम्ब तरु, फूलि-फलहि पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत॥

और आगे चलिये।

कच्चे पोखरों और ताल-तलैयों के किनारे-किनारे प्रायः घास जम जाती है। उसके एक तरफ पानी होने से जानवर उसे चर नहीं सकते। इससे वह बेकार ही-सी पड़ी रहती है और पानी पीने वाले जानवरों के पैरों से रौंदी

जाकर निर्बल भी बनी रहती है। तुलसीदास ने कभी उसे देखा होगा। देखिये, उस दीन-हीन घास को उन्होंने कितना बड़ा महत्त्व का पद दिया है।

तुलसी तृन जल-कूल को, निरबल निपट अकाज।
कै राखै, कै सँग चलै, बाँह गहे की लाज।।

भावार्थ यह है कि जल के किनारे की घास अत्यन्त कमजोर और व्यर्थ होने पर भी इतना आत्म-गौरव रखती है कि जब कोई डूबता हुआ मनुष्य उसे पकड़ लेता है, तब इस विचार से कि इसने मेरी बाँह पकड़ ली है और यह शरण में आया है, वह या तो उसे बचा लेती है या उसी के साथ अपने प्राण दे देती है। तुलसीदास ने बाँह पकड़ने का महत्त्व एक और दोहे मे भी कहा है, पर यह उस घास को नहीं पा सकता :

तुलसी बाँह सपूत की, जो धोखेहु छुइ जाइ।
आपु निबाहै जनम भरि, लरिकन ते कहि जाइ।।

और सुनिये—

हम लोग अंक लिखते है,पर कभी यह ध्यान नहीं देते,कि किस अङ्क की शक्ल-सूरत कैसी है, और किसकी कैसी ? पर तुलसीदास की दृष्टि से वह बचने नही पाया। एक दोहे मे ३ और ६ को लेकर वे हमे कुछ बता गए है

जग ते रहु छत्तीस ह्वै, राम-चरन छै-तीन।
तुलसी देखु विचार हिय, है यह मतौ प्रवीन।।

नाव और नदी में मैत्री नहीं होती। नाव नदी को चीरती-फाड़ती उसके ऊपर से चली जाती है। नदी यह कब सहन कर सकती है ? पर जब तक नाव मजबूत है, तब तक नदी कर ही क्या सकती है ? किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि नदी गाफ़िल है। वह अवसर की ताक में रहती है और नाव को विपद्-ग्रस्त पाते ही वह चारों ओर से उस पर चढ़ दौड़ती है। हमने हजारों बार नाव से नदी को पार किया होगा, पर नाव और नदी के संघर्ष पर हमने कब ध्यान दिया है ? तुलसीदास की सूक्ष्म दृष्टि से नदी का प्रयत्न छिपा नहीं रहा और उन्होंने उसको हमे इन शब्दों मे बता भी दिया :

सत्रु सयानो सलिल ज्यो, राख सीस रिपु नाव।
बूडत लखि पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाव।।

और देखिये—

किसान लोग खेती को जानवरों से बचाने के लिए उसमें धोखे का एक नकली आदमी खड़ा कर रखते है। तुलसीदास ने उसे देखा होगा। उन्होंने उसे ध्यान में रख छोड़ा और राम-सीता के विवाह के अवसर जब लक्ष्मण

क्रुद्ध हुए, तब उसे ले जाकर उन्होंने राज-मंडली मे खरा दिया

कुँवर चढाई भौहै अब को बिलौकै सौहै,
जहँ-तहँ भे अचेत खेत के-से धोखे है ।

एक नई उक्ति सुनिये —

किसान जब खेत काट लेते हैं, तब जो दाने खेत में छिटके रह जाते हैं, उन्हें 'सीला' और खेत काटना और काटने की मजदूरी को, जो काटे हुए बोझ के रूप में दी जाती है, 'लौनी' कहते हैं। 'सीला' प्राय: स्त्रियाँ बीनती हैं और 'लौनी' पुरुष करते हैं। इन दो शब्दों को लेकर तुलसीदास ने अपने राम और सीता के रूप की कैसी सुन्दर प्रशंसा कर डाली है

रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो सिला लवनि रति काम लही री।

भावार्थ यह है कि ब्रह्मा ने सीता और राम को रूप की राशि बनाया है। रूप के छिटके दाने रति ने बीन लिये थे और रूप का खेत काटकर जमा कर देने की लौनी कामदेव ने पाई थी। 'सीला' और 'लौनी' का कितना सुन्दर प्रयोग है !

पतंग का परिणाम देखिये—

हममें से बहुतों ने पतंग उड़ाया होगा। कहा नहीं जा सकता कि तुलसीदास ने भी उड़ाया था या नहीं; पर हवा के अभाव से पतंग के करुणाजनक पतन को तुलसीदास ने कैसी सहृदयता से देखा था इसका पता हमें उनकी इस पंक्ति से लगता है :

भरत गति लखि मातु सब रहि ज्यो गुड़ी बिनु बाय।

अब कछुए की बात सुनियें—

कछुआ अपने अंडे को किनारे पर ले जाकर रेत मे ढँक आता है और पानी मे रहकर वह निरन्तर मानस-तरङ्गों से उसे सेता रहता है। तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्र भी अपने भाई भरत का ऐसा ही ध्यान रखते थे।

रामहि बंधु सोच दिन-राती। अडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती।

तेली का कोल्हू देखकर तुलसीदास ने उसे व्यर्थ नहीं जाने दिया। उससे भी उन्होंने कुछ रस निचोड़ ही लिया :

सुकृत सुमन तिल मोद बासि बिधि जतन जन्त्र भरि घानी।
सुख सनेह सब दियो दसरथहि खरि खलेल थिरथानी॥

अर्थात्, पुण्य रूपी फूलों मे मोद रूपी तिलों को बसाकर, यत्नरूपी कोल्हू मे उसकी घानी भरकर ब्रह्मा ने दशरथ को स्नेह (तेल) रूपी सुख दिया था। और उसकी खली और तेल की गाद लोक-पालों (स्थिर स्थान वालो) को दी थी।

७

अन्तर्जगत्

जिस तरह हमारी आँखो के आगे एक बाह्य जगत् है। उसी तरह हमारे भीतर एक अन्तर्जगत् है। जिस तरह बाह्य जगत् में आकाश है और उसमें तरह-तरह के पक्षी उड़ते हैं, वैसे ही अन्तर्जगत् मे भी आकाश है और उसमें विचार-तरंगों के विविध पक्षी उड़ा करते हैं, भावों की घटाएँ घिरती है, कल्पना की दामिनी दमकती है और अनुभूति के महोदधि मे भाटे आते है।

बाह्य जगत् मे कल-कल-निनादिनी सरिताएँ है, आनन्द-मूक पर्वत है; किसी का प्रकाश ढोने वाले सूर्य, चन्द्र और तारागण हैं, वृक्ष, लता और गुल्म है, फूल, पंखड़ी और पल्लव है; वन, वन-पथ, उपत्यका, नदी-तट और हिम-शिखर है, उसी प्रकार अन्तर्जगत् मे हृदय है, प्रेम है, विरह है, वात्सल्य है, आत्मोत्सर्ग का उन्माद है, आश्चर्य है, प्रेरणा है, महत्वाकांक्षा की ज्वाला है, पश्चात्ताप है, वेदना है, आशा और निराशा है, सन्देश है, सन्देह है, विरक्ति है, दीनता है और चिन्ता है। सबमें रस है, और सबमें सुख और दुःख ओत-प्रोत है।

तुलसीदास के अन्तर्जगत् का दर्शन करने का सौभाग्य हमें उनके 'रामचरित-मानस', 'कवितावली', दोहावली और 'विनय-पत्रिका' से प्राप्त होता है। ये वह खिड़कियाँ है, जिनके भीतर से हम तुलसीदास के उस अत्यन्त मनोरम और शाश्वत सुखमय अन्तर्जगत् का दर्शन कर सकते है, जहाँ मानव-हृदय के लिए अबाध आकर्षण है, और जहाँ से जीवन के लिए सन्देश की ध्वनि सदा उठती रहती है। तुलसीदास के अन्तर्जगत् के मनुष्य है राम और सीता, भरत और लक्ष्मण, हनुमान और दशरथ, कौशल्या और सुमित्रा इत्यादि। इन सबका निर्माण तुलसीदास ने किया है। तुलसीदास अपने अन्तर्जगत् में सर्वत्र व्याप्त है।

अपने जगत् का निर्माण करने के लिए तुलसीदास एक दिन किस प्रकार प्रवृत्त हुए थे उसकी ठीक-ठीक व्याख्या हम रवीन्द्रनाथ की इस कविता में पाते है :

"आमी ढालिब करुणा-धारा,
आमी भाँगिब पाषाण-कारा,
आमी जगत् प्लाविया वेडाब गाहिया
आकुल पागल पारा।
केश एलाइया, फूल कुड़ाइया,
रामधनु-आँका पाखा उडाइया,
रविर किरणे हासी छडाइया,
दिब रे पराण ढाली।
शिखर होइते शिखरे छुटिब,
भूधर होइते भूधरे लुटिब,
हेसे खलखल गेये कलकल,
ताले-ताले दिब ताली।
तटिनी होइया जाइब बहिया
जाइब बहिया—जाइब बहिया
हृदयेर कथा कहिया-कहिया
गाहिया-गाहिया गान।
जतो देवो प्राण बहे जावे प्राण,
फुराबे ना आर प्राण।
एतो कथा आछे, एतो गान आछे,
एतो प्राण आछे मोर,
एतो सुख आछे, एतो साध आछे,
प्राण होये आछे भोर।

रवि-शशि भाँगि गाँथिब हार,
आकाश छाँकिया परिब बास।
साँझेर आकाशे करे गलागली,
अलस कनक जलद राग,
अभिभूत होये कनक-किरणे
राखिते पारे ना देहेर भार,
जेनरे विवसा होयेछे गोधूली,
पूरेब आधार वेणी पडे खुली,
पश्चिमेते पडे खसिया-खसिया
सोनार आँचल तार।
एतो सुख केथो, एतो रूप कोथा,
एतो खेला कोथा आछे,
यौवनेर वेगे जाइब बहिया
के जाने काहार काछे।
(ओरे) अगाध वासना असीम आशा,
जगत देखिते चाइ!
जागियाछे साध चराचरमय
प्लाविया बहिया जाइ!
जातो प्राण आछे बहिते पारी,
जतो काल आछे बहिते पारी,
जतो देश आछे डुबाते पारी,
तबे आर किबा चाइ,
पराणेर साध ताइ!

अर्थ :

"मैं करुणा की धारा ढालूंगा, पाषाण की बनी हुई कारा तोड़ दूँगा। मैं पागल की तरह व्याकुल होकर संसार को प्लावित करता हुआ गाता घूमूँगा।

अपने बालों को खोलकर, फूल चुनता हुआ, इन्द्र-धनुष-जैसे पखों से उड़कर, सूर्य की किरणों में अपनी हँसी बिखेरकर अपने प्राण ढालूँगा।

एक शिखर से दूसरे शिखर पर दौड़ूँगा। एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर लौटूँगा। खिल-खिल हँसता हुआ, कल-कल गाना हुआ, ताल-ताल पर तालियाँ दूँगा। नदी होकर बह जाऊँगा, बह जाऊँगा, हृदय की बाते कहते-कहते बह जाऊँगा, गान गाते-गाते बह जाऊँगा।

जितना ही मै प्राण दूँगा, उतना ही मेरे प्राण बहते जायँगे। प्राणों का फिर अन्त न होगा।

इतनी बातें है, इतने गान है, इतना मुझमें सुख है, इतनी साधें है कि मेरे प्राण मतवाले हो रहे है।

सूर्य और चन्द्र को चूर करके मै हार गूँथूँगा। आकाश खींचकर वस्त्र पहनूँगा। संध्या के आकाश में राशि-राशि अलस और सुवर्ण के रंग वाले मेघ परस्पर आलिंगन करेंगे। मानो स्वर्ण-किरणों से अभिभूत होकर वे अपने देह का भार न सँभाल सकते हों। जैसे गोधूलि विवश हो गई है, पूर्व की ओर उसका अन्धकार वेणी-सा खुलकर गिर रहा है और पश्चिम मे सोने का अंचल।

× × ×

इतना सुख कहाँ है ? इतना रूप कहाँ है ? इतनी क्रीड़ाएँ कहाँ है ? यौवन के वेग में मैं न जाने किसके पास बह जाऊँगा।

मेरे अन्दर अगाध वासना, असीम आशा है। मै संसार को देखना चाहता हूँ। ऐसी साध जग आई है कि मै इस चराचर जगत् को प्लावित करता हुआ बह जाऊँ।

मेरे अन्दर जितना प्राण है, मै उसे ढाल सकूँ, जितना काल है, सब वहन कर सकूँ, जितने देश है, सबको डुबा सकूँ, तो और मुझे क्या चाहिए ?—मेरे प्राणों की यही साध है।"

रवीन्द्रनाथ की उक्त कविता तुलसीदास की सही-सही व्याख्या है।

तुलसीदास ने अपनी प्रेरणा से उद्वेलित होकर अपनी जो सृष्टि बनाई है, आइये, उसके सौन्दर्य का कुछ दर्शन हम भी करें।

तुलसीदास के राम और सीता मनुष्य-मात्र के आदर्श है। कितने सौभाग्य की बात हो, यदि तुलसीदास का अन्तर्जगत् हमारा जगत् हो जाय और हम घर-घर में राम और सीता, भरत और लक्ष्मण, दशरथ और हनुमान को बसा हुआ पायें।

आइये, हम पहले तुलसीदास के राम को देखें। तुलसीदास स्वय राम के सम्बन्ध में हमें यह सूचना देते है :

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन तनु पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ॥
सिसुपन तें पितु मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम बिधु बदन रिसौहैं सपनेहु लखेउ न काउ॥

खेलत सग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ ।।
सिला साप संताप बिगत भई परसत पावन पाउ ।
दई सुगति सो न हेरि हरख हिय चरन छुए को पछिताउ ।।
भव धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ ।
छमि अपराध छमाइ पायँ परि, इतौ न अनत समाउ ।।
कह्यो राज, बन दियो नारि बस, गरि गलानि गे राउ ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यो निज तनु मरमु कुघाउ ।
कपि सेवा बस भये कनौडे, कहेउ पवनसुत आउ ।
देबे को न कछू रिनियाँ हौ, धनिक तू पत्र लिखाउ ।।
अपनाये सुग्रीव बिभीषन, तिन न तजेउ छल छाउ ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ ।
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस वरनत सुनत कहत फिरि गाउ ।।
समुझि-समुझि गुन-ग्राम राम के उर अनुराग बढाउ ।
तुलसिदास अनयास राम पद पइहैं प्रेम पसाउ ।।

तुलसीदास के कथन को हम राम के जीवन मे अक्षरशः सत्य पाते हैं ।

पिता के प्रति पुत्र में कैसी भक्ति होनी चाहिए, इसे हमें राम ही के शब्दों में सुनना चाहिए । चित्रकूट में भरत से राम ने कहा था :

निज कर खाल खैंचि या तनु ते जौ पितु पग पानही करावौ ।
होउँ न उऋन पिता दसरथ ते कैसे ताके वचन मेटि पति पावौ ।।

अहो, राम अपने ऊपर पितृ-भक्ति ही का भार नही लेते है, एक सत्पुत्र की तरह पिता के सम्मान की रक्षा का भी उनको ध्यान है ।

युवावस्था में राम को गृह-सुख छोड़ना पड़ा था । गृह के सुख और वन के दुःख दोनो के बीच में जब उनको खड़ा होना पड़ा तब भी वह विचलित नहीं होते । उनके इस मनोबल ने पिता के हृदय को चूर-चूर कर डाला । दशरथ कहते हैं :

राज देन कहि बोलि नारि बस मैं जो कह्यो बन जान ।
आयसु सिर धरि चले हरषि हिय कानन भवन समान ।।

× × ×

तिलक को बोल्यो दियो बन चौगुनो चित चाउ ।
हृदय दाड़िम ज्यो न बिदरयो समुझि सील सुभाउ ।।

सुनि सुमन्त ! कि आनि सुन्दर सुवन सहित जिआउ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन अमिय पिआउ॥

सच है, ऐसे पुत्र के वियोग में तो मृत्यु ही अमृत है।

राम के स्वभाव के सम्बन्ध मे सीता की साक्षी भी कम मधुर नहीं है। सीता हनुमान से कहती है :

आरज सुवन के तो दया दुवनहुँ पर,
मोहि सोच मोते सब बिधि नसानि।

राम को बन में घुमा-फिराकर वापस लाने के लिए दशरथ ने सुमन्त को भेजा था। सुमन्त को राम ने जो उत्तर दिया, वह स्वर्णाक्षरों मे लिखने योग्य है :

मन्त्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मग तुम्ह सब सोधा।
धरम न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।
मै सोइ धरम सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा।
संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू।

धर्म-पालन के लिए राम की यह दृढ़ता उनके स्वभाव की सच्ची झलक है।

राम मनुष्यों ही को नहीं, पशु-पक्षियों तक को भी अपने सुशील स्वभाव का सुख देते थे। राम के बन जाने पर उनके घोड़े कैसे विकल हुए थे, इसे कौशल्या के शब्दो में सुनिये :

आली ! हौ इन्हहि बुझावौ कैसे ?
बार-बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे।
अङ्ग लगाइ लिये बारे ते करुनामय सुत प्यारे।
लोचन सजल, सदा सोवत से, खान-पान बिसराये।
चितवत चौकि नाम सुनि सोचत राम सुरति उर आये॥

× × ×

राघौ ! एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावौ।
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज बार-बार चुचुकारे।
क्यो जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट बिसारे।
भरत सौगुनी सार करत है अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहि-दिन होत झाँवरे मनहु कमल हिम मारे।

सुनहु पथिक ! जौ राम मिलहि वन कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिन ते इन्हको बड़ो अँदेसो ।।

अत्यन्त सरल और सुकोमल स्वभाव होने पर भी राम कर्तव्य-पालन में कैसे दृढ़ थे, इसका प्रमाण हमे राम और भरत के संवाद में मिलता है, जो चित्रकूट मे हुआ था। भरत का अनुरोध अस्वीकार करते हुए राम ने अपने वंश की मर्यादा और कीर्ति की रक्षा के लिए यह कहा था :

तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक वेद बिद प्रेम प्रबीना।
जानहु तात तरनिकुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती।
समउ समाजु लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की।
तुम्हहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू।
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहौ अवसर अनुसारा।

× × ×

मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधरु सेसू।
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू।

धन्य है, वंश का अभिमान वंश और वंशज दोनों के गौरव की वस्तु है।

राम का एक सुन्दर चित्र हमें उस समय का देखने को मिलता है जब जटायु रावण से युद्ध करके घायल होकर मार्ग मे पड़ा था। राम उसको देखकर, उससे मिलकर, लक्ष्मण से कहते है :

सुनहु लखन ! खगपतिहि मिले बन मैं पितु मरन न जान्यौ।

फिर जटायु से कहते है :

मेरे जान तात कछू दिन जीजै।
देखिय आपु सुवन सेवा सुख मोहि पितु को सुख दीजै ।।

अर्थात् आप कुछ दिन और जीइये. पुत्र की तरह मुझसे सेवा लीजिये और मुझे पिता का सुख दीजिये।

कैसी आत्मीयता है ! तुलसीदास ने राम के हृदय को प्रेम और करुणा से सानकर बनाया था।

फिर वही राम एक वीर की भाँति जटायु से अपने स्वर्गीय पिता को संदेशा भेजते हैं :

सीता हरन तात जनि, कहेउ पिता सन जाय।
जौ मैं राम तो कुल सहित, कहिहि दसानन आय ।।

एक-एक शब्द में आत्म-विश्वास भरा है।

लक्ष्मण के घायल होने पर राम का एक और चित्र हमारे सामने आता

है। लक्ष्मण को शक्ति लगी है। वह मूर्छित पड़े हैं। उस दिन राम के मुख से लक्ष्मण के लिए उनका स्नेह बाहर आता है।

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहि जाहि जग बारहिं बारा।
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलहि न जगत सहोदर भ्राता।

× × ×

मो पै तौ न कछू ह्वै आई।
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई।
ता सँग हौ सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई॥
गिरि-कानन जैहैं साखामृग हौ पुनि अनुज सँघाती।
ह्वैहै कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती।

राम को सबसे बड़ी चिन्ता विभीषण की थी। अपने लिए तो निश्चिन्त थे कि लक्ष्मण की मृत्यु होने से वे भी शरीर त्याग देंगे। पर विभीषण के लिए उनकी की हुई प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी?

राम का एक चित्र हमें उस समय का देखने को मिलता है, जब वे अयोध्या मे वापस आते है। कैकेयी के कारण वे वन को गये थे। कैकेयी के मन में उसकी ग्लानि न रहने पाय, इसलिए राम नित्य उसे अपने शरीर में मर्म-स्थान में घाव की तरह सँभालते रहते थे। तुलसीदास कहते है:

कैकेयी जब लौ जियति रही।
मानी राम अधिक जननी तें जननिहुँ गँस न गही॥

× ×

ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरमु कुवाउ।

आगे हम राज-धर्म के पालन में राम के कठोर हृदय का दर्शन फिर करते हैं। अपवाद के कारण वे सीता को त्याग करने का विचार कर रहे है:

संकट सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराउ।
परिहरे बिनु जानकी नहि और अनघ उपाय।
पालिबे असिधार ब्रत प्रिय प्रेमपाल सुभाउ॥
निपट असमजसहु बिलसति मुख मनोहरताउ।
परम धीर धुरीन हृदय कि हर्ष बिसमय काउ॥

अन्तिम चित्र राजा राम का है। राजा राम स्वेच्छाचारिता से राज नही कर रहे थे, साधारण प्रजा के बीच मे बैठकर वे कहते थे:

जौ अनीति कछु भाखों भाई। तौ मोहि बरजेहु भय बिसराई।

ऐसे राजा के राज में प्रजा सुखी क्यों न हो? राम और राम-राज्य का

आदर्श हमारे सामने उपस्थित करके तुलसीदास ने अपने अन्तर्जगत् का जो दृश्य हमें दिखलाया है, वह श्लाघनीय ही नहीं, हमारे जगत् के लिए वाञ्छनीय और अनुकरणीय भी है।

अब आइये, हम सीता के जीवन का सौन्दर्य देखें। सीता ने राज-कुल में जन्म पाया, राज-कुल में उनका विवाह हुआ। मनुष्य-जीवन के लौकिक सुख का उन्होंने भोग प्रारम्भ ही किया था कि कर्तव्य-पालन की परीक्षा सामने आ जाती है। ऐसे अवसर पर सीता ने जो दृढ़ता दिखलाई है, उससे समस्त आर्य-जाति की स्त्रियों का सिर गर्व से ऊँचा उठ जाता है।

सीता के सुखों की बात हम नहीं करेंगे। वैसे सुख तो बहुत से राज-परिवारों में रानियों को प्राप्त हुए होंगे और अब भी हो रहे हैं, पर सीता की सच्ची मूर्ति हमें उनके दुःख में दिखाई पड़ती है। हम उसी की चर्चा करेंगे।

सीता प्रत्येक दिन प्रातःकाल उठकर, आलस्य छोड़कर, अपनी देवरानियों को लेकर सासुओं को प्रणाम करने जाती थीं। राम के वन जाने के दिन वे नहीं आईं, क्योंकि पति के साथ वन जाने की तैयारी में थीं। तब कौशल्या चिन्ता करती हैं :

लेन असासि सीय आगे करि मौपै सुतबधू न आई।

सास-पतोहू के बीच इस प्रकार का सौहार्द इस समय तो अलौकिक ही कहा जायगा।

वन जाते समय मार्ग में राम आगे चलते थे और सीता उनके पद-चिह्नों को बचाती हुई चलती थीं। पति के पद-चिह्न भी वे अपने पैर से छूना नहीं चाहती थीं। रास्ते की ग्रामीण स्त्रियों ने उस पर लक्ष्य किया था, और उन्हें आश्चर्य हुआ था। वे बेचारी शिष्ट-समाज के नियम जानती ही न थीं

सॉवर कुँअर के बराइ के चरन चिह्न
बधू पग धरति कहा धौं जिय जानिकै।

सीता का एक सुन्दर चित्र हमारे सामने उस समय आता है, जब राम वन जाते समय गंगा पार करके नाव से उतरकर तीर पर खड़े होते हैं और एक सभ्य पुरुष की तरह केवट को उतराई देने के लिए मन में विचार करते हैं। सीता, जो स्वयं इस औचित्य से परिचित थीं, अपने सुसभ्य पति के मन की बात ताड़ जाती हैं और जब पति के पास उतराई देने के लिए कुछ नहीं था, अपनी मणि-जटित अँगूठी प्रसन्न-मन से केवट को देने के लिए उतारती हैं :

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि दरी मुँमन मुदित उतारी॥

पति के साथ पत्नी की एकात्मकता का यह एक मनोहर दृश्य है।

सीता के स्वभाव का एक मनोमुग्धकर दर्शन हमें राम के शब्दों में मिलता है, जब पंचवटी में राम अपनी कुटी को सीता से सूनी पाकर उनका स्मरण करते हैं :

उठी न सलिल लिये प्रेम प्रमुदित हिये प्रिया न पुलकि प्रिय बचन कहे।

× ×

तरु जे जानकी लाये, ज्याये हरि करि कपि, हेरैं न हुँकरि।

जे सुक सारिका पाले, मातु ज्यों ललकि लाले, तेऊ न पढत।

इससे मालूम होता है सुगृहिणी सीता ने वन की कुटी को राज-भवन की तरह सुखदायक बना लिया था। वे राम के लिए भार-स्वरूपा नहीं बन गई थीं, बल्कि उनके मन को सदा सहारा देने के लिए प्रयत्नशील रहती थीं। राम जब बाहर से आते थे, तब वे उनके हाथ-मुँह धुलाने के लिए जल लेकर आगे आती थीं और मधुर वचनों से उनका श्रम दूर करती थीं। उन्होंने कुटी के आस-पास वृक्ष लगाये थे, मनोरंजन के लिए जानवर जिला रखे थे, तोता और मैना पाले थे और माता की तरह ललककर वे उनकी सेवा किया करती थीं। अपनी वन की गृहस्थी को उन्होंने सुखमय बना लिया था। अपने मन के सौन्दर्य को उन्होंने कुटी के आस-पास बिखेर दिया था।

वे केवल सरल और सुख में पली हुई भोली-भाली राज-कन्या ही नहीं थीं, समय-चतुर भी थीं। रावण जब उनको रथ पर बैठाकर आकाश-मार्ग से लिये जा रहा था, तब वे अपने कपड़े फाड़-फाड़कर और गहने निकाल-निकालकर नीचे फेंकती जाती थीं, जिससे राम को उनके जाने का मार्ग मिलता जाय। विपत्ति के समय में भी वे अपने पति और देवर की चिन्ता के निवारण का मार्ग खोजती जाती थीं।

सीता ने लक्ष्मण को उस समय कुछ अप्रिय वचन कहे थे, जब राम मारीच को मारने गये थे और मारीच ने लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा था। सीता के चित्त को अपनी यह भूल सदा पीड़ा देती रही। हनुमान से उन्होंने अशोक-वाटिका में मन का यह दुःख प्रकट भी किया था। उन्होंने पूछा :

रोष छमि सधि करत कबहुँ ललित लछिमनलाल।

ऐसी कोमल स्वभाव वाली सीता रावण के सम्मुख सिंहिनी की तरह हो जाती है। उस समय के उनके वचन आर्य-ललनाओं की एक खास सम्पत्ति है।

सीता ने रावण को जो उत्तर दिया, उसमें उनकी निर्भयता सूर्य की तरह चमक रही है :

अधम निलज्ज लाज नहिं तोही। सठ सूने हरि आनेसि मोही।
स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करिकर सम दसकधर।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।

एक प्रबल प्रतापी शत्रु को ऐसा उत्तर देना सहज आत्मबल का काम नहीं है।

हनुमान जब सीता से विदा लेने जाते हैं, तब सीता फिर अपना एक सुन्दर चित्र हमारे सामने रखती हैं। राम के वियोग-व्यथित मन को कहीं और पीड़ा न पहुँचे, इससे सीता कुछ संदेशा नहीं कहतीं :

कपि के चलत सिय को मनु गहबरि होइ आयो।
कहन चह्यो सँदेस नहि कह्यो पिय के जिय की जानि,
हृदय दुसह दु:ख दुरायो।

कैसा अद्भुत प्रेम है ! अपने प्रियतम को किसी तरह से मेरी ओर से कष्ट न पहुँचे, यह ध्यान भी कितना मधुर है !

सीता ने हनुमान से प्रियतम के प्रेम की जो परिभाषा कही है, वह सच्चे प्रेम वाले हृदय ही से निकल सकती है :

पीतम विरह तौ सनेह सरबसु।

सीता के प्रेम की सबसे कठिन परीक्षा उनकी अग्नि-परीक्षा है। उस समय भी वे विचलित नहीं होतीं।

तुलसीदास कहते हैं :

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता।
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष कछु भय नहि तेही।
जौ मन बच क्रम मम उर माही। तजि रघुबीर आन गति नाही।
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहँ होहु श्रीखंड समाना।

प्रेम का ऐसा सुन्दर दृश्य तुलसीदास के अंतर्जगत् की बड़ी बहुमूल्य वस्तु है।

लंका से आकर सीता गृह-स्वामिनी बनती हैं। उस समय की उनकी दिनचर्या उनके चरित्र को और भी उज्ज्वल कर देती है

तुलसीदास कहते हैं :

जद्यपि गृह सेवक-सेवकिनी। बिपुल सकल सेवा बिधि गुनी।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ । सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ ।
कौसल्यादि सासु गृह माही । सेवइ सबन्हि मान मद नाही ।

फिर भी सीता के दुर्भाग्य का अन्त नहीं हुआ । राम प्रजा में फैले हुए अपवाद को दूर करने के लिए सीता का त्याग करते हैं । राम की आज्ञा से लक्ष्मण सीता को वन में छोड़कर चलने लगते हैं, तब सीता कहती है :

लखनलाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि ।
पालबी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि ।

ऐसे संकट में भी जिसका धैर्य स्थिर रहा, उस सीता को धन्य है ! उस समय का करुण-दृश्य वाल्मीकि-जैसे मुनि को भी रुला देने में समर्थ था :

सुनत सीता बचन मोचत सकल लोचन बारि ।
वालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि ॥

वाल्मीकि के आश्रम में सीता का समय कैसे कटता था, यह जानने की इच्छा स्वाभाविक ही है । तुलसीदास कहते हैं :

निरखि बाल बिनोद तुलसी जाति बासर बीति ।
पिय चरित सिय चित चितेरो लिखत नित हित भीति ॥

+ + +

दुखी सिय पिय बिरह तुलसी सुखी सुत सुख पाइ ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यो सकुचाइ ॥

सीता-जैसा दुःख संसार में और किसी स्त्री ने सहन किया है, यह हमें इतिहास में नहीं मिलता । दुःख ही सीता का इतिहास है, और वही स्त्री-जाति को कल्याण-पथ पर ले जाने वाला भी है ।

इस प्रकार तुलसीदास का अन्तर्जगत् अनेक चमत्कारों से जगमगा रहा है । तुलसीदास का अन्तिम लक्ष्य उच्चकोटि का समाज उत्पन्न करना है, जिसमें राम-जैसे पुरुष, सीता-जैसी स्त्रियाँ, लक्ष्मण और भरत-जैसे भाई और हनुमान-जैसे सच्चे विश्वास-पात्र सेवक हों । सारा राम-चरित इसी भावना को लेकर निर्माण किया गया है ।

८

तुलसीदास और देवता

तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। जहाँ-कहीं उन्हें अवसर मिला है, राम का यश गाने में उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी। रामचरित-वर्णन करते-करते जहाँ कहीं उन्हें शंका-सन्देह की गुंजाइश समझ पड़ी, राम के वकील की तरह वह, भ्रम-निवारण के लिए, बिना कुछ कहे आगे नहो बढ़े। राम अपने विमुखों को भले ही क्षमा कर दे, पर तुलसीदास ने राम का पक्ष लेकर राम के विरोधियों को खोटी-खरी सुनाई है, उन्हें खूब डाँटा-डपटा है। भक्त हो ठहरे, राम का विरोध कैसे सह सकते थे? 'रामचरितमानस' मे प्रारंभ से लेकर अन्त तक उन्होंने स्त्रियो को सहज, जड़, अज्ञ और दुर्गुणो की राशि बतलाया है। स्त्रियों से वह इतना क्यों चिढ़े थे? क्या उनकी स्त्री ने उन्हें घर से निकाल दिया था, इसलिए? उसके लिए तो वह परम कृतज्ञ की तरह कहते हैं :

हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस।

फिर क्या बात थी?

अपने विरोधियों की तुलसीदास ने सदा उपेक्षा की है। कभी-कभी अत्यधिक कष्ट पाकर ही उन्होंने 'मानस', 'विनय-पत्रिका', 'गीतावली' और 'दोहावली' में राम, शिव और हनुमान से प्रार्थना की है कि मुझे लोग नाहक सता रहे है, आप मेरी रक्षा कीजिए। अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों के लिए उन्होंने कभी किसी के अनिष्ट की कामना नहीं की। करते भी क्यो? शरीर और मन, दोनों को तो वह राम को समर्पण कर चुके थे। उनका अपना था ही क्या, जिसके लिए वे सांसारिक जनो से मार्चा लेते फिरते? राम ही उनके तन, मन, धन थे। राम ही को वह सर्वत्र व्यापक देखते थे। देवता, दानव, यक्ष, नर, नाग, किन्नर, गन्धर्व सबसे वह राम को बड़ा समझते थे। राम की ईश्वरता मे जहाँ किसी को कुछ सन्देह हुआ, तुलसीदास ने उसकी दुर्गति के लिए कोई कल्पना नहीं छोड़ी। राम से जिसने-जिसने ज़रा भी

विरोध प्रकट किया, वह देवता हो या मनुष्य, स्त्री हो या पुरुष, तुलसीदास ने उसको दण्ड देने मे कुछ भी रिआयत नहीं की। राम-विमुख के लिए उनके दिल में मुरौवत बिलकुल नहीं थी। देवताओं ने अपने शत्रु राक्षसो के विध्वंस के लिए राम को वन भेजने का षड्यन्त्र रचा था, और वह षड्यन्त्र स्त्री-जाति—सरस्वती, मथरा और कैकेयी द्वारा सफल हुआ था। क्या यही कारण तो नहीं था, जिसने तुलसीदास को स्त्री-जाति का विरोधी बना दिया?

अब रहे देवता। देवताओं का जैसा परिहास तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' मे किया है, वैसा और किसी कवि ने आज तक किसी जाति-विशेष या व्यक्ति-विशेष का किसी काव्य में किया है या नहीं, यह मैंने नही देखा। कवि की हैसियत से तुलसीदास को राम के अनुकूल और प्रतिकूल, सबकी बातें कहनी पड़ी है। पर जहाँ राम के विरुद्ध कुछ कहने का प्रसंग आया है, वहाँ उन्होंने बहुत सँभलकर पैर रखा है। वह सदा चौकन्ने दिखाई पड़ते है कि कोई बात राम की शान के विरुद्ध न निकल जाय। पर जहाँ अन्य देवताओ के विरुद्ध कुछ कहना पड़ा है, वहाँ उन्होंने बे-खटके लगाम ढीली कर दी है। जहाँ-जहाँ मौका मिला है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और नारद तक का परिहास करने मे वह नहीं चूके। यह क्या देवताओं से राम को कष्ट पहुँचाने का बदला नहीं है?

सारे 'रामचरितमानस' मे तुलसीदास ने देवताओं को केवल दो काम सौप रखे है—दुन्दुभि बजाना और फूल बरसाना। जहाँ कोई अद्भुत घटना हुई, चाहे जंगल हो या बस्ती, घर के भीतर हो या बाहर, देवता झट फूल बरसाने लगते और दुन्दुभि बजा देते थे। मानो उनकी यह ड्यूटी थी कि वे दुन्दुभि और फूलों की झोली लिये घूमते रहें, और जहाँ जरूरत समझें, दुन्दुभि बजा-कर फूल बरसाने लगें। कही-कहीं देवताओं की स्त्रियों को तुलसीदास ने नचाया और गवाया भी है। देवताओं का कोई रहस्य, चाहे वह भला हो या बुरा, खोलने में तुलसीदास ने कभी असावधानी नहीं की। राम के चरित मे वह कभी दोष नहीं देखते थे। साधारण मनुष्य राम के किसी कार्य को दोष-युक्त न समझ लें, इसके लिए तुलसीदास बिना कुछ समझाए-बुझाए आगे नहीं बढ़ते थे। पर अन्य देवताओं के दोषों का उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया। लीजिए, पहले-पहल विष्णु ही की करतूत सुनिये। नारद का अभिमान दूर करने के लिए विष्णु भगवान् ने एक रचना रची। उससे नारद को बड़ा विक्षोभ हुआ। भेंट होने पर नारद ने विष्णु भगवान् की अच्छी खबर ली। उन्होंने कहा :

पर संपदा सकहु नहि देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिसेखी।
मथत सिन्धु रुद्रहि बौरायेहु। सुरन्ह प्रेरि विष-पान करायेहु।
असुर सुरा विष सकरहि, आप रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट व्यवहार॥
परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई।
भलेहि मद मदहि भल करहु। बिसमय हरष न हिय कछु धरहू।
डहँकि डहँकि परिचेहू सब काहू। अति असकि मन सदा उछाहू।
करम सुभासुभ तुम्हहिं न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहू साधा।
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा।

तुलसीदास ने यहाँ नारद के मुँह से विष्णु की पोल खुलवाई है, तो एक अन्य स्थान पर सप्तर्षियों के मुँह से नारद का भण्डाफोड़ कराया है। नारद इधर की उधर लगाने में बड़े प्रवीण थे। उनकी सम्मति से उमा ने शिव के लिए नारद के विरुद्ध उन्हें ऐसा समझाया :

सुनत बचन बिहँसे रिषय, गिरिसभव तव देह।
नारद कर उपदेस सुनि, कहहु बसेउ को गेह॥
दच्छसुतन्ह उपदेसिन्हि जाई। तिन फिरि भवन न देखा आई।
चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।
नारदसिष जे सुनहि नर-नारी। अवसि होहिं तजि भवन भिखारी।
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा।

लगे हाथों सप्तर्षियों ने शिवजी का भी रूप-वर्णन कर दिया :

निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगम्बर ब्याली।
कहहु कवन सुख अस बर पाये। भल भूलिहु ठग के बौराये।
पच कहे सिव सती बिबाही। मुनि अवडेरि मरायेन्हि ताही।
अब सुख सोवत सोचु नहि, भीख माँगि भव खाहि।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहि॥

शिवजी की बरात में भी शिव-स्वरूप का बड़ा उपहास किया गया है :

सिवहि सभुगन करहि सिगारा। जटा मुकुट अहि मौर सँवारा।
कुण्डल ककन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला।
ससि ललाट सुन्दर सिर गगा। नयन तीनि उपवीत भुजगा।
गरल कठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला।
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढि बाजहि बाजा।
देखि सिवहि सुर तिय मुसुकाही। बर लायक दुलहिन जग नाही।

विष्णु बिरंचि आदि सुर ब्राता। चढ़ि-चढ़ि बाहन चले बराता।
सुर-समाज सब भाँति अनूपा। नहि बरात दूलह अनुरूपा।
बिष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग-बिलग होइ चलहु सब, निज-निज सहित समाज॥
बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करइहउ पर पुर जाई।
बिष्णु-बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज-निज सेन सहित बिलगाने।
मन-ही-मन महेस मुसुकाही। हरि के ब्यंग बचन नहि जाही।
बर बौराह बरद असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा।

इन्द्र पर तुलसीदास विशेष कृपा रखते थे। जहाँ-कहीं उनकी चर्चा का अवसर उन्हें मिला, वहीं उन्होंने उसकी जी भरकर भर्त्सना की है। नारद जब तप कर रहे थे, तब इन्द्र ने उनको तप से भ्रष्ट करने के लिए काम को भेजा। इस पर क्रुद्ध होकर तुलसीदास कहते हैं :

जे कामी लोलुप जग माही। कुटिल काक इव सबहि डराही॥

× × ×

सूख हाड़ लेइ भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जानि जड, तिमि सुरपतिहि न लाज॥

परशुराम भी विष्णु के अवतारों में से एक थे। पर उन्होंने धनुष-भंग के अवसर पर राम के लिए कुछ कटु वाक्य कहे। राम-भक्त तुलसीदास अपने आराध्य देव का यह अपमान न सह सके। उन्होंने मौका मिलते ही लक्ष्मण के द्वारा परशुराम की भी पूरी फ़जीहत करा डाली। यह प्रसग इतना लम्बा-चौड़ा है कि यहाँ स्थानाभाव से सब नहीं दिया जा सकता और बिना सब उद्धृत किये उसका आनन्द नहीं मिल सकता। परशुराम- लक्ष्मण-संवाद बड़ा रोचक है। उसे 'रामचरितमानस' ही में पढ़ना चाहिए।

शिव के पाँच मुख थे। प्रत्येक मुख पर तीन नेत्र थे। इस तरह सब पन्द्रह नेत्र हुए। ब्रह्मा के चार मुख और आठ नेत्र थे। कार्तिकेय के छः मुख और बारह नेत्र तथा इन्द्र के एक हजार नेत्र थे। देवताओं की यह विचित्र बनावट देखकर तुलसीदास से बिना छेड़-छाड़ किये नहीं रहा गया। राम-विवाह के अवसर पर उन्होंने इन्द्र आदि को इकट्ठा ही पकड़ लिया। राम की बारात जा रही है। राम घोड़े पर सवार है। उस अवसर की बात है :

जेहि बर बाजि राम असवारा। तेहि सारदहु न बरनइ पारा।
सकर राम रूप अनुरागे। नयन पचदस अतिप्रिय लागे।
हरि हित सहित राम जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे।

निरखि राम छबि बिधि हरषाने । आठहि नयन जानि पछिताने ।
सुर सेनप उर बहुत उछाहू । बिधि ते डेवढ सुलोचन लाहू ।
रामहि चितव सुरेस सुजाना । गौतम साप परम हित माना ।
देव सकल सुरपतिहि सिहाही । आजु पुरन्दर सम कोउ नाही ।

राम को युवराज-पद देने की चर्चा चल रही थी । हाट-बाट, घर, गली, अर्थात् सर्वत्र इस उत्सव के सम्बन्ध की चर्चा थी । अयोध्या मे आनन्द उमड़ रहा था । पर देवता विघ्न डालना चाहते थे । तुलसीदास रुष्ट होकर उन्हें कुचाली कहकर चोर से उसकी उपमा देते है :

सकल कहहि कब होइहि काली । बिघन मनावहि देव कुचाली ।
तिन्हहि सुहाइ न अवध बधावा । चोरहि चदिनि राति न भावा ।

देवताओं ने सरस्वती से बड़ी विनती की कि हे माता ! कोई ऐसी युक्ति करो, जिससे राज्य छोड़कर राम वन जायें और देवताओं का कार्य सिद्ध हो । सरस्वती पहले अस्वीकार करती थीं । पर :

सारद बोलि विनय सुर करही । बारहि-बार पॉय लै परही ।
बार-बार गहि चरन सँकोची । चली बिचारि बिबुध मति पोची ।
ऊँच निवास नीच करतूती । देखि न सकहि पराइ बिभूती ।

देवता बड़े खुशामदी और चालाक थे । राम को उत्साहित करने के लिए वे राम की प्रशंसा सुनकर फूल बरसाते और दुन्दुभि बजाते थे । राम ने जब चित्रकूट को रहने के लिए पसन्द किया, तब इन्द्र आदि देवता वेश बदलकर, कोल-किरात की सूरत बनाकर आये, और उन्होंने राम के लिए झोंपड़े खड़े कर दिए । अपने मतलब के लिए इन्द्र को झोंपड़ा छाने मे कुछ शर्म न आई । देवताओं ने सूरत क्यों बदली ? एक कारण तो यह जान पड़ता है कि राम देवताओं को छप्पर छाने आदि का छोटा काम न करने देते । पर राम तो अन्तर्यामी थे । देवताओं का छद्म वेश उनसे छिपा थोड़े ही रहा होगा ? दूसरा कारण रावण को धोखा देना था । देवता रावण से बहुत डरते थे । रावण को कहीं मालूम हो जाता कि देवता राक्षसों के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे है, उन्हीं की प्रेरणा से राम वन को आये और अब वे उनके लिए सब सुभीते करते फिरते है, तो वह उन्हें अच्छी तरह दण्ड देता । फिर देवताओं को यह संदेह भी तो था कि राम रावण को मार सकेंगे या नहीं । इसी से वे प्रकट रूप में राम की सहायता नहीं करते थे । रावण यदि कभी देवताओं पर यह दोष लगाता कि उन्होंने उसके विरुद्ध राम की सहायता की, देवता साफ़-साफ़ इन्कार कर सकते थे ।

भरत राम को मनाने के लिए चित्रकूट जा रहे हैं। उनके प्रभाव से ·

भइ मृदु महि मग मगलमूला।
किये जाहि छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मग भयेहु न राम कहँ, जस भा भरतहि जात।।

यह प्रभाव देवताओं को असह्य हो गया। देवताओं के राजा बड़े तिकडमी थे। स्वार्थ-साधन के लिए छल-कपट करना उनके बाएँ हाथ का खेल था :

देखि प्रभाव सुरेसहि सोचू। जग भल भलेहि पोच कहँ पोचू।
गुरु सन कहेउ करिय प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेट न होई।
राम सकोची प्रेम बस, भरत सुप्रेम पयोधि।
बनी बात बिगरन चहत, करिय जतन छल सोधि।
बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन बिनु लोचन जाने।
सदा राम सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी।
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई।
स्वारथ बिबस बिकल तुम होहू। भरत दोस नहि राउर मोहू।

गुरु की बात सुनकर इन्द्र को कुछ ढाढ़स हुआ। वह फिर खुशामद करने लगा :

बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ।

राम को लौटाने मे भरत के प्रयत्न को निष्फल करने की इच्छा से इन्द्र ने बड़े-बड़े प्रपंच रचे। तुलसीदास ने इन्द्र को फटकारा भी खूब।

लका-कांड में देवताओं का रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पहले वे सदा शंकित रहते थे कि राम से राक्षसों का नाश हो सकेगा या नहीं। इसीसे वे खुल्लम-खुल्ला, प्रकट रूप में राम की सहायता नहीं करते थे। हाँ, राम के लिए सब सुभीते अवश्य कर देते थे। राम-रावण के युद्ध के समय रावण को यह सन्देह हुआ कि देवता राम की मदद कर रहे है, क्योंकि राम के बाणों से जब रावण व्याकुल हो जाता था, तब देवता राम पर फूल बरसाते और दुन्दुभि बजाते थे। इससे रावण बड़ा कुढ़ता था।

ऋषियों-मुनियों की मुलाकात के अवसर पर राम जब राक्षसों के विध्वंस की प्रतिज्ञा करते थे, तब देवता फूल बरसाते और दुन्दुभि बजा देते। लंका मे राम ने जब रावण के कुटुम्बियों को मार डाला, तब देवताओं को कुछ तसल्ली हुई। उनको विश्वास हुआ कि रावण को मार सकते हैं। अब वे निर्भय होकर राम की सहायता करने लगे :

रावन रथी बिरथ रघुबीरा। देखि भई देवन उर पीरा।
देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उर उपजा अति छोभ बिसेखा।
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लइ आवा।

अब तक देवताओं के उर मे पीड़ा नहीं हुई थी। जब रावण बेचारा अकेला रह गया, तब स्वार्थी सुरों ने समझा कि अब राम को रथ दे दो, भय की बात नहीं।

रावण की माया के प्रभाव से जब असंख्य रावण युद्ध में प्रवृत्त हो गए, तब :

डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई।
सब सुर जिते एक दसकन्धर। अब बहु भये तकहु गिरिकदर।

पर राम ने जब रावण की माया नष्ट कर डाली, तब :

रावन एक देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे।

रावण ने जब देखा कि देवगण राम की प्रशंसा कर रहे हैं, तब वह बहुत चिढ़ा और यह कहता हुआ झपटा :

सठहु सदा तुम मोर मरायल। कहि अस कोपि गगन पथ धायल।
हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरे आगे।

इस प्रकार रामायण मे प्रायः सर्वत्र देवताओं को निकम्मा, डरपोक,स्वार्थी, और खुशामदी दिखाया गया है। देवता अपना मतलब निकालने में सब तरह का छल, अंग्रेजी भाषा में पॉलिसी, कर सकते थे। तुलसीदास ने देवताओं का चित्र अच्छा नहीं दिखलाया।

९

तुलसीदास और स्त्री-जाति

आजकल कुछ समाज-सुधारकों और पाश्चात्य-शिक्षा के प्रभाव से जगमगाती हुई युवतियों ने यह आन्दोलन शुरू किया है कि तुलसीदास नारी-जाति को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। और प्रमाण मे उन्होंने उनकी एक चौपाई को विशेष रूप से जनता के सामने रखा है। वह चौपाई यह है :

ढ़ोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।

देवियाँ इसे अपमान समझती है और बदले मे वे तुलसीदास को भी खोटी-खरी सुना बैठती है। इसका एक यह दुष्परिणाम तो उन्हें हाथों-हाथ मिल गया कि वे तुलसीदास से मिलने वाले अन्य लाभों से वे वंचित हो गईं। दूसरे कुछ अंशों मे उनके अविवेक का भी दिग्दर्शन हो गया। यह अविवेक कवि के साथ न्याय करने में हुआ है। कवि को तो नाना रूप धारण करने पड़ते है। वह रावण के मुख मे बैठकर राम को भी गालियाँ देता है और राम के मुख में बैठकर सज्जनों और दुष्टों के लक्षण भी गिनाता है। वह सूर्पणखा के मुख से बोलता है और अनुसूया के भी। वही लक्ष्मण भी बन जाता है, और परशुराम भी। इन कामों मे कवि का अपना भाग इतना ही होता है कि वह एक प्राञ्जल भाषा में, वक्ता के कथन को अच्छी तरह व्यक्त कर देता है। यहाँ यह तर्क किया जा सकता है कि कवि जो कहलाना चाहता है, वही कहलाता है, और जो उसके सिद्धान्त के विरुद्ध होता है, उसे छोड़ देता है। यह सच है; पर ऐसा तर्क उपस्थित होने पर प्रसंग देखना चाहिए कि कौन सी बात किस अवसर पर कही गई है और वह कहाँ तक वहाँ स्वाभाविक है।

'ढोल-गँवार' वाली चौपाई को लीजिये। उसे समुद्र ने राम से कहा था, जब राम ने उससे पार उतरने का रास्ता माँगा था। समुद्र ने अपनी तुलना में कई पदार्थों के नाम गिना दिये थे, जिनके साथ एक सा व्यवहार किया जाता है और बोल-चाल में यह स्वाभाविक भी है। और यह तुलसीदास के दिमाग की उपज है भी नहीं; यह तो 'गर्ग-संहिता' के इस श्लोक का अनुवाद है :

दुर्जना शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहा स्त्रियः ।
ताडिता मार्दवं यान्ति न ते सत्कार भाजनम् ।।

न्याय की दृष्टि से मूल अपराधी गर्ग मुनि को मानना चाहिए। पर वे संस्कृत भाषा की आड़ में बैठे है। उनको कोई छू नहीं सकता। तुलसीदास का अपराध यही है कि उन्होंने गर्गमुनि के उक्त वचन को उस भाषा में कर दिया, जिसे समाज-सुधार के लिए चिंतित देव और देवियाँ समझ सकते है।

संस्कृत में स्त्रियों के पक्ष-विपक्ष मे अनेक श्लोक मिलते है। कुछ विपक्ष के श्लोक लीजिये—

एक संस्कृत-कवि ने तो किसी स्त्री को सती माना ही नहीं·

'विष्णु पुराण' में लिखा है :

योषितो नावमन्येत न चासां विश्वसेद् बुधः ।

'बुद्धिमान् पुरुष स्त्रियों का अपमान न करें और उनका विश्वास भी न करे। अर्थात् विश्वास के कामों में उनको पड़ने ही न दें।'

अश्वघोष ने लिखा है :

वचनेन हरन्ति वर्णना निशितेन प्रहरन्ति चेतसा ।
मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदये हालाहल महद्विषम् ।।

'स्त्रियाँ मधुर वचनों से पुरुष का चित्त हरण कर लेती है, पर क्रूर स्वभाव से उनको हानि पहुँचाती है। उनके वचन में मधु और हृदय में भयंकर हलाहल विष होता है।'

चाणक्य का आदेश है :

विनयं राजपुत्रेभ्यः पडितेभ्यः सुभाषितम् ।
अनृत द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत कैतवम् ।।

'राजकुमारों से विनय, पंडितों से मीठा वचन, जुआरियों से झूठ और स्त्री से छल सीखना चाहिए।'

कल्हण ने 'राजतरंगिणी' में लिखा है :

निसर्गतरला नार्य. को नियंत्रयितुं क्षमः ।

'स्त्रियाँ स्वभाव ही से विलासिनी होती है, उन्हें कौन नियंत्रण मे रख सकता है ?'

तुलसीदास के पहले और पीछे के संतों ने भी तो स्त्रियों के विपक्ष में बहुत-कुछ कहा है :

कबीर साहब कहते है :

छोटी-मोटी कामिनी, सब ही बिष की बेलि ।
बैरी मारै दॉव दै, ये मारै हँसि खेलि ।।

जहाँ जराई सुन्दरी, तू जनि जाइ कबीर।
उडिके भसम जो लागसी, सूना होय सरीर॥
× × ×
सब सोने की सुन्दरी, आवै बास सुबास।
जो जननी होय आपनी, तऊ न बैठे पास॥
× × ×
नारी की झाई परत, अधा होत भुजग।
कबीर तिनकी कौन गति, जो नित नारी-संग॥
× × ×
नैनो काजर पारि कै, गाढे बाँधे केस।
हाथों मेहँदी लाइकै, बाघिनि खाया देस॥

दादू साहब कहते हैं :

नारी नैन न देखिये, मुख सूँ नॉव न लेइ।
कानौ कामिरिए जिरए सुरणै, यहु भरए जाए न देइ॥

पलटू साहब ने तो बड़ा ही भय प्रकट किया है। वे कहते हैं :

मुये सिह की खाल को, हस्ती देखि डराय।
असिउ बरिस की बूढिको, पलटू ना पतियाय॥

हिंदी ही में नहीं, गुजराती में भी स्त्रियों के विपक्ष में विषैले वचन मिलते हैं। ब्रह्मानंद स्वामी कहते हैं :

बिष की भोमी, बीज विष, बिष बेली बिस्तार।
बिष डाली विष पत्र फल, नखसिख विषतन नार॥

मेरा खयाल है, अन्य भारतीय भाषाओं में भी संतों के स्त्री-विरोधी पद मिलते हैं। संतों के वचन तो प्रायः उसी भाषा में है, जो तुलसीदास की है; पर तुलसीदास का विरोध मुख्यतः इस कारण से किया जा रहा है कि उनका प्रचार अधिक है और प्रभाव भी। उसी प्रभाव से सुधार-प्रिय स्त्री-पुरुष आशंकित हो उठे हैं।

तुलसीदास के 'रामचरितमानस' मे ऐसे दोहे और चौपाइयाँ भी हैं, जो स्पष्टतः कवि के निजी विचारों के द्योतक हैं और स्त्रियों के प्रति घृणा सूचक है। यह कवि पर संत-मत का प्रभाव सूचित करता है। तुलसीदास की पहली रचना 'वैराग्य-संदीपनी' मानी जाती है। उससे यह प्रकट होता है कि प्रारम्भ में उनका झुकाव संत-मत की ओर था, और स्त्री-विरोधी भाव उन्होंने उसी से लिये हैं। मेरा निजी मत तो यह है कि उन्होंने अपने ही नहीं, बल्कि अपने

समय के हिन्दू-समाज के सब अंगों मे व्याप्त विचार-धाराओं को 'रामचरित-मानस' मे एक केन्द्र पर लाने का एक प्रयोग किया है। उसमें शैव, वैष्णव, वेदान्ती, संत, नीति-शास्त्री और स्मृतिकार आदि सभी के विचारों का संकलन किया गया है। जिसका जो विषय प्रिय हो, वह उसमें से चुन ले सकता है। तुलसीदास का तो एक ही विषय है कि सबको घेर-घारकर राम-भक्ति के एक केन्द्र पर ले आना। अतएव जहाँ उन्होंने नारी-निंदा की है, वहाँ यह समझना चाहिए कि वह संत-मतानुयायियों के लिए है। सबके लिए नहीं। नारी-निंदा संतों के लिए है, गृहस्थों के लिए नहीं। उत्सवों के प्रसंगों में स्त्रियों का वर्णन उन्होंने जिस सरसता से किया है उनसे तो उल्टा यह कहा जा सकता है कि वे बड़े रसिक स्वभाव के थे।

यहाँ हम उनके स्त्री-विरोधी वचनों को एकत्र करके अपने पाठकों के सम्मुख रखना चाहते है।

'रामचरितमानस' के प्रारम्भ ही से स्त्रियों के सम्बन्ध में व्यंग्य-वचन मिलने लगते हैं। सती को जब राम के ईश्वर होने मे सन्देह हुआ था, तब शिवजी ने कहा था :

सुनहि सती तब नारि सुभाऊ।
ससय अस न धरिउ उर काऊ॥

भाव यह है कि स्त्रियाँ बड़े शक्की स्वभाव की होती है।

सती ने राम की परीक्षा लेने वाली बात शिवजी से छिपा ली थी। इस पर तुलसीदास का कहना है कि :

सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ।
देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥

सती के मुख से भी नारी-जाति की जड़ता और अज्ञता की स्वीकृति दिलाई गई है :

सती हृदय अनुमान किय, सबु जानेउ सर्वज्ञ।
कीन्ह कपटु मै सभुसन, नारि सहज जड अज्ञ॥

(बाल-कांड)

सती ने पिता के यज्ञ में शरीर त्यागकर सती-धर्म का परमोज्ज्वल उदाहरण संसार के सामने रखा, फिर भी स्त्री-जाति के अयोग्य होने का भ्रम इनको बना ही रहा। शिवजी से राम-चरित का वर्णन सुनने की लालसा प्रकट करते हुए उन्होंने स्त्री-मात्र के लिए अपना यह मत व्यक्त किया है :

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी।
दासी मन क्रम वचन तुम्हारी॥

(बाल-कांड)

राम के वन जाने के समय अयोध्या के नर-नारियों ने भी कैकेयी का हठ देखकर स्त्री-स्वभाव की कड़ी आलोचना की है :

सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ।
सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिब बसक गहि जाई।
जानि न जाइ नारि गति भाई॥

(अयोध्या-कांड)

इसी के आगे प्रबला अबला का व्यंग्यात्मक यशोगान भी है :—

काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ।

(अयोध्या-कांड)

भरत से भी कैकेयी की भर्त्सना कराते हुए स्त्री-मात्र को सकल कपट, अघ और अवगुणों की खान कहलाया गया है :

बिधिहु न नारि हृदय गति जानी।
सकल कपट अघ अवगुन खानी॥

(अयोध्या-कांड)

आगे चलकर गाँव की गँवारिनों ने अपनी निन्दा स्वयं की है ·

कहँ हम लोक वेद विधि हीनी।
लघु तिय कुल करतूति मलीनी॥

(अयोध्या-कांड)

अनुसुइया ने सीता से स्त्री-धर्म का वर्णन तो बड़े विशद रूप से किया, पर उन्होंने भी स्त्री-मात्र को 'सहज अपावनि' ही कहा :

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ।

(अरण्य-कांड)

शबरी ने स्त्री-जाति को तीन बार 'अधम' कहकर उसकी अत्यन्त अधमता की घोषणा की है :

अधम से अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महँ मै मतिमंद गँवारी॥

(अरण्य-कांड)

एक-पत्नीव्रती राम ने भी स्त्री-जाति की स्वेच्छाचारिता की शिकायत की है :

सास्त्र सुचिंतित पुनि-पुनि देखिय ।
भूप सुसेवित बस नहि लेखिय ।।
राखिय नारि जदपि उर माँही ।
जुवती सास्त्र नृपति बस नाही ।।

(अरण्य-कांड)

आगे चलकर राम ने अपने वेदान्तिक प्रवचन मे लक्ष्मण से स्त्री-जाति की अपराजेयता की भी चर्चा की है ·

लछिमन देखत काम अनीका ।
रहहिं धीर तिन्हकै जग लीका ।।
एहि कें एक परम बल नारी ।
तेहिते उबर सुभट सोइ भारी ।।
तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विज्ञान धाम मन, करहिं निमिष महँ छोभ ।।
लोभ के इच्छा दंभबल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि ।।

(अरण्य-कांड)

पंपा-सर के तट पर विश्राम के लिए राम एक वृक्ष के नीचे बैठ गए थे । मौका देखकर नारद मुनि दर्शनार्थ आ गए । राम ने उनसे भी स्त्री-जाति की खूब निन्दा की :

काम क्रोध लोभादि भट, प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि ।।
सुनु मुनि कह पुरान स्रुति संता ।
मोह विपिन कहँ नारि बसंता ।।
जप तप नेम जलास्रय भारी ।
होइ ग्रीषम सोखइ सब नारी ।।

× × ×

पाप उलूक निकर सुखकारी ।
नारि निबिड रजनी अँधियारी ।।
बुधि बल सील सत्य सब मीना ।
बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ।।

अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि ।
ताते कीन्ह निवास, मुनि मैं यह जिय जानि ।।

(अरण्य-कांड)

× × ×

युवती नारी से भयभीत होकर तुलसीदास स्वयं भी कहते है

दीप सिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतग ।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सतसग ।।

(अरण्य-कांड)

रावण के मुख से भी नारी के स्वभाव की निन्दा कराई गई है .

सभय सुभाव नारि कर साँचा ।
मगल महुँ मन भय अति काँचा ।।

(सुन्दर-कांड)

नारि स्वभाव सत्य कवि कहही ।
अवगुन आठ सदा उर रहही ।।
साहस अनृत चपलता माया ।
भय अविवेक असौच अदाया ।। [1]

(लंका-कांड)

लक्ष्मरण को शक्ति लगी, तब राम ने भाई के मुकाबले में स्त्री का मूल्य कम लगाया है .

जैहउँ अवध कवन मुँह लाई ।
नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई ।।
बरु अपजस सहतेउँ जग माँही ।
नारि-हानि बिशेष छति नाही ।।

(लंका-कांड)

कागभुसुण्डि ने भी नारी को जड़ जाति का माना है

पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती ।
अबला अबल सहज जड जाती ।।

(उत्तर-कांड)

---

१. यह इस श्लोक का अनुवाद हैं—
अनृत साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता
अशौच निर्दयत्व च स्त्रीणा दोषा. स्वभावजा. ।।

'दोहावली' में कुछ दोहे ऐसे भी मिलते है, जो तुलसीदास के निज के कहे हुए है, किसी से कहलाये नहीं गये है

जनम-पत्रिका बरति कै, देखहु मनहि बिचारि।
दारुन बैरी मीचु के, बीच बिराजति नारि॥

जन्म-कुण्डली में छठा, सातवाँ और आठवाँ स्थान क्रमश शत्रु, स्त्री और मृत्यु का माना जाता है। इसी को लक्ष्य करके यह विनोद किया गया है।

'दोहावली' में एक दोहा इससे भी अधिक कौतूहल का है:

अमिय गारि गारेउ गरल, नारि कीन्ह करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध न गँवार॥

यहाँ तक तो स्त्रियों के विरोध की बातें हुई। इनसे नये विचारों के युवक-युवतियों का चित्त विक्षुब्ध हो सकता है। पर तुलसीदास का उद्देश्य समझ लेने पर तो उनके प्रति हम कृतज्ञ हो जाएँगे। 'रामचरितमानस' की रचना उन्होंने अपना पांडित्य दिखाने के लिए नहीं की, बल्कि वह तो हिन्दू-जाति के पुनरुद्धार का एक प्रयोग है। उनके समय मे पुरुषो में कामुकता बढ़ रही थी। शिक्षित, अशिक्षित सभी समाजों मे स्त्री-ही-स्त्री की चर्चा चल रही थी, और लोग अपने जातीय गुणों और संस्कृति को भूल रहे थे। यहाँ तक कि वृन्दावन में बसने वाले बुड्ढे हितहरिवंश जी भी शृङ्गार-रस में सराबोर रहते थे और गाया करते थे कि. —

कृश कटि पृथु नितंब किंकिनि वृत कदलि खभ जघनी।
पद कंबुज जावक जुत भूषन पीतम उर अवनी॥
नाभि गँभीर मीन मोहन मन खेलन कौ हृदिनी।
नव नव भाव बिलोम भाम इम बिहरति बर कदिनी॥

तब साधारण गृहस्थों की तो बात ही क्या? ऐसे समय में पुरुषों का चित्त स्त्रियों की ओर से हटाकर, प्राचीन सत्पुरुषों की याद दिलाकर, हृदयों में सदाचार जगाकर उनको सन्मार्ग दिखलाना ही उनका ध्येय था, और वह समय के अनुसार बहुत ही उचित था।

मैंने तुलसीदास के करीब-करीब सभी ग्रन्थों का अच्छी तरह अध्ययन किया है। मुझे तो वे स्त्री-जाति के विरोधी नही जान पड़े। उन्होंने उन्हीं को श्रेष्ठ कहा है जो 'जननी सम जानहि सम नारी।' यह उस समय की प्रचंड कामाग्नि को बुझाने या शान्त करने के लिए ही कहा गया है। तुलसीदास तो यहाँ तक सावधान रहते थे कि सीता के शृङ्गार के वर्णन में लिखा कि 'सोह नवल तन सुन्दर सारी।' तत्काल उनको ऐसा लगा कि कहीं इससे

पाठक या श्रोता के मन में काम-वासना न जागृत हो, इससे फौरन कहा— 'जगत जननि अतुलित छबि भारी।' एक 'जननि' शब्द ने प्रेम को सात्विक बना दिया। हमें कृतज्ञ होना चाहिए कि तुलसीदास ने हमे उस आग से बचा लिया जो हमारे चिर-संचित सद्गुणों को जला डालती।

'नारि-स्वभाव' वाली चौपाई का मूलाधार संस्कृत का यह प्राचीन श्लोक है :

अनृत साहस माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौच निर्दयत्व च स्त्रीणा दोषा' स्वभावजा' ॥

'दोहावली' में तुलसीदास का एक दोहा है, जो अवश्य उनकी निजी उक्ति है :

जनम पत्रिका बरतिकै, देखहु मनहि बिचारि।
दारुन बैरी मीच के, बीच बिराजति नारि ॥

जन्म-कुण्डली मे छठा, और सातवां स्थान क्रमशः शत्रु, स्त्री और मृत्यु का माना जाता है। इसी को लक्ष्य करके कवि ने यह विनोद किया है।

कवि के इस विनोद का उत्तर हमे आनन्दित होकर ही देना चाहिए। यदि इस पर कोई क्रोध प्रकट करे, तब तो ठाकुर लोगों को भी तुलसीदास का विरोधी हो जाना चाहिए। क्योंकि उन्होंने एक जगह ठाकुर को ठग और चोर के बीच में बैठा दिया है :

राम कृष्ण सबही कहे, ठग ठाकुर औ' चोर।
बिना प्रीति रीझत नही, तुलसी नन्दकिसोर।

१०

तुलसीदास के छन्द

तुलसीदास ने निम्न लिखित छन्दों मे अपनी रचनाएँ की है। इनमें वे छन्द नहीं दिये जा रहे है,जिनका उपयोग उन्होंने 'गीतावली' और 'विनय-पत्रिका' मे किया है :

१—चौपाई, २—दोहा, ३—सोरठा, ४—चौपैया, ५—डिल्ला, ६—तोमर. ७—हरिगीतिका, ८—त्रिभंगी, ९—अनुष्टुप, १०—इन्द्रवज्रा, ११—तोटक, १२—नगस्वरूपिणी, १३—भुजंगप्रयात, १४—मालिनी, १५—रथोद्धता, १६—वसन्ततिलका, १७—वंशस्थ, १८—शार्दूलविक्रीड़ित, १९—स्रग्धरा, २०– सवैया, २१—छप्पय, २२—घनाक्षरी, २३ झूलना, २४—सोहर, २५—बरवै।

११

संगीतज्ञ, गणितज्ञ और ज्योतिषज्ञ तुलसीदास

तुलसीदास को काव्य के सिवा और भी कई विषयों का अच्छा ज्ञान था। उनकी रचनाओं में हमे इसके प्रमाण मिलते है।

संगीत का ज्ञान तो उनको बहुत अच्छा रहा ही होगा, यह तो हमें भिन्न-भिन्न राग-रागनियों मे रचे हुए उनके पदो ही से विदित होता है। 'गीतावली' और 'विनय-पत्रिका' में निम्न लिखित राग-रागनियों के पद है —

असावरी, जैतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ धनाश्री, कान्हड़ा, कल्याण, ललित, विभास, नट, टोड़ी, सारंग, सूहो, मलार, गौरी, मारू, भैरव, भैरवी, चंचरी, बसंत, रामकली और दंडक।

'राम-शलाका' और 'रामाज्ञा-प्रश्न' के निर्माण मे तुलसीदास ने अपनी गणितज्ञता का भी अच्छा परिचय दिया है। चौपाइयों से रामशलाका-चक्र का निर्माण सहज नहीं। उनकी 'दोहावली' और 'सतसई'मे भी कई ऐसे दोहे मिलते हैं, जिनसे गणित में उनकी अच्छी गति और रुचि दिखाई पड़ती है। पहले नौ के पहाड़े का एक उदाहरण दिया जा चुका है। 'दोहावली' के इस दोहे में उन्होंने अपनी गणितज्ञता का एक और भी अच्छा प्रमाण दिया है :

नाम चतुर्गुन पचयुत, दूने हर बसु शेष।
तुलसी सकल चराचर,रामनाम मय देख॥

'किसी नाम के अक्षर गिनकर उसके चौगुने करो, फिर उसमें पांच जोड़ो, फिर उसे दूना करो, फिर उसे आठ से भाग दो, तो जो बचेगा, वह दो होगा, और वही राम के दो अक्षर है।' कैसी सुन्दर कल्पना है !

तुलसीदास को ज्योतिष का भी अच्छा ज्ञान था, ऐसा उनकी 'दोहावली' के दोहों से ज्ञात होता है। यहां इस विषय के कुछ दोहे दिये जाते है :

स्तुतिगन करगन पुजुग मृग, हय रेवती सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि अरु, गयहु न जाइहिं काउ॥

'श्रुति अर्थात् श्रवण का गुण श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, कर अर्थात् हस्त

का गण हस्त, चित्रा, स्वाती, पु-कार युक्त दो अर्थात् पुष्प और पुनर्वसु, मृगशिरा, हय (अश्विनी), रेवती और सखाउ (अनुराधा) इन नक्षत्रों मे दिया हुआ, लिया हुआ और धरती मे गाड़ा हुआ धन नष्ट नही होता।'

ऊगन पूगन वि अज कृ म , आ भ अ मू गन साथ।
हरो बरो गाडो दियो, धन फिरि चढै न हाथ॥

ऊगण अर्थात् उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद, पूगण अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और पूर्वा भाद्रपद, वि अर्थात् विशाखा, अज (रोहिणी), कृ कृत्तिका, म मघा, आ आर्द्रा, भ भरणी, अश्लेषा, मू मूल इन नक्षत्रों मे गया हुआ, रखा हुआ, गाड़ा हुआ और दिया हुआ धन फिर हाथ नहीं आता।

रवि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब काज नसावनी, होइ कुजोग बिचार॥

रवि द्वादशी, हर एकादशी, दिशि दशमी, गुन तृतीया, रस षष्ठी, नयन द्वितीया, मुनि सप्तमी, इन तिथियों मे प्रथम वार अर्थात् रविवार से लेकर क्रमशः सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिश्चर पड़े, तो कुयोग जानना चाहिए। इनसे कार्य-सिद्धि नहीं होती।

१२

क्रांतिकारी काव्य

'रामचरितमानस' एक क्रांतिकारी काव्य है। महात्मा गांधी का आत्म-शुद्धि का उपदेश और तुलसीदास का 'रामचरितमानस' दोनों एक ही वस्तु है। मुसलमानी शासन मे हिन्दू और हिन्दुत्व दोनों खतरे मे थे। शताब्दियों से लगातार आघात-पर-आघात सहते-सहते हिन्दुत्व का राज-भवन जब गिरने ही वाला था, उस समय चारों ओर से साधु-संतों और विद्वानों ने दौड़कर, अपनी-अपनी टेक लगाकर, उसे थाम लिया था। तुलसीदास उनमे से एक है और 'रामचरितमानस' उनकी वही टेक है।

भारतवर्ष में यह वह समय था, जब सामाजिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में भयानक परिवर्तन हो रहा था। हिन्दू लोग अपनी प्राचीन संस्कृति को त्याग कर नाश की ओर बढ़ रहे थे। तुलसीदास के शब्दों में उस समय की दशा यह थी :

दीनदयाल दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव दुआर पुकारत आरत सब-की-सब सुख हानि भई है।
प्रभु के बचन बेद बुध सम्मत मम मूरति महिदेव मई है।
तिन्हकी मति रिस,राग, मोह,मद, लोभ लालची लीलि लई है।
राज समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतु बाद हठि हेरि हई है।
आस्रम, बरन धरम बिरहित जग लोक बेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखड पाप-रत अपने-अपने रग रई है।
साति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है।
परमारथ स्वारथ साधन भए अफल सकल, नहि सिद्धि सई है।
कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल, जामति न बई है।
कलि करनी बरनिए कहाँ लौ करत फिरत बिनु चहल रई है।

तापर दाँत पीसि कर मीजत, को जानै चित कहा ठई है।
त्यो-त्यो नीच चढत सिर ऊपर ज्यो-ज्यो सीलबस ढील दई है।
सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है।
दीजै दादि देखि नातो बलि, मही मोद मगल रितई है।

जब समाज की ऐसी दशा थी, तब उसका अध.पतन तो निश्चित ही था। ऐसे समय में तुलसीदास ने अपना जीवन-दान करके हिन्दू-जाति मे जन्म लेने के ऋण से अपने को उऋण किया।

सबसे पहले उन्होंने राम को चुना। राम मे मनुष्य की पूर्णता की कल्पना की। फिर दशरथ का एक परिवार चुना, जिसमे भिन्न-भिन्न स्वभावो के लोग अपनी-अपनी निश्चित मर्यादा मे एक होकर रहते थे। फिर एक राम-राज्य का ढाँचा तैयार किया और हिन्दुओं के सामने एक आदर्श समाज और एक आदर्श राज्य का नमूना रखा।

राम-जैसा मनुष्य और राम के परिवार-जैसा परिवार हिन्दू-जाति मे बने, तब राम-राज्य की स्थापना हो, 'मानस' रचने का तुलसीदास का एकान्त उद्देश्य यही था। हिन्दुओं को वैरागी बनाने के लिए, केवल राम-राम रटने-वाले आलसी अपाहिजों के लिए, उन्होने 'रामचरितमानस' नहीं रचा था।

'रामचरितमानस' में उन्होंने सेवा-धर्म को सदा प्रधानता दी है। उनके राम ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी परे थे। उनके राम का स्वरूप यह चराचर जगत् ही था। इसी की सेवा का उपदेश उन्होने 'मानस' मे सर्वत्र दिया है। राम को महान्-से-महान् बताकर वे उन्हें शबरी के घर में ले जाते हैं और उसके बेर खिलवाते हैं; गिद्ध के लिए उनसे पिता शब्द कहलवाते हैं, बानर-भालुओं को मधुर शब्दों से प्रोत्साहन दिलवाकर उन्हें राम का सहायक बनवाते है, केवट को वशिष्ठ के गले लगवाते है; क्या यह उनका इशारा नहीं है कि इसी प्रकार से हिन्दू-जाति मे ऊँच-नीच का भेद-भाव छोड़कर सब एक हो जायँ और सुसगठित होकर सुराज या स्वराज का सुख भोगें ?

एक सुसंगठित समाज में किसी खास वर्ग के शत्रु परशुराम को अवाञ्छनीय समझकर भरी सभा मे अपमानित करके निकलवा देना क्या यह नहीं साबित करता कि तुलसीदास वर्ग-विद्वेष को मिटा देने ही में समाज का कल्याण सोचते थे ? गरुड़ को वे काकभुशुण्डि के पास भेजकर उपदेश दिलवाते हैं। इसका क्या यह अभिप्राय नहीं है कि अभिमान छोड़कर नीच से भी नीच व्यक्ति के पास जाकर ज्ञान ग्रहण करना चाहिए ?

भरत की जो महिमा तुलसीदास ने गाई है, क्या वह उद्देश्य से रहित

है ? तुलसीदास का वह ज़माना था, जब राज्य के लिए घर-घर में विभीषण पैदा हो रहे थे। उस समय हिन्दू-समाज मे भरत की बड़ी ही आवश्यकता थी। भरत का गुण-गान करके उन्होंने हजारो भाइयों को 'विभीषण' बनने से बचा लिया है। विभीषण शत्रु का भाई था, उसे फोड़कर शत्रु का नाश करने की नीति का समर्थन तुलसीदास भी करते है, पर अपने घर में वे विभीषण की चुटकी ही लेते है :

राम सराहे भरत उठि, मिले राम सम जानि।
तदपि बिभीषन कीसपति, तुलसी गरत गलानि॥

× × ×

सधन चोर मग मुदित मन, धनी गही ज्यो फेंट।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहि, भई भरत सो भेंट॥

तुलसीदास एक युग-प्रवर्तक कवि थे। भिन्न सभ्यता और संस्कार वालों के शासन मे मृत-प्राय हिन्दुत्व को बचाने के लिए उन्होंने राम की कथा के बहाने सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति को केन्द्रीभूत करके क्रांति का एक नाटक-सा रच दिया, जिसके पात्र हिन्दू-मात्र है। शिक्षित-अशिक्षित ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र, धनी-गरीब, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी उस नाटक में अपना-अपना पार्ट अदा करते हुए नाटक की सफलता के लिए प्रयत्नशील है। वह सफलता क्या है ? सर्वांगपूर्ण सुखदायक राम-राज्य की स्थापना। ऐसा कौतूहल-जनक खेल संसार में शायद ही किसी ने रचा हो, जैसा तुलसीदास ने रच दिया है। इसके द्वारा उन्होंने गत तीन सौ वर्षों से भीतर-ही-भीतर हिन्दुओ मे सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति जगा रखी है, जो किसी अन्त पर जाकर ही रुकेगी।

वे 'मानस'-भर मे बार-बार सुराज का स्मरण दिलाते रहते है, वह अकारण नहीं है। वे भारत मे सुराज या स्वराज की स्थापना के लिए अत्यन्त आतुर थे।

राम की भक्ति से तुलसीदास का यह अभिप्राय कभी नहीं था कि लोग सब काम-धाम छोड़कर, केवल राम-राम जपें और गरीब गृहस्थों पर बोझ होकर रहें। उन्होंने भक्त की परिभाषा इस दोहे में साफ़-साफ़ कर दी है :

प्रीति राम सों, नीति पथ, चलिय राग रिस जीति।
तुलसी सन्तन के मते, इहै भगति की रीति॥

१३

कवि की आलोचना

भक्त और महात्मा तुलसीदास की आलोचना करने का हमें कोई अधिकार नहीं, क्योंकि उनका उच्चकोटि का जीवन, उनका पवित्र आचरण, उनका अनुपम त्याग हमारी आलोचना का विषय नहीं, हमारी श्रद्धा का विषय है। पर कवि तुलसीदास से तो हम स्वच्छन्दता से बातें कर ही सकते हैं। वे कितना ही कहें :

कवि न होउँ नहि चतुर कहाऊँ। मति अनुरूप राम-गुन गाऊँ।
कवि न होउँ नहि चतुर प्रवीना। सकल कला सब विद्या हीना।
कवित विवेक एक नहि मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।

पर हम तो उन्हें कवि ही नहीं, महाकवि मानते हैं। नम्रता-प्रदर्शन बड़प्पन का लक्षण है। वे महान् थे, दंभ-रहित थे, सरल, सुशील और लोक-सेवा की भावना से विभूषित थे, अतएव उनके मुख से अभिमान के वचन की तो हमें आशा ही क्यों करनी चाहिए ? पर वे 'रामचरितमानस कवि तुलसी' थे, और 'कुकवि कहाइ अजस को लेई' से भयभीत 'सुकवि' भी थे, यह निर्विवाद है। उन्हीं कवि तुलसीदास से उनकी कविता के सम्बन्ध में हमें कुछ चर्चा करनी है।

अब तक हमने तुलसीदास की माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणमयी कविता के अच्छे उदाहरण देकर उनका गौरव-गान किया है। पर कवि में त्रुटियाँ भी हैं, इसका निदर्शन किये बिना उसका चित्र अपूर्ण ही रह जायगा।

तुलसीदास ने 'मानस' को जहाँ उत्तम कोटि की कविता के सब लक्षणों से अलंकृत कर दिया है, वहाँ वे उसमें कुछ त्रुटियाँ भी छोड़ गए हैं। इनके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं :

१—'मानस'-भर में तुलसीदास इस बात से बहुत शंकित दिखाई पड़ते हैं कि कहीं लोग राम को मनुष्य न समझ लें। इससे कहीं-कहीं प्रस्तुत रस-धारा के बीच में खड़े होकर वे व्याख्यान देने लगते हैं कि राम को मनुष्य न समझना; यह सब राम का कपट-चरित है। उनकी इस व्याकुलता से रस का

परिपाक नहीं होने पाता और वर्णन की स्वाभाविक धारा रुक जाती है। जैसे :

गुर गृह गये पढन रघुराई। अल्प काल बिद्या सब पाई।

इतने से तो हमने समझ लिया कि राम बड़े कुशाग्र-बुद्धि थे। पर तुलसीदास को यह भय लगा कि राम का पढ़ना सुनकर कहीं लोग उनको मनुष्य न समझने लगें, इससे वे कहते हैं :

जाकी सहज स्वास स्रुति चारी। सो हरि पढ यह कौतुक भारी।

× × ×

इसी प्रकार सीता-हरण के बाद राम जब विलाप करते हैं, तब भी तुलसीदास भयभीत हो जाते हैं और कहते हैं :

पूरन काम राम सुखरासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी।

आगे देखिए :

युद्ध में मेघनाद ने राम को नाग-पाश मे बाँध लिया था। युद्ध के लिए यह साधारण सी बात है। मौका मिलने पर निर्बल भी सबल को परास्त कर सकता है। पर तुलसीदास यहाँ फिर भी डरे, और कहते हैं :

नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतन्त्र रूप भगवाना।

इसके कहने की क्या आवश्यकता थी ? यदि तुलसीदास अपनी शंका न उठाते, तो हमें ध्यान भी न आता कि मेघनाद के नाग-पाश से बँधने पर राम की ईश्वरता को कोई धक्का लगा। जब राम ने 'बिप्र, धेनु, सुर, सत' के लिए मनुष्य का अवतार लिया है और मनुष्य ही की तरह वे चरित्र कर रहे हैं, तब मनुष्य के सुख-दुःख भी उन्हें भोगने ही चाहिएँ। तुलसीदास की पहरेदारी देखकर तो हमें यह भ्रम होने लगता है कि राम जो कुछ करते थे, सब ढोंग था।

२—अरण्य-काण्ड में जब लक्ष्मण कन्द-मूल-फल लेने के लिए वन मे गए हुए थे तब राम के इशारे से असली सीता अग्नि में प्रवेश कर गईं, और उनके स्थान पर वैसे ही रूप-रंग की एक नकली सीता आश्रम में बैठ गईं। लक्ष्मण आये तो उन्होंने नकली सीता ही को असली समझा। इस पर तुलसीदास कहते हैं :

लछिमन हू यह मरम न जाना। जो कुछ चरित रचा भगवाना।

यद्यपि राजनीति की दृष्टि से राम ने ठीक ही किया होगा, पर कवि ने यह कहकर कि राम ने जो कुछ किया, उसे लक्ष्मण भी नहीं जान पाये, क्या कवित्व दिखलाया ? कवि के इस कथन के बाद तो यही अनुभव होने लगता

है कि राम बड़े चालाक थे। उन्होंने अनन्य भक्त और आजीवन विश्वास-पात्र भाई का भी विश्वास नहीं किया। तथा सीता-हरण के समय उन्होंने जो विलाप किया, वह सब उनका दिखावा था। असली सीता को कलंक से निर्मुक्त रखने के लिए ही कवि का यह प्रयास जान पड़ता है। पर इससे उसके मुख्य चरित-नायक राम की नैतिक उच्चता कम हो जाती है।

इसी प्रकार इस अगली चौपाई में भी राम का लक्ष्मण के साथ छल करना पाया जाता है, और वे एक चालाक व्यक्ति मालूम होते हैं

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिन्ता कीन्ह बिसेखी।

३—तुलसीदास सर्वत्र राम की सुन्दरता ही पर सबको मुग्ध दिखाते हैं, चाहे वह शत्रु हो या मित्र, देवता हो या दानव, राक्षस हो या असुर, जो कोई उनके सामने आता है, वह उसके रूप पर पहले मुग्ध हो लेता है, पीछे अन्य काम करता है।

बचपन में और विवाह के अवसर पर सौन्दर्य का निदर्शन स्वाभाविक है। पर जब खरदूषण अत्यन्त आवेश में अपनी चौदह हजार सेना लेकर राम से लड़ने आता है और यकायक क्रोध को भूलकर उनके रूप पर आसक्त हो जाता है और कहने लगता है

हम भरि जनम सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुन्दरताई।
जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।

तब एक राक्षस में इस तरह का परिवर्तन अस्वाभाविक जान पड़ता है। रौद्र रस में शृङ्गार का यह मिश्रण कवि की सफलता में सन्देह उत्पन्न करता है।

राम का सौन्दर्य देखकर विभीषण भी मोहित हो जाता है। जब वह राम से मिलने के लिए आया, तब

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी।

इसके पहले वह विचार करता हुआ आया था कि

जिन्ह पायन्ह के पादुकनि, भरत रहे मन लाय।
ते पद आज बिलोकिहौ, इन्ह नयनन्हि अब जाय॥

पर सामने आते ही वह चरणों को भूल गया और मुँह देखने लगा। पता नहीं, तुलसीदास क्यों सबको राम के सौन्दर्य पर लुभाया हुआ दिखलाते थे। यहाँ तक कि वनवासी ऋषि-मुनि भी एकटक हो राम की रूप-सुधा का पान करने लगते थे।

४—अयोध्या-काण्ड मे राम को पृथ्वी पर शयन करते हुए देखकर निषाद

को बड़ा विषाद हुआ। तब लक्ष्मण ने ज्ञान-वैराग्य और भक्ति के रस में सना हुआ एक लम्बा-सा व्याख्यान उसको सुनाया था। उनकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं

बोले लषन मधुर मृदु बानी। ग्यान-बिराग-भगति-रस-सानी।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करमु भोग सबु भ्राता।
जोग बियोग भोग भल मन्दा। हित-अनहित मध्यम भ्रम-फन्दा।
जनमु-मरनु जहँ लगि जग-जालू। सपति-बिपति करमु अरु कालू।
धरनि-धामु-धनु - पुर - परिवारू। सरगु-नरक जहँ लगि व्यवहारू।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माही। मोह मूल परमारथ नाही।
सपने होइ भिखारि नृपु, रंकु नाक पति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपच जिय जोइ।।
मोह-निसा सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।
एहि जग जामिनि जागहि जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय-बिलास-बिरागा।
सखा परम परमारथु एहू। मन-क्रम-बचन राम-पद-नेहू।
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा।

ये बातें तो किसी पहुँचे हुए संत के मुँह से शोभा देती हैं, न कि एक तेजस्वी नवयुवक के मुँह से, जो अभी दो ही-एक दिन पहले अपने पिता को फटकारकर आया है।

जो लक्ष्मण निषाद को एक ऋषि-मुनि की तरह अपना भाषण सुना चुके थे, वही अरण्य-कांड में राम से पूछते हैं

कहहु ज्ञान-बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया।

इस अवसर पर राम ने जो कुछ लक्ष्मण को समझाया है, उससे अधिक अयोध्या-कांड में लक्ष्मण स्वयं निषाद को बता चुके हैं। कवि का लक्ष्य किसी-न-किसी प्रकार से ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की बातों को, जो उसके मस्तिष्क में थीं, बाहर निकालना था। पर उसके लिए उसने व्यक्ति और अवसर का जो चुनाव किया, वह ठीक नहीं था। ऐसी बातें तुलसीदास राम से लक्ष्मण को न कहलाकर किसी अन्य व्यक्ति को कहलाते, तो उसमें अधिक औचित्य होता।

आश्चर्य की बात है कि वही ज्ञान, भक्ति और वैराग्य में सने हुए लक्ष्मण चित्रकूट में, राम से मिलने के लिए भरत को आते हुए देखकर, एकदम विक्षुब्ध हो उठे थे।

५—शूर्पणखा ने खरदूषण-वध के बाद रावण के पास जाकर कहा

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी।

यहाँ एक राक्षसी के मुँह से 'हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा' का गीता-पाठ बिलकुल अस्वाभाविक है और क्रोध और उत्तेजना उत्पन्न करने के अवसर पर धर्म, विद्या, विवेक, ज्ञान, प्रीति और प्रणय का स्मरण दिलाना भी नितान्त असामयिक है।

६—लंका-कांड मे मन्दोदरी ने रावण को जो उपदेश दिया था, वह उपनिषद् का एक अध्याय-सा हो गया है; जो एक राक्षस-स्त्री के लिए बिलकुल ही अस्वाभाविक था और यदि न भी रहा हो, तो कवि की दृष्टि से तो होना ही चाहिए था। मन्दोदरी का उपदेश :

बिस्वरूप रघुबंसमनि, करहु बचन बिस्वासु।
लोक-कल्पना वेद कर, अङ्ग-अङ्ग प्रति जासु॥

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग-अँग बिस्रामा।
भृकुटि-बिलास भयङ्कर काला। नयन दिवाकर कच घन-माला।
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा।
स्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी।
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला।
आनन अनल अम्बुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा।
रोम-राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा।
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना।

अहङ्कार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान्।
मनुज बास चर अचरमय, रूप राम भगवान्॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति, प्रभु सन बैर बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर-पद, मम अहिबात न जाइ॥

७ लंका-कांड में जब राम वानर-सेना के साथ समुद्र पार करके, सुबेल पर्वत पर डेरा डाले पड़े थे, तब वहाँ पर युद्ध-सम्बन्धी कोई चर्चा न करके चन्द्रमा पर जो तरह-तरह की कल्पनाएँ भिड़ाई गई है, वह अस्वाभाविक और असामयिक दोनों है। राम ने वहाँ इस स्वच्छन्दता से बातें की है, जैसे वे अयोध्या में अपने अन्तरङ्ग मित्रों के साथ अपने महल की छत पर बैठे हों और समस्या-पूर्तियाँ करके मन बहला रहे हों। देखिये :

'पूरब दिसि गिरि गुहा-निवासी। परम प्रताप तेज बलरासी।

मत्त नाग तम कुम्भ बिदारी। ससि केसरी गगन बनचारी।
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुन्दरी केर सिंगारा।
कह प्रभु ससि महँ मेचकताई। कहहु काह निज-निज मति भाई।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महँ प्रगट भूमि कै झाँई।
मारेहु राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई।
कोउ कह जब बिधिरति मुख कीन्हा। मार भाग ससि कर हरि लीन्हा।
छिद्र सो प्रगट इन्दु उर माही। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं।
प्रभु कह गरल बधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा।
बिष सयुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवत नर-नारी।

कह मारुत सुत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार निज दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास॥

इस तरह की उद्भावनाएँ रण-भूमि मे शोभा नहीं देतीं।

८—लका-कांड में भर्ती के शब्द सर्वत्र मिलते है। जैसे—

मन्दोदरी ने रावण को समझाते हुए कहा :

पति रघुपतिहि नृपति मत मानहु। अग जग-नाथ अतुल बल जानहु।
बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहि मानेहु नीचा।

मन्दोदरी के मुख से अपने पति रावण के लिए नीच शब्द कहलाना बहुत ही अनुचित मालूम देता है। मन्दोदरी से तुलसीदास ने राम के मनुष्य न होने का कई बार फतवा दिलाया है। तुलसीदास को यहाँ उस राम की भक्तिन निरपराधिनी मन्दोदरी की मर्यादा तो सँभालनी ही चाहिए थी।

९—रावण जब मारा गया और राम के बाण उसके सिर को मन्दोदरी के आगे रखकर चले गए, तब मन्दोदरी ने विलाप करते-करते फिर वेदान्त का एक प्रवचन-सा कह डाला। उसे सुनकर :

मन्दोदरी बचन सुनि काना। सुर-मुनि-सिद्ध सबन्हि सुख माना।

पर सुर, मुनि और सिद्धों के कान वहाँ इतने निकट थे कहाँ ?

१०—भक्त कवि तुलसी का रोचक विषय युद्ध नहीं था, इसी से उसमें शिथिलता और विरसता आ गई है। रावण और हनुमान के युद्ध का वर्णन सुनिए :

देखा स्रमित बिभीषन भारी। धायेउ हनूमान गिरधारी।
रथ तुरग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता।
पुनि रावन तेहि हतेउ पचारी। चला गगन कपि पूँछ पछारी।
गहेसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना।

हनुमान का उछलना और रावण का उनकी पूँछ पकड़कर ऊपर उड़ना यह गँवारों और लड़कों लिए मनोरंजक हो सकता है, पर तुलसीदास-जैसे महाकवि के लिए गौरव-स्वरूप नहीं हो सकता। हास्य-रस वीर-रस का सहायक नहीं, बाधक है।

११—कागभुशुण्डि की एक बात तो मुझे बहुत ही बीभत्स जान पड़ी, जो वे कौआ होते हुए बालक राम के मुँह के अन्दर उस समय जा घुसे, जब वे हँस रहे थे, और राम को मालूम भी न हुआ। एक भक्त के लिए यह धृष्टता कहाँ तक उचित है ?

१२—कहीं-कहीं तुलसीदास ने शब्दों के प्रयोग मे भी असावधानी की है। जैसे :

जब सीता को विभीषण अशोक-वाटिका से राम के पास ला रहा था, तब राम ने कहा :

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादे आनहु।
देखहि कपि जननी की नाई। बिहँस कहा रघुबीर गोसाई।

इसमें बिहँसकर कहने की क्या बात थी ? इसमें तो राम का बड़ा हल्कापन साबित होता है। और ऊपर की चौपाई में 'कहा' तो एक बार आ ही चुका था, दूसरी बार तो वह व्यर्थ ही आया।

१३—तुलसीदास ने कहीं-कहीं व्याकरण के नियमों की भी उपेक्षा की है। जैसे :

मरम बचन सीता जब बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।

इसमें 'सीता बोला' यह प्रयोग व्याकरण से अशुद्ध है।

१४—तुलसीदास ने 'प्रश्न' शब्द को 'मानस'-भर में स्त्रीलिंग लिखा है। जैसे :

प्रश्न उमा के सहज सुहाई। छल-विहीन सुनि सिव मन भाई।
(बाल-कांड)

× × ×

कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी।

× ×

प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी। (उत्तर-कांड)

१५—बहुत-सी चौपाइयों मे गति-भंग दोष पाया जाता है। जैसे :

परम सक्ति समेत अवतरिहौ।

× × ×

राम भक्त कहाइ नर आसा।

१६—कहीं-कहीं यति-भंग दोष भी मिलता है। जैसे :

अंगदादि कपि मुछित, करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहँ, चला अमित बलसीव।।

१७—कहीं तुक ठीक नहीं मिले है। जैसे :

चढ़ि बिमान सुनु सखा विभीषन। गगन जाइ बरसहु पट भूषन।
ध्यान न पावहि जासु मुनि, नेति-नेति कह बेद।
कृपासिन्धु सोइ कपिन सों, करत अनेक विनोद।।

१८—तुलसीदास ने 'नाना' शब्द का प्रयोग बहुत किया है। कहीं-कहीं 'नाना' उपहास-जनक हो गया है और कहीं-कहीं अनावश्यक। जैसे :

सेवक सकल बजनिया नाना।

इसका अर्थ यह भी लगा लिया जा सकता है कि सब सेवक तो थे, पर बाजा बजाने वाले नाना (मामा के पिता) थे।

इसी तरह :

धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लेइ नाना।
+ + +
बिस्नु बिरच सभु भगवाना। उपजहि जासु अस ते नाना।।

इत्यादि—

'नाना' की तरह 'बर' शब्द का प्रयोग भी बहुत और कहीं-कहीं व्यर्थ हुआ है।

१६—जटित कनक मनि पलँग डसाये।

इसमें कवि का अभिप्राय यह जान पड़ता है कि मणियों से जड़ हुए सुवर्ण के पलँग बिछवाए गए थे। तब तो इसका पाठ ऐसा होना चाहिए :

कनक पलँग मनि जटित डसाये।

'मानस'-जैसे बड़े काव्य-ग्रन्थ में वर्णनों के लिए पात्रों और अवसरों के चुनाव में मतभेद हो सकता है और त्रुटियाँ भी रह सकती है, पर इस तर्क से किसी कवि का उत्तरदायित्व कम नहीं हो सकता।

१४

'रामचारतमानस' की अन्तर्कथाएँ

अगस्त्य

बढ़त बिंध्य जिमि घटज निवारा।

अगस्त्य की उत्पत्ति एक घड़े से बताई जाती है। ये मित्रावरुण की सन्तान थे। एक बार विन्ध्य पर्वत बढ़ने लगा। वह इतना बढा कि उसने सूर्य का मार्ग रोक लिया। तब देवताओं ने अगस्त्य से प्रार्थना की। अगस्त्य विंध्य-पर्वत के पास गये। विंध्य पर्वत ने झुककर उन्हें प्रणाम किया। अगस्त्य ने कहा—'मै जब तक न आऊं, तब तक ऐसे ही रहो।' यह कहकर अगस्त्य दक्षिण-दिशा की ओर चले गए और फिर नहीं लौटे। इसी से उसका नाम अगस्त्य पड़ा।

जब इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया, तब शेष बचे हुए असुर देवताओं के डर से समुद्र में जा छिपे। रात्रि में वे बाहर निकलते और ऋषियों के आश्रमों में जाकर उत्पात करते और ब्राह्मणों को मारकर खा जाते थे। देवताओं ने अगस्त्य से प्रार्थना की कि आप समुद्र का जल पी लीजिये, तो हम दैत्यों को मार डालें। मुनि ने समुद्र-तट पर पहुँचकर सब जल पी लिया और देवताओं ने दैत्यों और दानवों को पकड़-पकड़कर मार डाला।

अजामिल

अपत अजामिल गज गनिकाऊ। भये मुकुत हरिनाम प्रभाऊ।

कन्नौज देश में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम अजामिल था। यद्यपि वह विद्वान्, माता-पिता का आज्ञाकारी और ईश्वर का भक्त था, पर एक दिन जङ्गल में जब वह लकड़ी और फल-फूल के लिए गया हुआ था तब एक वेश्या से उसकी भेंट हुई। वह प्रेमासक्त होकर उसे घर लाया और उसके साथ रहकर मांस-मदिरा खा-पीकर जीवन बिताने लगा। वेश्या से दस पुत्र हुए। सबसे छोटे पुत्र का नाम नारायण था, जिसे वह बहुत प्यार करता था। जब अजामिल ८२ वर्ष का हुआ, तब उसका मृत्यु-काल उपस्थित हुआ। यमदूत

उसे लेने को आये। उन्हें देखकर वह बहुत डरा और अपने छोटे पुत्र नारायण को बार-बार पुकारने लगा। नारायण शब्द के उच्चारण से भगवान् के पारषद आ पहुँचे। यम और विष्णु के दूतों में अजामिल के लिए बहुत देर तक विवाद चलता रहा। अन्त में यमदूत परास्त हुए और लौट गए। मरणासन्न अजामिल यह सब देख और सुन रहा था। वह विष्णु के पारषदों से कुछ बोलना ही चाहता था कि वे अन्तर्द्धान हो गए। तब उसने अपनी सारी आयु भगवद्भक्ति में व्यतीत कर दी और अन्त में बैकुण्ठ गया।

अदिति

कश्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहँ मै पूरब बर दीन्हा।

यह प्रजापति कश्यप की स्त्री थीं। जब कश्यप प्रजापति हुए, तब वे अदिति के साथ तपस्या करने के लिए घर से जङ्गल में निकल गए। वहाँ इन दोनों ने बड़ी कठिन तपस्या की, जिससे भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—'मै तुम दोनों से बहुत प्रसन्न हूँ। जो वरदान चाहो, माँग लो।' उन्होंने वरदान माँगा कि आप हमारे पुत्र हों। तब भगवान् ने उन्हें यह वरदान दिया कि तुम दोनों त्रेता मे अयोध्या के राजा-रानी होगे, तब मै तुम्हारा पुत्र हूँगा। इसलिए अदिति कौशल्या के नाम से त्रेता मे अयोध्यापति की रानी हुई और भगवान् ने इनके गर्भ मे अवतार लिया।

अहिल्या

गौतम नारी सापबस उपल देह धरि धीर।

यह महर्षि गौतम की स्त्री थी। एक बार जब मुनि प्रातःकाल गंगा-स्नान करने चले गए, तब इन्द्र अहिल्या की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसके पास आया। उसने गौतम ऋषि का रूप धारण करके अहिल्या का धर्म नष्ट किया। ज्यों ही वह बाहर निकल रहा था, मुनि वहाँ आ पहुँचे और इन्द्र को शाप दिया कि तेरे सहस्र भग हो जायँ और अहिल्या को शाप दिया कि तू पत्थर हो जा। यह सुनकर उसने बड़ी प्रार्थना की। तब गौतमजी ने कहा—'जब त्रेता में श्रीरामचन्द्रजी के कमल-चरणों की धूल तेरे ऊपर पड़ेगी, तब तेरा उद्धार होगा।' इससे वह पत्थर हो गई और श्रीरामचन्द्रजी ने उसे त्रेता मे मुक्ति दी।

अम्बरीष

सूर्य-वंश में एक राजा नाभाग थे। अम्बरीष उन्हीं के पुत्र थे। अम्बरीष बड़े तपस्वी थे। उनकी रानी भी बड़ी पतिव्रता और धार्मिक भाव वाली थी। एक समय द्वादशी के दिन दुर्वासा ऋषि अट्ठासी हजार ऋषियों को साथ लेकर

अम्बरीष के द्वार पर आये और उन्होंने राजा से भोजन माँगा। अम्बरीष ने ऋषि का स्वागत किया और उन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित किया। दुर्वासा ने कहा—'हम स्नान करके आते हैं, तब भोजन करेंगे।'

वे तो ऋषियों के साथ स्नान करने चले गए। इधर द्वादशी का समय बीत रहा था। दुर्वासा के आने में देरी होती देखकर अम्बरीष ने ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर जल पी लिया। इतने ही में दुर्वासा आ पहुँचे। जब उनको यह मालूम हुआ कि राजा ने अतिथियों को भोजन कराने के पहले ही जल ग्रहण कर लिया है, तब वे क्रोध से जल उठे। उन्होंने जटा से एक बाल निकाला और उसे पृथ्वी पर पटक दिया। उससे एक स्त्री प्रकट हुई। उसका नाम कृत्या था। मुनि की आज्ञा पाकर वह राजा को मारने दौड़ी।

भगवान् को अपने निरपराध भक्त का यह अपमान बहुत बुरा लगा। उन्होंने अम्बरीष की रक्षा के लिए सुदर्शन-चक्र को आज्ञा दी। सुदर्शन-चक्र दुर्वासा को मारने दौड़ा। दुर्वासा प्राण लेकर भागे। भागते-भागते वे ब्रह्मा के पास गये, शिव के यहाँ गये, पर चक्र से उनको बचाने के लिए कोई तैयार न हुआ। तब दुर्वासा 'पाहि माम्' 'पाहि माम्', कहते हुए विष्णु के चरणों पर जा गिरे। विष्णु ने कहा—'मैं तो भक्त के अधीन हूँ। तुम अम्बरीष के पास जाओ, वही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं।'

दुर्वासा दौड़कर अम्बरीष के पास आये। अम्बरीष को मुनि की दशा पर बड़ी दया आई। उन्होंने सुदर्शन-चक्र को शान्त किया और फिर मुनि से कहा—'कृपा करके चलकर भोजन ग्रहण कीजिये। आपके चले जाने के बाद अभी तक किसी ने खाया-पिया नहीं।' दुर्वासा ने चुपचाप जाकर भोजन किया और फिर अम्बरीष की प्रशंसा करते हुए वे वहाँ से चले गए।

अन्ध तापस

तापस अन्ध स्राप सुधि आई। कौशल्यहि सब कथा सुनाई।

अयोध्या के पास ही, सरयू-तट पर, एक अन्धा तपस्वी अपनी स्त्री और पुत्र के साथ रहता था। एक दिन राजा दशरथ शिकार खेलने गये थे। उस समय तापस अन्ध का लड़का श्रवणकुमार अपने अन्धे माँ-बाप के लिए सरयू नदी में पानी भरने गया था। जब उसने घड़ा डुबोया, तब उससे ऐसे जोर की आवाज आई कि राजा ने समझा कि कोई हाथी चिंघाड़ रहा है। उन्होंने बिना देखे ही ऐसा बाण मारा कि वह श्रवणकुमार के मर्मस्थल में घुस गया। वह घायल होकर गिर पड़ा। उसने चिल्लाकर कहा—'हाय! मुझ निरपराध को किसने मारा? हाय! मेरे अन्धे माता-पिता का कोई सहारा नहीं है। वे

तड़प-तड़पकर मर जायँगे।'

जब राजा ने यह सुना तो शीघ्र ही वह कुमार के पास पहुँचे और उसके मर्मस्थल से बाण निकाल कर उससे क्षमा की प्रार्थना करने लगे। उसने कहा—'हे महाराज! आपने अज्ञानवश ऐसा किया है, अतः जाकर मेरे माता-पिता को जल पिलाइए और उनसे क्षमा की प्रार्थना कीजिये; नहीं तो वे शाप दे देंगे।' इतना कहकर वह तो स्वर्गगामी हुआ और राजा जल लेकर तापस अन्ध के पास पहुँचे। तापस अन्ध ने पैरों की आहट पाकर पूछा—'हे पुत्र! आज तुमने इतना विलम्ब क्यों किया? तुम्हारी माता बहुत व्याकुल हो रही है। हे पुत्र! आज बोलते क्यों नहीं हो?'

यह सुनकर महाराज दशरथ ने सारा हाल कह सुनाया और क्षमा-प्रार्थना की। मुनि ने कहा—'हे महाराज! हमे श्रवण के पास ले चलिये ताकि हम लोग अन्तिम बार उससे मिल लें। और चूंकि आपने बिना जाने ऐसा किया है इससे आपको ब्रह्म-हत्या नहीं लगेगी, पर जिस प्रकार पुत्र-वियोग से हम मर रहे है, उसी प्रकार आप भी पुत्र-वियोग से प्राण छोड़ेंगे।'

इतना कहकर वे दोनों स्वर्गवासी हो गए, और महाराज दशरथ घर लौट आए। इसी कारण महाराज दशरथ ने भी राम के वियोग मे शरीर-त्याग किया।

कद्रू

कद्रू बिनतहि दीन्ह जस तुमहि कौसिला देव।

कश्यप मुनि के दो स्त्रियाँ थीं—कद्रू और विनता। कद्रू के लड़के सर्प थे और विनता के अरुण और गरुड़। एक दिन कद्रू ने विनता से पूछा—'हे विनते! सूर्य के घोड़े सफेद है या काले?' विनता ने कहा—'मुझे तो सफेद दिखलाई देते है।' पर कद्रू ने कहा—'काले।' दोनों मे यह बात तय हुई कि यदि काले हों, तो विनता कद्रू की दासी बने और यदि श्वेत हों, तो कद्रू विनता की।

कद्रू ने अपने पुत्र सर्पो से कहा—'हे पुत्र! जाओ, सूर्य के घोड़ों की पूँछ में लिपट जाओ, जिससे विनता मेरी दासी बने।' पर सर्पो ने यह स्वीकार न किया। तब कद्रू ने शाप दिया कि जन्मेजय के राज्य में तुम्हारा नाश हो जायगा। इतने में करकोटक नामक साँप ने घबराकर कहा—'हे माता! मै जाकर घोड़ों से लिपट जाता हूँ और तुम और विनता देखने आओ।'

कद्रू और विनता घोड़ों को देखने गईं। वहाँ उन्हें घोड़ों की पूँछ काली दिखाई पड़ी। इसलिए विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा।

कश्यप

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता ।

ये ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के पुत्र थे । जब वे प्रजापति हुए, तो अपनी भार्या अदिति के साथ तपस्या करने निकल गए । इनकी कठिन तपस्या से भगवान् विष्णु बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'हम आपसे प्रसन्न है, जो इच्छा हो, वरदान माँगिये ।' उन्होंने यह वरदान माँगा कि आप ही मेरे पुत्र हों । भगवान् ने कहा—'एवमस्तु । मै त्रेता मे अवतार लूँगा और आप दोनों दशरथ और कौशल्या के नाम से प्रसिद्ध होंगे, तब मै आपके यहाँ प्रकट हूँगा ।' इसीलिए कश्यप महाराज दशरथ के नाम से अयोध्यापति हुए ।

कैकेयी

कैकेयी भव तन अनुरागे । पाँवर प्रान अघाहि अभागे ।

राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी । इनमें कैकेयी अधिक रूपवती होने के कारण महाराज को बहुत प्यारी थी । एक बार देवासुर-संग्राम छिड़ा, तो इन्द्र ने राजा दशरथ को सहायता देने के लिए बुलाया । महाराज कैकेयी को भी साथ लेकर देव-रक्षा के लिए गए । जब वे राक्षसों से युद्ध करने मे तन्मय थे, तब अकस्मात् उनके रथ के पहिए की धुरी टूट गई । कैकेयी ने अपने स्वामी की रक्षा के लिए धुरी की जगह अपना हाथ डाल दिया और धीरता-पूर्वक खड़ी हो गई । जब महाराज असुरों का सहार कर चुके, तो उन्हें कैकेयी का यह अद्भुत पराक्रम देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने प्रसन्न होकर रानी से कहा—'मै तुम्हें दो वर देना चाहता हूँ; जो चाहो माँग लो ।' उसने कहा—'मेरे दोनों वरदान आप धरोहर की तरह रखे रहें, जब मुझे आवश्यकता होगी, माँग लूँगी ।' वही दोनों वरदान कैकेयी ने राजा दशरथ से माँगे, जिससे श्रीरामचन्द्र को वनवास हुआ ।

गज

गनिका अजामिल गीध ब्याध गजादि खल तारेउ घना ।

प्राचीन काल में एक राजा था, जिसका नाम इन्द्रद्युम्न था । शाप से वह गज हो गया । क्षीर-सागर में त्रिकूट नाम का एक पर्वत है, जिस पर एक बहुत बड़ा सरोवर है । यह मत्त गज हथिनियों के साथ वहीं आकर जल-क्रीड़ा किया करता था । एक दिन एक ग्राह (मगर) ने, जो प्राचीन काल में हूहा नामक गन्धर्व था और जो शाप से मगर हो गया था, आकर जल में इस गज का पैर पकड़ लिया । दोनों मे एक हजार वर्ष तक युद्ध होता रहा । अन्त मे गजेंद्र व्याकुल हो गया और भगवान् की स्तुति करने लगा । उसकी आर्त्त वाणी

सुनकर भगवान् को बड़ी दया आई और उन्होंने गज और ग्राह दोनों को मुक्त किया। ग्राह अपनी लीक को चला गया और गजेन्द्र भगवान् का पार्षद हो गया।

गणिका

गनिका अजामिल गीध ब्याध गजादि खल तारेउ घना।

सतयुग मे एक वैश्य था। उसका नाम परशु था। जवानी ही मे दमे की बीमारी से वह मर गया। उसकी स्त्री का नाम जीविन्ती था। पति के मर जाने पर वह वेश्या-वृत्ति करने लगी। उसने एक सुग्गा पाला था। वह उसे पुत्र की तरह प्यार करती थी, और प्रत्येक दिन उसे राम-नाम पढ़ाया करती थी। उसी नाम-जप के प्रभाव से वह तर गई।

गरुड़

होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवइ चह कृपानिधाना।

यह कश्यप के पुत्र, विनता के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। यह विष्णु भगवान् के वाहन थे। एक बार कागभुशुण्डि ने मोहवश श्रीरामचन्द्रजी के हाथ से पूरी का टुकड़ा छीन लिया और वे वहा से भाग गए। भगवान् ने गरुड़ को याद किया। वे शीघ्र ही आ पहुँचे। उन्होंने भुशुण्डि से घोर युद्ध किया। अन्त में भुशुण्डि को परास्त होकर भगवान् की शरण में आना पड़ा। शरणागत भुशुण्डि की भगवान् ने रक्षा की। तभी से गरुड़ के मन मे अहङ्कार उत्पन्न हुआ था।

गालव

हठ बस सब सकट सहे गालव नहुष नरेस।

यह मुनि विश्वामित्र के शिष्य थे। एक बार धर्म विश्वामित्र की परीक्षा के लिए वसिष्ठ का रूप बनाकर उनके आश्रम मे आया। उस समय विश्वामित्र भोजन बना रहे थे। धर्म ने भी क्षुधार्त्त होकर भोजन की इच्छा प्रकट की। पर उन्हें भोजन बनाने में देर हो रही थी, अतः धर्म ने जाकर दूसरे तपस्वियों के यहाँ क्षुधा-निवारण कर लिया।

इसके बाद विश्वामित्र गर्म अन्न लिये हुए धर्म के पास आए। धर्म ने कहा--'म तो भोजन कर चुका हूँ, आप अब यहीं खड़े रहिये।' उनकी आज्ञा-नुसार, उनके आने की प्रतीक्षा करते हुए सिर पर भोजन का पात्र रखकर विश्वामित्र वहीं १०० वर्ष तक वायु-भक्षण करते हुए, अचल खड़े रहे। फिर धर्म उसी वेश मे वहाँ आया और भोजन करके बोला--'हे ब्रह्मर्षि! मै अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ।' उसी दिन से ब्रह्मर्षि की उपाधि पाकर विश्वामित्र बड़े

प्रसन्न हुए। जब वे भोजन लेकर खड़े थे, तब उनके शिष्य गालव मुनि ने उनकी बड़ी सेवा की थी। इससे प्रसन्न होकर ब्रह्मर्षि ने कहा—'हे पुत्र! जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, जाओ।' गालव ने हठपूर्वक कहा—'गुरु-दक्षिणा में मुझे कौन सी-वस्तु देनी होगी? कृपा करके कहिए।' विश्वामित्र ने आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे। गालव अपने मित्र गरुड़ को साथ लेकर राजा ययाति के पास माँगने गए। उसने उन्हें अपनी बेटी माधवी को सौंपकर कहा—'जो इसके साथ एक पुत्र उत्पन्न करे, वह दो सौ श्यामकर्ण घोड़े दे। इस प्रकार आप चार राजाओं के पास इसे ले जायँगे, तो आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े आपको मिल जायँगे।' निदान गालव मुनि ने माधवी को ले लिया और क्रमशः उसे राजा हर्यश्व, दिवोदास और उशीनर के पास ले गए और उन्होंने एक-एक पुत्र उत्पन्न करके दो-दो सौ घोड़े दिए। इस प्रकार छः सौ घोड़े हो गए। जब और राजा न मिला, तो गालव मुनि ने छः सौ श्यामकर्ण घोड़े और माधवी को लाकर अपने गुरु विश्वामित्र को दिया। मुनि ने उससे एक पुत्र उत्पन्न किया। इस प्रकार ब्रह्मर्षि ने उन्हें गुरु-दक्षिणा से मुक्त किया।

गंगावतरण

गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।

प्राचीन काल में अयोध्या में सगर नाम का एक राजा था। उसके दो रानियाँ थीं—केशिनी और सुमति। उसको सब प्रकार का सुख था, पर कोई सन्तान न थी। अतः वह अपनी दोनों रानियों को लेकर हिमालय के एक प्रदेश में जाकर तप करने लगा। तप के प्रभाव से उसकी बड़ी रानी केशिनी के गर्भ से असमंजस नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ और छोटी रानी सुमति के सात हज़ार पुत्रों का एक तुम्बा उत्पन्न हुआ, जिसमें से कुछ कालोपरान्त सब बालक निकले। वे सब घृत के कुण्ड में रखकर पाले-पोसे गए। सब बड़े हुए। असमंजस बड़ा निर्दयी और क्रूर था। वह लड़कों को पकड़-पकड़कर सरयू में फेंक देता था। राजा सगर ने उसे देश से बाहर निकाल दिया। उसके अंशुमान नाम का एक बड़ा सुन्दर और सुशील पुत्र उत्पन्न हुआ। जब राजा सगर हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतों के बीच में यज्ञ कर रहा था, तो अंशुमान घोड़े की रखवाली पर था। इन्द्र उस घोड़े को हर ले गया और रसातल में कपिल मुनि के पीछे घोड़े को बाँध आया।

सगर ने अपने साठ हज़ार पुत्रों को घोड़े का पता लगाने की आज्ञा दी। उन्होंने साठ हज़ार योजन भूमि को खोद डाला और अन्त में वे वहाँ पहुँचे जहाँ कपिल मुनि के पीछे घोड़ा बँधा था। यह देखकर उन्होंने उन्हीं को चोर

समझा और उन्हें 'चोर-चोर' कहकर पकड़ लिया। इससे कपिल ने क्रोध से हुंकार किया और वे सब वहीं जलकर भस्म हो गए।

जब वे बहुत दिन बीत जाने पर भी नहीं लौटे, तब अंशुमान उन्हें खोजने निकला और वहाँ पहुँचा, जहाँ वे सब जले पड़े थे। उन्हें वह जल देना चाहता था, पर कहीं जलाशय न मिला। तब गरुड़ ने बतलाया कि गंगा के जल से ये तरेंगे। अंशुमान ने घोड़े को लाकर महाराज सगर को दिया। सगर ने यज्ञ पूरा किया और थोड़े दिन बाद वह परलोकगामी हुआ। तब अंशुमान राजा हुआ। उसके बाद उसका पुत्र दिलीप राजा हुआ। दिलीप ने भी गंगा को लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उसकी मृत्यु के बाद उसका धर्मात्मा पुत्र भगीरथ राज-सिंहासन पर बैठा। उसने राज्य मन्त्रियों को सौंप दिया और स्वयं गोकर्ण में जाकर गंगा लाने के लिए कठिन तपस्या करने लगा। उसकी तपस्या से ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने गंगा-जल और पुत्र का वरदान दिया। फिर भागीरथ ने शंकर की तपस्या की और उन्हें गंगा को धारण करने को बाध्य किया। जब गंगा वेग से गिर रही थीं, तो वे शिवजी की जटा में लुप्त हो गईं। फिर भागीरथ ने शिवजी से गंगा-जल माँगा और गंगाजी का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे उनके पितर स्वर्ग को सिधारे।

चित्रकेतु

चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।

चित्रकेतु शूरसेन देश का चक्रवर्ती राजा था। उसके एक करोड़ रानियाँ थीं, पर किसी से भी कोई सन्तान नहीं थी। इससे राजा को बड़ी चिन्ता रहा करती थी। उसने अपनी इच्छा अंगिरा ऋषि से प्रकट की। उन्होंने यज्ञ किया और उसकी बड़ी पटरानी कृतद्युति को चरु खिलाया, जिससे एक बड़ा प्रतापी और सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। अंगिरा ने यह बात पहले ही बता दी थी कि लड़का हर्ष और शोक दोनों का देने वाला होगा। हुआ भी ऐसा ही। क्योंकि उस पुत्र के उत्पन्न होने से राजा बड़ी पटरानी से अधिक प्रेम करने लगा। यह देखकर और रानियों को ईर्ष्या होने लगी। इसलिए एक दिन उन्होंने मिलकर कुमार को विष दे दिया और वह मर गया।

जब राजा ने लड़के को मरा हुआ देखा, तो वह भी व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इतने में अंगिरा और नारद मुनि भी आ पहुँचे। उन्होंने राजा को बताया कि पुत्र, पौत्र, धन और अनेक ऐश्वर्य सभी दुःखदायी हैं। नारदजी ने राजा को शेष भगवान् की विद्या दी। और सबके सामने ही उन्होंने मृत कुमार से कहा—'हे जीवात्मा! उठ, अपने माता-पिता को

सुखी कर।' तब वह शरीर मे प्रवेश करके बोल उठा—'संसार में न तो मेरा कोई पिता है और न कोई माता। सब अपने-अपने स्वार्थ के साथी है। इसलिए मेरे शरीर से किसी का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अत. मेरे लिए माता-पिता को शोक कदापि न करना चाहिए।'

यह सुनकर राजा चित्रकेतु का अज्ञान जाता रहा और उसका शोक दूर हो गया। पापिनी रानियों ने भी प्रायश्चित्त किया। नारद ने ज्ञानी राजा चित्रकेतु को संकर्षण मन्त्र दिया। इससे उसने सकर्षण भगवान् से वरदान पाया और कृतार्थ हो गया। नारदजी के उपदेश से राजा विद्याधर हो गया। पार्वती ने इसी को शाप दिया था, जिससे वह वृत्रासुर नामक दैत्य हुआ।

चन्द्रमा

ससि गुरु तियगामी नहुष चढेउ भूमिसुर यान।

एक बार त्रिलोक को जीतकर चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ किया। इससे उसे बड़ा घमण्ड हुआ। उसने जबरदस्ती गुरु बृहस्पति की भार्या तारा को छीन लिया। इस पर बड़ा घोर युद्ध हुआ, जिसमे दैत्यों ने चन्द्रमा की बड़ी मदद की। अन्त मे ब्रह्मा ने मध्यस्थ होकर चन्द्रमा को डाटा-डपटा। चन्द्रमा ने बृहस्पति की स्त्री उसे लौटा दी। पर उसके गर्भ था। ब्रह्मा ने, जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसे चन्द्रमा को दिला दिया, क्योंकि यह उसी का वीर्य था। अधिक प्रतिभावान् तथा बुद्धिमान् होने के कारण उस लड़के का नाम बुध रखा गया।

तपस्विनी

तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मै अब जाव जहाँ रघुराई।

विश्वकर्मा के एक कन्या थी, जिनका नाम हेमा था। उसने अपने नृत्य से महादेव को प्रसन्न कर लिया था, जिससे उसने दिव्य स्थान पाया। वह दिव्य नामक गन्धर्व की कन्या स्वयंप्रभा के साथ रहा करती थी। जब वह ब्रह्म-लोक को जा रही थी, तब उसने स्वयंप्रभा से कहा—'जब त्रेता में रामचन्द्र के दूत यहाँ आयँगे, तब तुम उनका सत्कार करना और राम का दर्शन करना। इससे तुम्हें परमपद मिलेगा।'

ताड़का

चले जात मुनि दीन्ह दिखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।

प्राचीन काल मे सरयू और गङ्गा के संगम पर देवताओं के द्वारा बनाए हुए दो देश 'मल्द' और 'करुष' थे। सुन्द वहाँ का राजा था। उसी समय सुकेतु नाम का एक वीर यक्ष था, जिसके कोई सन्तान न थी। उसने तप करके

ब्रह्मा से वरदान पाया, जिससे उसके ताड़का नाम की अति सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। उसमें सहस्र हाथियों का बल था। युवती होने पर ताड़का का ब्याह सुकेतु ने सुन्द के साथ कर दिया। जब अगस्त्य मुनि के शाप से सुन्द मारा गया, तब ताड़का क्रोधित होकर अपने पुत्र मारीच को लेकर मुनि को खाने दौड़ी। इस पर मुनि ने मारीच को शाप दिया कि तुम भयंकर राक्षस होओ और ताड़का से कहा—'तू पुरुषों को खाने वाली तथा भयानक रूप वाली हो जा।' इससे वह अगस्त्य मुनि के आश्रम को नष्ट किये डालती थी। तब विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आकर राम-लक्ष्मण को माँग ले गए और उन्होंने उस स्त्री ताड़का का वध किया।

त्रिशंकु

सहसबाहु सुरनाथ त्रिशकू। केहि न राजपद दीन्ह कलंकू।

महाराज त्रिशंकु इक्ष्वाकुवंशी राजा थे। जब महर्षि विश्वामित्र ब्रह्मर्षि पद के लिए वन में अपनी स्त्री के साथ कठिन तपस्या कर रहे थे, तब त्रिशंकु ने अपने पुरोहित महात्मा वशिष्ठ से कहा—'हे गुरुवर! मैं सदेह स्वर्ग जाना चाहता हूँ। आप कोई उपाय बताइए।' यह सुनकर वशिष्ठजी ने उत्तर दिया कि ऐसा होना असम्भव है। तब वह उनके पुत्रों के पास गया। उन्होंने भी जवाब दे दिया। तब राजा ने कहा—'अच्छा, अब मैं किसी तीसरे के पास जाता हूँ। आपका कल्याण हो। यह अनादर वचन सुनकर वशिष्ठजी के पुत्रों ने शाप दिया कि 'तुम चाण्डाल हो जाओ।'

रात बीतने पर वह सचमुच भयंकर वेश वाला चाण्डाल हो गया। वह घबराकर विश्वामित्र के पास गया। विश्वामित्र ने उसकी इच्छा जानकर यज्ञ करके उसे सदेह स्वर्ग भेज दिया। पर जब वह वहाँ पहुँचा, तो इन्द्र ने उसे उसी क्षण लौटा दिया। उसने ऋषि की दुहाई दी। ऋषि ने उसे वहीं 'तिष्ठ-तिष्ठ' अर्थात् 'ठहर-ठहर', कहकर रोक दिया। उसे वहीं उल्टा ही रोककर विश्वामित्र ने दक्षिण की ओर सप्तर्षियों और नक्षत्रों की रचना प्रारम्भ की। देवताओं ने भयभीत होकर उनसे प्रार्थना की। तब उन्होंने कहा—'मैंने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने की प्रतिज्ञा की है, इस वास्ते हमारे बनाए नक्षत्र तारे और सप्तर्षि उसके चारों ओर घूमते रहेंगे।' देवताओं ने इसे स्वीकार कर लिया।

दधीचि

सिवि दधीचि हरिचन्द नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा।

एक बार इन्द्र ने बृहस्पति का भरी सभा में अपमान किया, इससे उन्हें

बड़ा दुःख हुआ और वे इन्द्र से रूठ गए। यह समाचार पाकर दैत्यराज वृषपर्वा ने देव-लोक पर चढ़ाई कर दी। इन्द्र डरकर ब्रह्मा के पास आया। ब्रह्मा ने कहा—'हे सुरेन्द्र! अब तुम त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को अपना पुरोहित बनाओ, जिससे तुम्हारा कल्याण हो।' इन्द्र ने ऐसा ही किया। विश्व-रूप ने इन्द्र को नारायण कवच सिखला दिया, जिससे कोई अस्त्र-शस्त्र उसके शरीर पर प्रभाव न कर सके।

इन्द्र ने राज्य पाने पर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। विश्व-रूप भी साथ-साथ यज्ञ में आहुति देने लगे। वे मन में दैत्यों के नाम पर भी एक आहुति देते जाते थे। इन्द्र को यह मालूम हो गया। उसने उसका सिर काट डाला। इससे इन्द्र को ब्रह्म-हत्या लगी। ब्रह्मा ने हत्या को चार हिस्सों में बाँटा, एक पृथ्वी को दिया, जिससे पृथ्वी जहाँ-तहाँ ऊसर हो गई। दूसरा वृक्षों को दिया, जिससे उनमें लाही और गोंद लगने लगा। तीसरा भाग स्त्रियों को दिया, जिससे वे तीन दिन तक रजस्वला रहती हैं और चौथा भाग जल को दिया, जिससे उसमें काई लगती है।

पुत्र के मरने का समाचार पाकर त्वष्टा ने अत्यन्त क्रोध करके हवन आरम्भ किया। कुछ दिन के बाद वृत्रासुर नामक दैत्य उत्पन्न हुआ। त्वष्टा ने उससे कहा कि तुम इन्द्र को मारो। उसकी आज्ञा पाकर वह इन्द्र के पास पहुँचा और उसे उसने ललकारा। इन्द्र भयभीत होकर ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्मा ने कहा—'जो दधीचि की हड्डी का वज्र बनाओ, तो दैत्य मारा जाय। इन्द्र दधीचि के पास आया और हड्डी की याचना की। दधीचि ने उसे सहर्ष हड्डी दे दी। इससे भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें मुक्ति दी।

दण्डक

दण्डक बन प्रभु पावन करहू। उग्र साप मुनिबर कै हरहू।

सतयुग में राजा मनु सारी पृथ्वी के ऊपर शासन करते थे। वे अपने पुत्र इक्ष्वाकु को सारा राज्य सौंपकर ब्रह्मलोक को चले गए। इक्ष्वाकु बड़े धर्मात्मा तथा प्रजा-पालक राजा थे। वंश-वृद्धि के लिए उन्होंने अनेक दान-तप किये, जिससे उनके देव-तुल्य सौ पुत्र उत्पन्न हुए। सबसे छोटे लड़के का नाम दण्ड था। वह बड़ा क्रूर और दुराचारी था, इसलिए महाराज ने उसे विन्ध्याचल और नीलगिरि के मध्य-प्रान्त का राज्य सौंपा। उसकी राजधानी का नाम मधुमत्त था।

एक दिन वसन्त-ऋतु में घूमता हुआ वह अपने गुरु भार्गव (शुक्राचार्य) के आश्रम के पास पहुँचा। वहाँ उसने उनकी ज्येष्ठ पुत्री 'अरजा' को देखा, जो

बड़ी सुन्दरी थी। राजा दण्ड उस पर मुग्ध हुआ और उसने उसके साथ बुरा कर्म करना चाहा, पर जब वह राजी न हुई तो उसने उसके साथ बलात्कार किया।

कुमारी अरजा ने जाकर राजा दण्ड की अनीति अपने पिता से कह सुनाई। शुक्राचार्य ने यह सुनकर शाप दिया—'हे दंड ! जा, तू सात रात के अन्दर पुत्र, सेना और वाहनों-सहित नष्ट हो जा। इन्द्र सौ योजन तक धूल और पत्थर बरसाकर तेरे राज्य को नष्ट कर दे और वहाँ के रहने वाले सभी स्थावर-जंगम जीव इस वृष्टि से नष्ट हो जायँ।'

इसके बाद मुनि ने वहाँ के आश्रमवासियों को उस जंगल से बाहर जाने की आज्ञा दी। सब लोग चले गए और वह वन 'दण्डकारण्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब श्रीरामचन्द्रजी अत्रि के आश्रम से आगे चलकर उसमें प्रविष्ट हुए, तब ऋषि का शाप शमन हुआ।

दुन्दुभि

दुन्दुभि अस्थि ताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये।

दुन्दुभि एक राजा था। किष्किन्धा के राजा बालि ने उसे मार डाला और ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिया। इसी पर्वत पर मतंग ऋषि का आश्रम था। जब उन्होंने रक्त देखा तब क्रुद्ध होकर शाप दिया कि यदि बालि यहाँ आयगा, तो उसका मस्तक फट जायगा और वह मर जायगा। इसी कारण बालि ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं जाता था।

दुर्वासा

लोकहु वेद विदित इतिहासा। यह महिमा जानहि दुरबासा।

ये अत्रि मुनि के पुत्र थे। इन्होंने और्व मुनि की कन्या कन्दली से यह कहकर ब्याह किया कि मैं इसके सौ अपराध क्षमा करूँगा। जब उसने १०१ अपराध किये, तो दुर्वासा ने उसे शाप देकर भस्म कर डाला। इससे उसके पिता बहुत क्रुद्ध हुए और उसने भी शाप दिया कि तुम्हारा अहंकार नष्ट हो जाय।

एक बार दुर्वासा अयोध्या के सूर्यवंशीय राजा अम्बरीष के पास गए। वह बड़ा धर्मात्मा राजा था। वह वैष्णव था। उसने एकादशी का व्रत किया था, इसलिए उस दिन पारण की तैयारी में था कि इतने में दुर्वासा वहाँ अतिथि-स्वरूप आ पहुँचे। उसने उन्हें निमन्त्रित किया। वे स्नान करने गए। वहाँ उन्होंने इतनी देरी लगाई कि पारण का समय व्यतीत होने लगा। तब राजा ने जल पीकर पारण कर लिया। जब दुर्वासा लौटकर आए और उन्हें मालूम

हुआ कि राजा ने जल पी लिया है, तब उसका नाश करने के लिए उन्होंने कृत्या प्रकट की। पर चक्र-सुदर्शन अम्बरीष के शरीर का रक्षक था, इसलिए उसने अपने तेज से कृत्या को भस्म कर दिया। वह फिर दुर्वासा पर झपटा। दुर्वासा ब्रह्मा, शिव और विष्णु के पास गए, पर किसी ने भी उनकी रक्षा नही की। तब वे राजा ही की शरण में आए। राजा ने चक्र-सुदर्शन की स्तुति की और उसे शान्त किया। तब दुर्वासा भगवद्-भक्तों की प्रशंसा करते हुए अपने स्थान को चले गए।

ध्रुव

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ।

मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद के दो रानियाँ थीं। एक का नाम था सुनीति और दूसरी का सुरुचि। ध्रुव का जन्म बड़ी रानी सुनीति से हुआ था। राजा छोटी रानी सुरुचि को अधिक प्यार करता था। सुरुचि के लड़के का नाम उत्तम था।

एक दिन राजा उत्तम को गोद मे बैठाए हुए था कि इतने में ध्रुव भी वहाँ खेलता हुआ आ पहुँचा। राजा ने उसे भी गोद मे लेने की इच्छा की। इतने मे सुरुचि ने कहा :

'हे बालक ! तू राजपुत्र तो है, पर मेरे गर्भ से उत्पन्न नहीं हुआ। अतः राजा की गोद में नहीं बैठ सकता। यदि तू राजा की गोद में बैठना चाहता है, तो जाकर भगवान् की तपस्या कर और वरदान माँग कि तेरा जन्म मेरे गर्भ से हो, जिससे राजा की गोद में बैठ सके।'

विमाता के ये कटु वचन सुनकर बालक ध्रुव अपनी माता के पास आया और उसने सारा हाल कह सुनाया। माता ने यह सुनकर कहा—'हे बेटा ! तुम्हारी विमाता ने जो कुछ कहा है, ठीक ही है। अतः जाकर भगवान् की आराधना करो, वे ही तुम्हारा दुःख दूर कर सकते है।'

माता की आज्ञा पाकर ध्रुव तपस्या करने के लिए वन में चला गया। उसने बड़ी कठिन तपस्या की, जिससे भगवान् विष्णु बड़े प्रसन्न हुए, और उन्होंने उसे वरदान दिया—'हे राज-पुत्र ! मै तेरा संकल्प जानता हूँ, तेरा कल्याण होगा। जिस पद को आज तक कोई नहीं पा सका, जिसके चारों ओर सप्तर्षि, ग्रह, नक्षत्र आदि परिक्रमा करते है और जिसका आज तक नाश नहीं हुआ, वह स्थान मै तुझे देता हूँ। उससे फिर आवागमन नहीं होता। तू छत्तीस हज़ार वर्ष तक राज्य करके फिर उसी स्थान पर पहुँच जायगा। इतना कहकर भगवान् अन्तर्द्धान हो गए और ध्रुव आकर अपने पिता से राज्य

लेकर छत्तीस हज़ार वर्ष तक राज करता रहा। अन्त में वह परम पद को पहुँच गया।

नल-नील

नाथ नील नल कपि दोउ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई।

एक बार जब मुनि लोग समुद्र-तट पर शालिग्राम की मूर्ति पूजकर आँख मूँदकर ध्यान करने लगे, तब इन दोनों भाइयों ने शालिग्राम को उठाकर समुद्र में फेक दिया। इस पर ऋषियों ने शाप दिया कि तुम्हारे छुए हुए पत्थर पानी में नहीं डूबेंगे। इसीसे नल-नील सेतु की रचना कर पाए थे।

नहुष

ससि गुरु तियगामी नहुष चढेउ भूमिसुर यान।

नहुष अयोध्यापति इक्ष्वाकुवंशी राजा अम्बरीष का पुत्र और ययाति का पिता था। एक बार जब इन्द्र ने तपस्वी ब्राह्मण वृत्रासुर को मार डाला, तब ब्रह्म-हत्या उसके पीछे लग गई। इन्द्र चारों ओर घूमता-फिरता था, उसे कहीं शरण न मिली। अन्त में वह ईशान कोण में मानस-सरोवर मे घुसकर एक हजार वर्ष तक कमल-नाल के तन्तुओं में छिपा रहा और हत्या से छूटने का उपाय सोचने लगा।

इधर सुर-गुरु बृहस्पति ने इन्द्रासन खाली देखकर सर्वगुण-सम्पन्न, विद्या और बल से पूर्ण राजा नहुष को इन्द्र बनाया। एक दिन नहुष ने इन्द्र की पत्नी शची के ऊपर मुग्ध होकर उसे अपने पास बुलाना चाहा। इन्द्राणी ने कहला भेजा कि यदि आप पालकी पर बैठकर सप्तर्षियों को कहार बनाकर मेरे पास आयँ, तो मै सहर्ष आपकी पत्नी बन जाऊँगी। नहुष ने इसे स्वीकार कर लिया और जब वह चला जा रहा था, तो रास्ते मे उसने अगस्त्य मुनि से कहा : 'सर्प','सर्प' अर्थात् जल्दी चलो, जल्दी चलो। इससे रुष्ट होकर अगस्त्य ने शाप दिया कि 'जा तू मृत्यु लोक मे सर्प हो जा।'

इसलिए नहुष उसी क्षण पृथ्वी पर आकर सर्प हो गया। ब्राह्मणों ने इन्द्र को स्वर्ग में बुलाया और तमाम प्रायश्चित्त करवाकर उनको ब्रह्म-हत्या से छुटकारा दिलाया।

नारद

बालमीकि नारद घटजोनी। निज-निज मुखनि कही निज होनी।

नारदजी ने अपनी जीवनी स्वयं व्यासजी से इस प्रकार कही है—'मैं किसी दासी का पुत्र था, जो ऋषियों की सेवा किया करती थी। मैं ग़रीब होने के कारण उन्हीं ऋषियों की जूठन खाकर अपना निर्वाह कर लिया करता

था। जितेन्द्रिय बनकर मैं उनकी सेवा करने लगा और उनकी आज्ञा से एक ही बार भोजन किया करता था। इससे वे सब मुझसे बड़े प्रसन्न हुए। उनका जूठन खाने ही से मेरा अन्तःकरण पवित्र हो गया और मैं भगवद्-भक्ति में अनुरक्त हो गया। जब मैं पाँच वर्ष का हुआ, तब मेरी माता गाय दुहने जा रही थी कि इतने में एक साँप ने उसे काट लिया और उसका प्राणान्त हो गया। तब मैं उत्तर दिशा की ओर रवाना हो गया और एक गहन वन मे पहुँचा। वहाँ मैं तप करने लगा। पर ध्यान स्थिर भाव से नहीं रह सकता था। मैं विकल हो जाता था। समय पाकर मेरा भी प्राणान्त हुआ और कल्पान्त में जब भगवान् विष्णु क्षीर-समुद्र मे शयन कर रहे थे, ब्रह्मा के प्राण के साथ मेरी आत्मा का प्रादुर्भाव हुआ। जब ब्रह्मा सृष्टि रचने लगे, तो उनकी इन्द्रियों से मरीचि आदि के साथ मैं भी प्रकट हुआ। अब इस वीणा को लेकर हरि-गुण-गान करता हुआ सर्वत्र विचरता रहता हूँ। कहीं मेरी गति नहीं रुकती और हमेशा भगवान् मुझे हृदय में दर्शन दिया करते हैं।

परशुराम

परशुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोग सब साखी।

परशुराम जमदग्नि ऋषि के पुत्र थे। उनकी माता का नाम रेणुका था। उनके चार बडे भाई और थे। समन्वान, सुषेण, वसु और विश्वावसु। एक दिन उनकी माता गंगा तट पर जल लाने गई। वहाँ उसने राजा चित्ररथ को स्त्री के साथ जल-क्रीड़ा करते हुए देखा, वह मुग्ध हो गई और देर मे लौटी। इससे ऋषि बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि अपनी माता को मार डालो। पर प्रेमवश किसी की भी यह हिम्मत न पड़ी कि वह उसकी हत्या करे। केवल परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन किया और अपनी माता को मार डाला। इससे पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा—'हे पुत्र! वरदान माँगो।'

परशुराम ने कहा—'हे पिताजी! मुझे यही वरदान दीजिए कि मेरी माता पुनर्जीवित हो उठे और मैं दीर्घायु तथा अजेय होऊँ।'

पिता ने कहा—'ऐसा ही होगा।'

एक दिन कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ने आकर इनके पिता के हवन मे विघ्न डाला। इसलिए उन्होंने उसकी सहस्र भुजाओ को काट डाला। उसका बदला लेने के लिए उसके नौकरों ने जमदग्नि को मार डाला। तभी से इन्होंने पृथ्वी-भर के क्षत्रियों का नाश करने की प्रतिज्ञा की। जब समस्त पृथ्वी को क्षत्रिय-रहित कर दिया, तब उन्होंने एक अश्वमेध यज्ञ किया। तत्पश्चात् सारी

विजित पृथ्वी उन्होंने कश्यप को दान कर दी। तब कश्यपजी ने क्षत्रियों की रक्षार्थ इन्हें दक्षिण समुद्र की ओर भेज दिया।

प्रह्लाद

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू।

यह हिरण्यकश्यप के सबसे छोटे पुत्र थे। जब इनके पिता मन्दराचल पर तपस्या करने चले गए, तो देवताओं ने दैत्यों के ऊपर आक्रमण किया और उन्हें जीत लिया। जब इन्द्र इनकी माता कयाधु को कैद किये हुए चला जा रहा था, तो नारदजी ने इन्द्र से बतलाया था कि इसके गर्भ से एक बड़ा सुशील पुत्र उत्पन्न होगा, जो विष्णु का परम भक्त होगा। इससे इन्द्र ने उसकी माता को छोड़ दिया। नारदजी ने इनकी माता को धर्मोपदेश दिया, जिसे प्रह्लाद ने ध्यान से सुना।

जब प्रह्लाद उत्पन्न हुआ और पाँच वर्ष का हुआ, तो विद्योपार्जन के लिए पाठशाला में जाने लगा। पर वहाँ गुरु की शिक्षा पर कुछ ध्यान न देकर, वह सब लड़कों को भगवद्भक्ति और धर्मोपदेश करने लगा। इस पर गुरु शुक्राचार्य ने उसे बहुत पीटा और जब वह इतने पर भी न माना, तो उन्होंने उसके पिता से शिकायत की। पिता ने उसे बहुत समझाया कि 'बेटा! विष्णु की उपासना छोड़ दो, क्योंकि वह मेरा शत्रु है। तुम शिवजी का जप करो।' पर यह बात सुनकर प्रह्लाद उलटा अपने पिता को उपदेश देने लगा कि 'नहीं, आप विष्णु की उपासना कीजिए, क्योंकि वे सर्वश्रेष्ठ हैं।' इस पर पिता बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने बालक प्रह्लाद को जल में डुबवाया, पर्वत से गिरा दिया, हाथी से रौंदवाया और अन्य प्रकार की अनेकों यातनाएँ दीं, पर प्रह्लाद ने राम-नाम कहना नहीं छोड़ा। तब राजा ने अपनी बहन होलिका से कहा—'इसे गोद में लेकर अग्नि में बैठ जाओ, जिससे यह जल जाय और तुम किसी उपाय से बचा ली जाओगी।' होलिका ने ऐसा ही किया, पर होलिका जल गई और प्रह्लाद बच गए। इससे क्रुद्ध होकर पिता ने स्वयं उसे तलवार लेकर मारना चाहा, पर भगवान् नृसिंह अवतार धारण करके प्रकट हुए और सायंकाल के समय दहलीज के ऊपर भगवान् ने अपने नखों से उसका पेट फाड डाला। इस तरह उन्होंने प्रह्लाद की रक्षा की।

पृथुराज

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना।

पृथुराज राजा बेनु का पुत्र था। जब बेनु मर गया, तब देश में अराजकता फैल गई। तब पृथु राजा बनाया गया। यह बड़ा धर्मात्मा और भक्त था।

उसके समय में पृथ्वी पर खेती जोरों से होने लगी। वाणिज्य खूब बढ़ा-चढ़ा। सारे संसार में उसका प्रभुत्व छा गया। भारत का यह सार्वभौम प्रजा-तन्त्र-राज्य पहले-पहल इसी के राष्ट्रपतित्व में हुआ। इसीसे वसुन्धरा का नाम पृथ्वी पड़ा। इसने भगवान् से यह वर माँगा कि आपके चरित और सुयश सुनने के लिए मेरे कानों में दस हजार कानों की शक्ति हो जाय।

बलि

बलि बाँधत प्रभु बाढेउ सो तनु बरनि न जाय।

यह प्रह्लाद का पौत्र और बड़ा सत्यवादी, धर्मात्मा तथा दानी राजा था। उसने देवताओं को जीतकर स्वर्ग पर अपना अधिकार कर लिया, तब देव-माता अदिति बहुत व्याकुल हुई। उन्होंने व्रतादि से भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया। उन्हीं के गर्भ से भगवान् ने वामन अवतार लिया। जब उनका यज्ञोपवीत होने लगा, तो बलि ने सौ अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया, इसलिए वे यज्ञ-मंडप मे पधारे। बलि उनके तेज पर मुग्ध हो गया और उसने उनकी पूजा करके उनसे वर माँगने के लिए कहा। वामन ने तीन पैर पृथ्वी माँगी। यद्यपि शुक्राचार्य ने बहुत मना किया पर उसने जल लेकर तीन पैर पृथ्वी दान कर ही दी। भगवान् ने विराट् रूप धारण किया। एक पैर से उन्होंने पृथ्वी नाप ली और दूसरे पैर से स्वर्गादि लोक नाप लिये और तीसरे पैर के लिए जब कुछ न बचा, तब बलि ने एक पैर के बदले अपना शरीर नपा दिया। इससे वामन भगवान् उससे बड़े प्रसन्न हुए और उसे सुतल-लोक का राज्य देकर वहाँ से विदा किया और स्वर्ग देवताओं को दिला दिया।

बेनु

लोक बेद ते विमुख भा अधम को बेनु समान।

ध्रुव के वंश में कई पीढ़ी पीछे एक राजा था, जिसका नाम अंग था। वह बड़ा धर्मात्मा था, पर उसके कोई संतान न थी। इसलिए उसने यज्ञ कराया, जिससे एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम 'बेनु' था। यह बड़ा पापी था। खेलते हुए निरपराध बच्चों को पशुवत् मार डालता था। राजा ने उसे बहुत समझाया-बुझाया, पर उसने कुछ भी ध्यान न दिया। जब उसका अत्याचार अधिक बढ़ने लगा, तो राजा अंग अपनी स्त्री सुनीथा को साथ लेकर आधी रात को घर से निकलकर कहीं चला गया। तब ब्राह्मणों ने मिलकर बेनु का राज्याभिषेक कर दिया। उसने रथ पर बैठकर, चारों ओर घूमकर यह आज्ञा दी कि सब कोई यज्ञ, होम और दान-पुण्य बन्द कर दो, क्योंकि इससे कोई लाभ नहीं है। जो कुछ है, वह मै ही हूँ। तुम लोग मेरी ही पूजा करो।

ब्राह्मणों ने उसे बहुत समझाया, पर उसने एक न सुनी। तब सब ब्राह्मण बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने उसे मार डालना ही उचित समझा। इसलिए उन लोगों ने क्रोध करके उसे हुंकार शब्द से मार डाला।

ययाति

तनय जजातिहि जौबन दयऊ। पितु अग्या अघ अजस न भयऊ।

राजा नहुष के छ: पुत्र थे। उनमें एक का नाम ययाति था। जब इनके बड़े भाई ने राज्य लेना अस्वीकार किया, तो यही राजा हुए। इनके दो रानियाँ थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा। पहली शुक्राचार्य की पुत्री थी और दूसरी वृषपर्वा दैत्य की। शुक्राचार्य ने शर्मिष्ठा के साथ संभोग करने के लिए राजा को मना किया था। पर ऋतु-काल मे शर्मिष्ठा की प्रार्थना से इन्होंने संभोग कर लिया और उसे गर्भ रह गया। इससे देवयानी क्रुद्ध होकर अपने पिता के यहाँ चली गई। राजा भी उसके पीछे-पीछे उसे मनाते हुए गये। शुक्राचार्य ने सब हाल सुनकर शाप दिया—'हे राजा! तू बुड्ढा हो जा।' इस पर राजा ने उनसे प्रार्थना की कि आप यह वरदान दे, कि मैं किसी का यौवन लेकर फिर युवा हो सकूँ। उन्होंने कहा—'ऐसा ही होगा।'

शर्मिष्ठा के दो पुत्र थे—यदु और सुर्वसु। देवयानी से तीन पुत्र उत्पन्न हुए—द्रुह्यु, अनु और पुरु। जरा-ग्रस्त होने पर राजा ने अपने पुत्रों से यौवन माँगा, पर किसी ने भी नही दिया। केवल पुरु ने पिता की आज्ञा का पालन किया। इसलिए जब राजा ययाति सब सुख भोग चुके, तब उन्होंने पुरु को उसका यौवन लौटा दिया और उससे प्रसन्न होकर सारा राज्य उसी को सौंप दिया और स्वयं वन को चले गए। वहाँ वे शरीर छोड़ने पर स्वर्ग गये; पर कुछ दिनों बाद स्वर्ग-भ्रष्ट होकर वे अपने दौहित्रों के यज्ञ-मण्डप मे गिरे। फिर वे वनवासिनी और तपस्विनी कन्या माधवी तथा दौहित्रों के पुण्य-फल से स्वर्ग मे पहुँच गए।

रन्तिदेव

रन्तिदेव बलि भूप सुजाना। सहेउ धरम धरि सकट नाना।

यह बड़ा दानी राजा था। एक बार उसे ४८ दिन बिना अन्न-जल ही के बीत गए। वह सकुटुम्ब बड़ा दुःखी हुआ। अकस्मात् ४६ वें दिन घृत, खीर, लपसी और जल राजा को मिल गए। राजा भोजन करने बैठ ही रहा था, कि इतने ही मे एक ब्राह्मण अतिथि-स्वरूप वहाँ आ पहुँचा। राजा ने उसे अपना भाग खिलाकर सादर विदा किया। इतने ही मे एक शूद्र भी आ पहुँचा। राजा ने उसे भी भोजन दिया। फिर जैसे ही राजा ने शेष अन्न खाना चाहा

त्यों ही एक तीसरा अतिथि साथ मे कुत्ते लिये आ पहुँचा। उसने कहा—'हे राजन् ! मै और मेरे कुत्ते सभी भूखे है। मुझे अन्न दीजिये।' राजा ने बचा हुआ अन्न उसे दे दिया और प्रणाम करके बिदा किया। अब राजा के पास केवल जल बच रहा। उसे वह पीना ही चाहता था कि चांडाल आकर कहने लगा—'हे राजन् ! मुझ नीच को जल दीजिये।' उसकी आर्त्त वाणी सुनकर राजा ने कहा :

नत्वहं कामये राज्य न स्वर्गं ना पुनर्भव ।
कामये दु:खतप्ताना प्राणिनामर्त्तिनाशनम् ।।

अथात् न तो मुझे राज्य ही की आकांक्षा है और न मोक्ष ही चाहता हूँ। मेरी यही कामना है कि सब प्राणियों की पीड़ा दूर हो जाय। इतना कहकर राजा ने उसे यह जल दे दिया।

इतने मे ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि देवता, जो उपर्युक्त रूप धारण करके आये थे, प्रकट हो गए और उन्होंने राजा को दर्शन दिया। राजा ने सबको भक्ति से प्रणाम किया और कुछ चाहना न की। इसलिए भगवान् ने उसे मुक्ति दी।

रावण

सुनु सठ सोय रावन बलसीला। हरगिरि जानु जासु भुजलीला।

(१) जब रावण ने अपने भाई कुवेर से पुष्पक विमान ले लिया, तब वह उस पर सवार होकर कैलाश पर्वत के जङ्गल में घुसा। पर वहाँ विमान आगे जाने से रुक गया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने मे विकराल वानर-मूर्ति शिव के मुख्य गण श्रीनदीश्वर रावण के पास आकर कहने लगे—'हे दशानन ! यहाँ शिवजी क्रीड़ा कर रहे हैं, तू यहाँ से चला जा। रावण उनका रूप देखकर और शिव का नाम सुनकर तिरस्कार करके हँसा। इस पर नंदीश्वर ने क्रुद्ध होकर कहा—अरे दशग्रीव ! तू मेरे वानर-रूप पर हँस रहा है, इसलिए वानरों ही द्वारा तेरे कुल का नाश होगा। इस शाप पर रावण ने तनिक भी ध्यान न दिया और क्रुद्ध होकर उसने अपनी भुजाओं को पर्वत के नीचे घुसा कर उसे उठा लिया। इससे शिव के गण काँपने लगे और पार्वती भी शिव के शरीर से लिपट गई। तब शिव ने अपने पैर के अँगूठे से पर्वत को दबा दिया, जिससे रावण की भुजाएँ दबकर मरमरा उठीं। इससे दुःखित होकर उसने बड़ा घोर नाद किया, जिससे त्रैलोक्य काँप उठा। हैरान होकर रावण सामवेद से शङ्कर की स्तुति करने और रो-रोकर उनकी प्रार्थना करने लगा। इस प्रकार हजार वर्ष बीत गए। तब भगवान् शिव प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी भुजाओं को दाब से छोड़ दिया और उसे रावण की पदवी तथा चन्द्रहास नामक खड्ग दिया।

जानउँ मै तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई।

(२) एक बार रावण हैहयवंशीय राजा सहस्रार्जुन से युद्ध करने गया। राजा ने उसे बाँध लिया। तब पुलस्त्य मुनि के कहने पर राजा ने रावण को छोड़ दिया।

एक कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख।

(३) एक बार रावण बालि को मारने की इच्छा से किष्किन्धा गया। बालि ने उसे अपनी काँख मे दबाकर, चारों ओर समुद्रों पर घुमा-फिराकर उसे छोड़ दिया। इसलिए बालि के पराक्रम से प्रसन्न होकर रावण ने उससे मित्रता कर ली।

राहु

उघरहि अन्त न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।

जब समुद्र-मन्थन हो रहा था, तब उसमे से १४ रत्न निकले। जिसमे अमृत का कलश लिये हुए धन्वन्तरि वैद्य भी बाहर आये। दैत्यों ने अमृत का कलश छीन लिया और देवता मुँह ताकते रह गए। तब सब देवता मिलकर नारायण के प,स गये और उन्होंने सारा हाल कह सुनाया। भगवान् ने कहा—'तुम लोग घबराओ मत, मै उपाय करूँगा।' इधर दानव आपस मे बँटवारे के लिए लड़-झगड़ ही रहे थे कि भगवान् मोहिनी रूप धारण कर रंग-स्थल पर में आ गए। दैत्य उन्हें देखकर बहुत कामातुर हुए और उन्होंने उस अमृत-कलश को भगवान् को सौंप दिया। भगवान् ने देवताओं और दैत्यों की दो अलग-अलग पंक्तियाँ बैठाईं और स्त्री-चरित्र से दैत्यों को ठगकर, देवताओं को अमृत पिला दिया। उसी अवसर पर राहु नामक दैत्य देवता का रूप धारण करके, देव-पंक्ति में जा बैठा था। वह सूर्य और चन्द्रमा के बीच में जा बैठा था। उन्होंने भगवान् को सूचना दे दी। भगवान् ने चक्र-सुदर्शन से उसका सिर काट लिया। पर अमृत उसके कंठ के नीचे पहुँच गया था, इससे उसके सिर और धड़ अमर हो गए। उसी धड़ और सिर को ब्रह्मा ने अष्टम और नवम ग्रह बना दिया। अवसर पाकर वही राहु चन्द्रमा और सूर्य को ग्रसता है।

वाल्मीकि

बालमीकि नारद घट जोनी। निज-निज मुखनि कही निज होनी।

'अध्यात्म-रामायण' मे लिखा है कि जब रामचन्द्र वाल्मीकि के आश्रम में गए, तब उन्होंने उनके नाम की बड़ाई की, क्योंकि उन्हीं का उल्टा नाम अर्थात् 'मरा' कहकर वे ब्रह्मर्षित्व को प्राप्त हुए थे। उन्होंने राम से अपनी जीवनी इस प्रकार कही—

"हे राम ! मैं एक ब्राह्मण का पुत्र था। परन्तु मैं सदैव शूद्रों का-सा आचरण किया करता था और हमेशा किरातों के साथ रहा करता था। मैंने चोरी भी खूब की और एक शूद्रा स्त्री से मैंने कई पुत्र भी पैदा किये। यदि कोई राही मिलता, तो उसे मारकर लूट लिया करता था। एक दिन सप्तर्षि चले जा रहे थे कि मैं उनके ऊपर टूट पड़ा। उन्होंने मुझे देखकर पूछा—'रे-रे मूर्ख द्विजाधम ! तू हमारे पास क्यों आता है ?' मैंने उत्तर दिया—'हे मुनिवरो ! मैं अपने कुटुम्ब को पालने के लिए आप लोगों को लूटना चाहता हूँ।' उन लोगों ने कहा—'अच्छा, पहले तू जाकर अपने पुत्रों तथा स्त्री से पूछ कि वे तेरे पाप में शामिल होंगे या नहीं ? जब तक तू लौट न आयगा, हम लोग यहीं खड़े रहेंगे।' मैंने जाकर अपने पुत्रों और स्त्री से पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि हम लोग पाप-भागी न होंगे, केवल धन ही में हिस्सा लेंगे।' यह सुनकर मुझे कुछ ज्ञान हुआ और मैंने आकर सप्तर्षियों के चरणों में सिर नवाया। मैंने उनसे प्रार्थना की कि हे मुनिगण ! कोई ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे मेरा कल्याण हो और मैं नरक में जाने से बच जाऊँ। उन्होंने मुझे 'राम-नाम' जपने का उपदेश दिया, पर मैं ऐसा मूर्ख था कि शुद्ध नाम भी उच्चारण नहीं कर सकता था। तब उन्होंने वहीं बैठकर उल्टा नाम अर्थात् 'मरा' जपने के लिए कहा। मैं वहीं बैठकर एक हजार वर्ष तक उसी प्रकार नाम का जप करता रहा। मेरे ऊपर बाँबी जम गई। तब वही ऋषि फिर वहीं आये और मुझसे कहने लगे—'हे ब्रह्मर्षे ! बाहर निकल आओ।' यह सुनकर मैं उठ खड़ा हुआ और उन्होंने मेरा नाम वाल्मीकि रखा, क्योंकि मेरा पुनर्जन्म वाल्मीकि से हुआ था। तभी से मुझे ब्रह्मर्षि की उपाधि मिली।"

इन्हीं ब्रह्मर्षि ने रामायण की रचना की थी, जिसका नाम 'वाल्मीकि-रामायण' है।

विराध

मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता।

विराध तुम्ब नाम का गन्धर्व था। वह रम्भा नाम की अप्सरा पर मुग्ध हो गया था। इससे एक दिन कुबेर की सेवा न कर सका। तब कुबेर ने इसे राक्षस होने का शाप दिया। पर उसके गिड़गिड़ाने पर उन्होंने कहा—'जा, जब त्रेता में श्रीरामचन्द्र वन में आयेंगे, तब तुझे मारकर तेरा उद्धार करेंगे।'

काल पाकर वही शतह्लदा नाम की राक्षसी का पुत्र हुआ। उसका नाम विराध पड़ा। जब राम, लक्ष्मण और सीता वन में चले जा रहे थे, वह सीता को लेकर भागा। तब दोनों भाइयों ने उससे युद्ध करके उसकी भुजाएँ उखा

ली और वह शरीर त्यागकर अपने लोक को चला गया।

विश्वामित्र

यह गाधि के पुत्र थे। एक बार ये वशिष्ठ के यहाँ मेहमान होकर गये। वशिष्ठ ने उनका बड़ा सत्कार किया। जब विश्वामित्र को यह मालूम हुआ कि वशिष्ठ के यहाँ एक कामधेनु है, तब उसे उन्होंने उनसे माँगा। वशिष्ठ ने कहा—'यह कामधेनु मेरी नहीं है, पञ्चायती है, अतः मैं आपको देने मे असमर्थ हूँ।'

यह सुनकर विश्वामित्र को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने वशिष्ठ मुनि से घोर संग्राम किया। अन्त में ब्रह्म-बल से मुनि ने उनकी सेना का नाश किया। तभी से विश्वामित्र ने भी ब्राह्मण बनने का संकल्प किया। इसलिए वे तपस्या में संलग्न होगए। बड़ा कठिन तप किया। अन्त मे ब्रह्मा से इन्होंने यह वरदान लिया कि वशिष्ठ मुनि मुझे ब्रह्मर्षि कहे। ब्रह्मा ने कहा –'एवमस्तु।'

एक दिन विश्वामित्र वशिष्ठ से मिलने गए। वे ज्यों ही कुटी पर पहुँचे और वशिष्ठ को बुलाने वाले थे, त्यो ही उन्होने अरुन्धती को वशिष्ठ से यह कहते हुए सुना—'हे भगवन् आजकल राजर्षि विश्वामित्र के तप की बड़ी धूम है। सभी प्रशंसा करते है।' तब वशिष्ठ मुनि ने कहा 'हे देवी ! वे अब राजर्षि नहीं, ब्रह्मर्षि हो गए है। क्योंकि ब्रह्मा ने उन्हे ब्रह्मर्षि ही होने का वरदान दिया है। इतने में दोनों आदमी बड़े प्रेम से मिले और उनके मन का मैल धुल गया।

शबरी

सबरी पेखि रामु गृह आए। मुनि के बचन समुझि जिय भाये।

शबरी एक भीलनी थी। जब शबरी के गुरु स्वर्गगामी हो रहे थे, तब शबरी ने उनसे स्वयं अपने को भी स्वर्ग में ले चलने की प्रार्थना की। इस पर उसके गुरु ने कहा था कि तू अभी यहीं रह, जब राम और लक्ष्मण यहाँ आयँगे, तब तू भी उनके दर्शन से परम धाम को जायगी। तभी से वह भगवान् के आने की बाट जोहती रही।

शिवि

सिवि दधीचि हरिचन्द कहानी। एक-एक सन कहहि बखानी।

यह काशी-नरेश उशीनर के पुत्र थे। जब राजा की मृत्यु हो गई,तब शिवि वहाँ के राजा हुए एक बार राजा ने १०० यज्ञ करने का विचार किया। जब वह ९२ यज्ञ कर चुका,तो इन्द्र को बड़ी चिन्ता हुई कि कहीं ऐसा न हो कि यह आठ यज्ञ और करके मेरे पद को प्राप्त कर ले। इसलिए उसने राजा के यज्ञ मे विघ्न

डालने के विचार से अग्नि को कबूतर बनाया और स्वयं बाज बन गया। जब बाज झपटा, तब कबूतर भागकर राजा शिव की गोद में जाकर बैठ गया। इन्द्र ने कहा—'हे राजन्! आप मेरा आहार मुझे दे दीजिये, नहीं तो मैं भूखों मर जाऊँगा।' राजा ने कहा—'मैं शरणागतों की रक्षा अवश्य करूँगा। अतः जो कुछ तू चाहे मुझसे ले ले।' इस पर बाज ने कहा—'अच्छा, आप मुझे इसी कबूतर के बराबर अपना मांस काटकर दे दीजिये।' राजा ने स्वीकार कर लिया। कबूतर पलड़े पर रखा गया और राजा का मांस काटा गया, पर वह बराबर नहीं हुआ। तब राजा स्वयं पलड़े पर बैठने के लिए उद्यत हुआ। इतने ही में भगवान् विष्णु प्रकट हुए और उन्होंने उसे मुक्ति दी।

शृङ्गी

यह महात्मा विभाण्डक के पुत्र थे। एक बार विभाण्डक जब गङ्गा में गोता लगाने गए, तब उन्हें एक उर्वशी अप्सरा दिखलाई पड़ी। उसे देखकर ऋषि का वीर्य गिर गया। उन्होंने उसी क्षण गोता लगा लिया। इतने में एक मृगी ने आकर वही जल पिया, जिसमें ऋषि का शुक्र गिर गया था। वह मृगी नहीं थी, बल्कि देव-कन्या थी। ब्रह्मा के शाप से वह मृगी हो गई थी। ऋषि के शुक्र से उसे गर्भ रह गया और उसी से शृङ्गी पैदा हुए। शृङ्गी ऋषि को उत्पन्न करने के बाद वह फिर अपने लोक को चली गई। ऋषि के मस्तक पर सींग थे, अतः उसका नाम ऋष्यशृङ्ग पड़ा। अंगदेश (भागलपुर) के राजा रोमपाद थे। वे राजा दशरथ के बड़े मित्र थे। उनके कोई सन्तान न थी, इसलिए दशरथ ने अपनी कन्या शान्ता उन्हें दे दी। विभाण्डक के यहाँ ब्राह्मणों का अपमान होता था, इसलिए उनके राज्य में बड़ा अकाल पड़ा। उसने दुःखी होकर ब्राह्मणों से इसका उपाय पूछा तब उन लोगों ने शान्ता के साथ शृंगी ऋषि का ब्याह करने के लिए कहा। वेश्याओं द्वारा ऋष्यशृङ्ग विभाण्डक के यहाँ बुलाने गए और धूम-धाम से शान्ता का ब्याह उनके साथ कर दिया गया। इन्होंने महाराज दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टि-यज्ञ किया था, जिससे राम आदि का जन्म हुआ।

सहस्रबाहु

सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा।

यह हैहयवंशीय क्षत्रिय था। इसकी राजधानी महिष्मतीपुरी थी। जब इसने जमदग्नि ऋषि का आश्रम नष्ट किया था, तब परशुराम ने इसके हजारों हाथ काट डाले। वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। देखिये 'परशुराम'।

सीता को नारद का आशीर्वाद

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत ।

जब जानकी गिरिजा का पूजन करने जा रही थी, तब रास्ते में उन्हें नारदजी मिल गए। सीता ने उन्हें प्रणाम किया। तब नारद ने आशीर्वाद दिया कि इसी बगीचे में तुम पहले-पहल अपने पति का दर्शन करोगी। सीता ने पूछा –'मैं कैसे पहचानूँगी ?' तब नारद ने कहा—'जिसे देखकर तुम्हारा मन लुभा जाय, वही तुम्हारा पति होगा।'

सुरनाथ (इन्द्र)

सहस बाहु सुरनाथ त्रिसकू। केहि न राजमद दीन्ह कलकू।

एक बार जब वृहस्पति इन्द्र की सभा में गये, तब लक्ष्मी के मद से उसने इनका कुछ भी आदर न किया। गुरु वृहस्पति चुपचाप उठकर अपने घर चले गए। इन्द्र को मालूम हो गया कि उसने अपराध किया है। वह उनसे क्षमा माँगने के लिए उनके यहाँ गया, पर वृहस्पति अदृश्य हो गए। इधर दैत्यों ने शुक्राचार्य की सम्मलि से इन्द्र पर चढ़ाई कर दी। तब ब्रह्मा की आज्ञा से इन्द्र ने जाकर त्वष्टा के पुत्र तपस्वी विश्वरूप से प्रार्थना की और उन्हें अपना पुरोहित बनाया। तब इन्द्र का राज्य वापस मिला।

हरिश्चन्द्र

सिवि दधीचि हरिचन्द नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा।

यह अयोध्या के सूर्यवंशी राजा बड़े दानी थे। इनके दान की प्रशंसा सर्वत्र फैल गई थी। एक दिन नारद मुनि ने जाकर इन्द्र से इनकी प्रशंसा की। उसे यह सुनकर बड़ी ईर्ष्या हुई। वह डरने लगा कि कहीं राजा हरिश्चन्द्र हमारे पद को न पा जायँ। इसलिए विश्वामित्र से उसने उनकी परीक्षा लेने के लिए कहा। ऋषि ने आकर राजा से सारी पृथ्वी का दान माँगा और एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ उसकी दक्षिणा भी माँगी। राजा ने पृथ्वी तो सहर्ष दान दे दी, पर दक्षिणा चुकाने के लिए वे सकुटुम्ब काशी में गए। वहाँ उन्होने एक ब्राह्मण के हाथ अपनी स्त्री तथा लड़के को बेचकर आधी दक्षिणा दी और शेष दक्षिणा उन्होंने अपने को एक डोम के हाथ बेचकर चुका दी। महाराज अब उस डोम के यहाँ मरघट की रखवाली करने लगे। एक दिन उनके पुत्र रोहिताश्व को सर्प ने काट लिया, जिससे कुमार की मृत्यु हो गई। रानी शैव्या उसे लेकर शव-दाह करने के लिए श्मशान-घाट पर गई। पर वहाँ राजा हरिश्चन्द्र ने पहुँचकर कर माँगा, यद्यपि वे रानी को पहचान भी गए थे। जब रानी कर देने के लिए अपनी साड़ी फाड़ने को उद्यत हुई, तभी नारायण प्रकट हो गए

और उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया। राजा सकुटुम्ब भगवान् के चरणों पर गिर पड़े और भगवान् उन्हें अपने लोक को ले गए।

हिरण्यकश्यप

चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।

यह दैत्यों का राजा था। प्रह्लाद इसी के पुत्र थे। यह विष्णु का वैरी और शिव का भक्त था। जब प्रह्लाद राम-नाम का जप करते थे, तब वह उन्हें बड़ा कष्ट दिया करता था। यहाँ तक कि वह स्वयं ही प्रह्लाद को तलवार से मारने को उद्यत हुआ कि भगवान् नृसिंह का रूप धारण करके खम्भे को फाड़कर बाहर निकल पड़े और अपने नखों से उसका उदर विदीर्ण कर डाला। देखिए 'प्रह्लाद'।

गूढार्थ-कोष

१ **अग्नि**—१ दक्षिणाग्नि, २ गार्हपत्य, ३ आहवनीय ।

२ **अवस्था**—१ जाग्रत, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति, ४ तुरीय ।

३ **अविद्या**—ईश्वर की मोह-शक्ति ।

४ **आकर**—१ जरायुज, २ अण्डज, ३ स्वेदज, ४ उद्भिज ।

५ **आभरण**—१ नूपुर, २ चूडी, ३ हार, ४ ककरण, ५ अँगूठी, ६ बाजूबन्द, ७ बेसर, ८ बिरिया, ९ टीका, १० शीशफूल, ११ तागडी, १२ कण्ठश्री ।

६ **आश्रम**—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ।

७ **ईति**—७ प्रकार की होती है—अतिवर्षा, २ सूखा, ३ टीडी, ४ मूषक, ५ शुक, ६ स्वचक्र, ७ परचक्र ।

८ **ईषणा**—तीन है—१ लोक-बडाई, २ धन-राज्यादि, ३ स्त्री-पुत्र ।

९ **उपवेद**—चार है—१ ऋग्वेद का आयुर्वेद २ यजुर्वेद का धनुर्वेद, ३ सामवेद का गन्धर्व, ४ अथर्ववेद का स्थापत्य ।

१० **ऋतु**—छ. है—१ शिशिर, २ बसन्त, ३ ग्रीष्म, ४ वर्षा, ५ शरद् ६ हेमन्त ।

११ **कर्म**—तीन है—१ सचित, २ प्रारब्ध, ३ क्रियमाण ।

१२ **कल्प**—४ युगो की एक चौकडी और हजार चौकडी का १ कल्प । सतयुग १७२८००० वर्ष, त्रेता १२९६००० वर्ष, द्वापर ८६४००० वर्ष और कलियुग ४३२००० वर्ष का होता है । इन सबके सहस्र का कल्प कहलाता है, अर्थात् इन सबका योगफल ४३२०००० हुआ, उसका सहस्र ४३२०००००००० हुआ ।

१३ **गुण**—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ।

१४ **गुरु**—तीन है—१ माता, २ पिता, ३ आचार्य ।

१५ **चतुरङ्गिणी-सेना**—१ हाथी, २ रथ, ३ पैदल, ४ घोडा ।

१६ **चतुर्गुण**—१ साम, २ दाम, ३ दण्ड, ४ भेद ।

१७ **तत्त्व**—पाँच हैं—१ पृथ्वी, २ आप, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश।

१८ **ताप**—तीन हैं—१ आध्यात्मिक, २ आधिभौतिक, ३ आधिदैविक।

१९ **त्रिदेव**—ब्रह्मा, विष्णु और महेश।

२० **तीन अवस्था**—बालक, युवा और वृद्ध।

२१ **दिक्पाल**—दस हैं—इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, राक्षस, वायु, शिव, ब्रह्मा और शेष।

२२ **द्वीप**—सात हैं—जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, पुष्कर, शाल्मली और गोमेद।

२३ **नवखण्ड**—इलावृत्ति, रम्यक, हिरण्यमय, कुरु, हरि, भारत, केतुमाल, भद्राश्व, किंपुरुष।

२४ **निधि**—नौ हैं—१ महापद्म, २ पद्म, ३ शंख, ४ मकर, ५ कच्छप, ६ मुकुन्द, ७ कुन्द ८ नील और ९ खर्व।

२५ **प्राण**—पाँच हैं—प्राण अपान, उदान, व्यान और समान।

२६ **पुराण**—१८ हैं—ब्रह्म-पुराण, पद्म-पुराण, विष्णु-पुराण, शिव-पुराण, श्रीमद्भागवत, नारद-पुराण, मार्कण्डेय-पुराण, अग्नि-पुराण, भविष्य-पुराण, ब्रह्मवैवर्त-पुराण, लिंग-पुराण, वाराह-पुराण, स्कन्द-पुराण, वामन-पुराण, कूर्म-पुराण, मत्स्य-पुराण, गरुण-पुराड और ब्रह्माण्ड-पुराण।

२७ **भक्त**—पाँच होते हैं—आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, विज्ञान और निवास।

२८ **भक्ति**—नौ प्रकार की है—श्रवण, कीर्त्तन, अर्चन वन्दन, चरण-सेवा, स्मरण, आत्म-निवेदन, दासत्व और सख्य।

२९ **मद**—छै हैं—जाति-मद, कुल-मद, युवावस्था-मद, रूप-मद, विद्या-मद, धन-मद, ज्ञान-मद, ध्यान-मद और राज्य-मद।

३० **महायज्ञ**—पाँच हैं—वेद-पाठ, तर्पण, होम, बलिवैश्वदेव और अतिथि-सत्कार।

३१ **युग**—चार हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग।

३२ **योनि**—८४ लाख हैं—९ लाख जलचर, ४ लाख मनुष्य, २७ लाख स्थावर, ११ लाख कृमि, १० लाख पक्षी और २३ लाख चौपाये।

३३ **रस**—नौ हैं—शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

३४ **राम**—१ परशुराम, २ रामचन्द्र, ३ बलराम।

३५ **रिपु**—चार हैं—१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ और ४ मोह।

३६ **लोक**—१४ हैं—तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल,

भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक ।

३७ **वर्ण**--चार है--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ।

३८ **वर्ग** —४ है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ।

३९ **विद्या** – चौदह है—ब्रह्म-ज्ञान, रसायन, वेद, वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण, धनुर्विद्या, जल मे तैरना, सङ्गीत, नाटक खेलना, अश्वारोहण, कोक-शास्त्र, कृषि, न्याय ।

४० **वेद**--चार है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ।

४१ **वेदांग**—छ है—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ।

४२ **व्यसन**—स्त्री द्यूतम्मृगया मद्य नृत्य गीत वृथाटनम् ।
वादन्निन्दान्दिवास्वप्नन्नराणा व्यसनन्दश ॥

४३ **शास्त्र**—छः है—साख्य, योग, वेदान्त, मीमासा, न्याय, वैशेषिक ।

४४ **श्रोता**—तीन होते है—मुक्त, मुमुक्षु, विषयी ।

४५ **शृङ्गार**—सोलह है—१ अंगशुचि, २ मज्जन, ३ दिव्य वस्त्र, ४ महावर, ५ केश सँवारना, ६ माँग मे सिन्दूर, ७ ठोडी पर तिल, ८ माथे मे बिन्दी, ९ मेहदी, १० अरगजा-लेपन, ११ भूषण, १२ सुगन्ध, १३ मुखराग, १४ दन्तराग, १५ अधर-राग, १६ काजल ।

४६ **षट्रस**—कटु, तिक्त, अम्ल, मधुर, कषाय और लवण यही छ. रस है ।

४७ **सप्तर्षि**—वशिष्ठ, अत्रि, कश्यप, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि और गौतम यही सात ऋषि है ।

४८ **सप्तावरण**—जल, पवन, अग्नि, आकाश, अहकार, महत्तत्त्व और प्रकृति ।

४९ **समीर**—शीतल, मन्द और सुगन्ध ।

५० **सिद्धि**--आठ है—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ।

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, २७ शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली में मुद्रित ।